जनवरी - मार्च 1993

वर्ष : 25 अंक 1

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

नाभिकीय ऊर्जा एवं पर्यावरण का समन्वय

रजत जयंती विशेषांक

भारत में विज्ञान :सफलता के पथ पर

18-20 जनवरी, 1993

सेन्ट्रल काम्पलेक्स सभागृह
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बंबई - 400 085

★ आयोजक ★

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, बंबई
न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन, बंबई
इंडियन रेअर अर्थ्स लि., बंबई

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका **वैज्ञानिक** का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं **वैज्ञानिक** पत्रिका का शुल्क (रु) :

	परिषद सदस्यता			वैज्ञानिक शुल्क 5 रु. प्रति	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

1. वैज्ञानिक विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
2. वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक नि:शल्क भेजी जाती है।
3. सभी शुल्क हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम से डिमांड ड्राफ्ट (बम्बई) अथवा भारतीय पोस्ट आर्डर द्वारा ही भेजें। कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क न भेज़ें।

'वैज्ञानिक' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में वैज्ञानिक अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें.मी.× 21 सें.मी. है।

विज्ञापन की दरें	(एक प्रति के लिए)
अंतिम आवरण	रु. 2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	रु. 2,000/-
पूरा पृष्ठ	रु. 1,500/-
आधा पृष्ठ	रु. 800/-

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1993

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ.केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) **वैज्ञानिक** कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु. 1500/-, द्वितीय रु. 1000/-, तृतीय रु. 500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो **विशेष पुरस्कार** - प्रत्येक रु. 300/- के दिये जायेंगे। अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 31 अगस्त 1993

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं वैज्ञानिक की संपत्ति होंगी। **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

पत्राचार का पता : श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, परमाणु ईंधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, बम्बई - 400 085

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष : 25 ★ अंक 1

जनवरी - मार्च 1993

रजत जयंती विशेषांक

व्यवस्थापन मंडल

डॉ. शिव प्रकाश गर्ग
श्री ज्ञानोत्तमलाल गोस्वामी
श्री ललित कुमार
श्री राम निवास आर्य
श्री इंद्र कुमार शर्मा
श्री दीप प्रकाश

संपादन मंडल

डॉ. जनार्दन स्वरुप
डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
डॉ. दुर्गा प्रसाद पांडेय
श्री हरि ओम मित्तल

शुल्क

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष	70 रु.	40 रु.

विदेश में
(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष	45 रु.	35 रु.
तीन वर्ष	125 रु.	95 रु.

भाग - 1

पृष्ठ संख्या

संपादकीय एवं सामान्य जानकारी

संपादकीय 5

संगोष्ठी परिचय एवं समितियां 7

आयोजक संस्थाओं का परिचय

- हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद 11
- न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन 14
- इन्डियन रेयर अर्थ्स 16

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बईः एक परिचय 18

परिषद के पच्चीस वर्षों के इतिहास से

- कार्यकारिणी 24
- "वैज्ञानिक" विशेषांक 27
- आयोजित संगोष्ठियां - सेमिनार - कार्यशालाएं 28
- "वैज्ञानिक" संपादन मंडल 29
- "वैज्ञानिक" व्यवस्थापन मंडल 30

भाग - 2

लेख - सारांश

1. **भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र : प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण** 31
   डॉ. आर. चिदम्बरम्
2. **कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान एवं क्रांति** 35
   प्रो. वीरेन्द्र लाल चोपड़ा
3. **विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन एवं अनुप्रयोग** 39
   आर. जी. देशपांडे एवं डॉ. जी. शर्मा

मुख पृष्ठ चित्र : भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र का एक दृश्य

- 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हि.वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित है।
- 'वैज्ञानिक' एवं हि. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा।

कार्यालयः

'वैज्ञानिक' हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल काम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बम्बई - 400 085.

शुल्क भेजने का पताः

श्री. ललित कुमार
कोषाध्यक्ष,
हिं. वि. सा. प., धात्विकी प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र
बम्बई - 400085.

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका "वैज्ञानिक" का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर इसका नवीनीकरण करा लें। "वैज्ञानिक" के लिफाफे पर शुल्क सम्बन्धी जानकारी दी जाती है। यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएं।

- संपादक

4. **प्रतिरक्षा मिसाइल कार्यक्रम** 46
बी. जे. सुन्दरम

5. **अंतरिक्ष उपयोग कार्यक्रम** 50
प्रमोद काले

6. **न्यूक्लियर पावर परियोजनाओं के लिए समाकलित प्रबंधन प्रणाली** 55
के. एस. चोपडा

7. **परमाणु बिजली घर - पुरानी, वर्तमान और भावी परियोजनायें** 69
जी. आर. श्रीनिवासन

8. **नाभिकीय ऊर्जा एवं लोक जानकारी** 87
बी. एन. जयराम एवं एन के अग्रवाल

9. **पारंपारिक ऊर्जा स्रोत** 92
मोहन लाल शिशू

10. **ऊर्जा संयंत्रो में सुरक्षा** 94
सुधाकर सोमण

11. **औद्योगीकरण एवं पर्यावरण संरक्षण** 100
जय शंकर पाण्डेय एवं प्रो. पुरूपोत्तम खन्ना

12. **जैव प्रौद्योगिकी द्वारा पशुधन संवर्धन** 104
डॉ. एम. एल. मदन

13. **भारतीय समुद्र विज्ञान में आधुनिक अनुसंधान एवं विकास** 109
डॉ. बी. एन. देसाई एवं राम भार्गव

14. **भारत में लौह एवं इस्पात प्रौद्योगिकी का विकासः सफलता के पथ पर** 114
डॉ. शैवाल कांति गुप्त एवं डॉ. लोकेश कुमार सिंहल

15. **फसलों की विकास - प्रक्रिया** 124
राजनारायण पाण्डेय और डॉ. चित्तरंजन भाटिया

16. **भापअ केन्द्र में सुपर कम्प्यूटर क्षेत्र में विकास** 129
हरीश कुमार कौरा

17. **भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन में उपग्रह प्रमोचन वाहनों का विकास** 131
डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्ता

लेखकों से निवेदन

ज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखे :

लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाए,

लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,

कृपया अनुवादित लेख न भेजें,

लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड कर कागज़ के एक ओर ही लिखें,

विषय वस्तु समझने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें सफेद कागज़ पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें, पाण्डुलिपि में मूलपाठ के साथ उसी पृष्ठ पर चित्र न बनाएं,

अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जाएंगी।

- संपादक

18. **आयुर्वेद : सिद्धांत एवं अनुप्रयोग** 132
डा. डी. एस. अन्तुरकर

19. **प्रौद्योगिकी विकास एवं सी. एस. आई. आर.** 133
डॉ. अशोक जैन

20. **खनिज तेल अन्वेषण** 134
डॉ. एस के बिश्वास

21. **इंसैट - २ का अंतरिक्ष खण्ड संरूपण और डिजाइन : एक उदाहरण** 135
डॉ. पी. रामचन्द्रन

भाग - 3

'वैज्ञानिक' की विविध सामग्री

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की वार्षिक रिपोर्ट (1991-92) 137

पुस्तक समीक्षा 141

संगोष्ठी समाचार 142

कुछ फूल : कुछ कांटे 143

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

- कार्यकारिणी समिति -

(वर्ष 1992 - 93)

1. अध्यक्ष : डॉ. आर. चिदम्बरम् निदेशक, भा.प.अ. केन्द्र,
2. उपाध्यक्ष : डॉ. दीन दयाल सूद, अध्यक्ष ईंधन-रसायनिकी प्रभाग
3. सचिव : श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, परमाणु ईंधन प्रभाग
4. सह-सचिव : डॉ. विजय कुमार मनचन्दा, विकिरण-रसायनिकी प्रभाग
5. कोषाध्यक्ष : श्री ललित कुमार, धातुकी प्रभाग

सदस्य

1. श्री रामनिवास आर्य, धातुकी प्रभाग
2. श्री हरीश कुमार कौरा, अध्यक्ष, कंप्यूटर प्रभाग
3. डॉ.एस.के.सिक्का, अध्यक्ष, उच्च दाब भौतिकी प्रभाग
4. डॉ.एस.ए.अहमद, वर्णक्रमदर्शिकी प्रभाग
5. डॉ. राजेन्द स्वरूप, ईंधन-रसायनिकी प्रभाग
6. डॉ. गोविन्द प्रसाद कोठियाल, तकनीकी भौतिकी एवं प्रोटोटाइप इंजीनियरी प्रभाग

मनोनीत सदस्य

1. डॉ.आर. विजयराघवन्, अध्यक्ष, परमाणु ईंधन प्रभाग
2. डॉ . एस. पी. अवस्थी विश्लेषणात्मक रसायनिकी प्रभाग

पदेन सदस्य

1. डॉ. जनार्दन स्वरूप, संपादक, 'वैज्ञानिक'
2. डॉ. शिवप्रकाश गर्ग, व्यवस्थापक,'वैज्ञानिक
3. डॉ. एम.आर.बालकृष्णन, अध्यक्ष, सूचना प्रभाग
4. डॉ. वी. रामशेष, सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति
5. डॉ. राजेन्द्र नारायण भटनागर, सचिव, केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद
6. श्री रमेशचन्द्र पंत, संयोजक, राजभाषा वार्ता
7. श्री काशीनाथ पाण्डेय, हिन्दी अधिकारी

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों?

(वर्ष - 1992)

भौतिकी	:	**डॉ. जार्जस चारपॉक** स्विटजरलैण्ड	कण भौतिकी में बहुतारीय गैस अनुपातिक काऊंटर (MWPC) की उपियोगिता
रसायनिकी	:	**डॉ. आर. ए. मारकस** संयुक्त राज्य अमेरीका	इलेक्ट्रॉन अंतरण अभिक्रियाएं
मेडिसिन तथा फीजियोलॉजी	:	**डॉ. एडविन क्रेव**	जीवन की गतिविधियो में
	:	**डॉ. एडमण्ड फिशर** संयुक्त राज्य अमेरीका	प्रोटीन फोस्फोरिलेशन की भूमिका

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा 13 जनवरी 1993 को भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र बम्बई, में नं पुरस्कार : किसे और क्यों? विषय पर एक अर्द्ध दिवसीय सेमिनार आयोजित किया गया। इसकी अध्यक्षत ए. एन. प्रसाद निदेशक, ईधन पुनर्संसाधन एवं नाभिकीय अपशिष्ट प्रबंधन ग्रुप ने की। परिषद सचिव श्री गोर ने स्वागत एवं डॉ. रामशेष ने धन्यवाद ज्ञापन का कार्य किया। संयोजक डॉ. कोठियाल ने वक्ताओंका पि कराया। इस सेमिनार में डॉ. रजनीकांत चौधरी, डॉ. अविनाश सप्रे तथा डॉ. श्री कुमार आप्टे ने नोबेल पुरस विजेता वैज्ञानिकों तथा उनके कार्यों पर प्रकाश डाला।

"वैज्ञानिक" के अगले अकों में इन विषयों से संबंधित लेख प्रकाशित किये जाएंगे।

- सं

भाग - 1

संपादकीय एवं सामान्य जानकारी

संपादकीय

संचार : जनजीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू

हर प्राणी के लिए संचार का उतना ही महत्व है जितना उसे जीवित रहने के लिए हवा, पानी, भोजन इत्यादि । जन्म लेते ही बच्चे का रोना माता से उसका संचार का प्रकृति प्रदत्त एक तरीका है । फिर समय, परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप संचार पध्दतियां बदलती जाती हैं ।संचार के लिए आवश्यक है भाषा । यह भाषा चाहे आंखो की हो, संकेतों की,मशीन की अथवा शब्दों की, एक ऐसा महत्वपूर्ण घटक है जिसके बिना संचार असम्भव है । पशु पक्षी भी अपनी भाषा में एक दूसरे से अपने भावों का आदान प्रदान करते हैं, दो मूक एवं बधिर संकेतों के माध्यम से सब कुछ कह डालते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हर प्राणी के लिए संचार की प्रक्रिया उसकी मौलिक आवश्यकता है ।

विज्ञान ने जिस तरह ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व पहिये का आविष्कार कर जन जीवन को गति का संदेश दिया ठीक उस प्रकार संचार के लिए समय समय पर अभिनव साधनों का आविष्कार/विकास कर ब्रह्माण्ड (विश्व) को एक दम सूक्ष्म बना दिया । पहिये तथा आग की खोज से लेकर आज के सुपर कंप्यूटर तक के विकास ने मानव सभ्यता को आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक स्तर पर किसी न किसी रूप से प्रभावित किया है । इसके लिए एक ओर जहां हम उन अज्ञात मानव मस्तिष्कों के ऋणी हैं जिन्होंने गति (पहिये)तथा ऊर्जा (आग) का सरलतम स्वरूप प्रस्तुत कर मानव सभ्यता के अग्रसर होने की शुरूआत की, वहीं हम उस मस्तिष्क के भी ऋणी हैं जिसने आधुनिक संचार प्रणाली का श्रीगणेश किया, अन्यथा सारा ज्ञान, सारी खोजें पृथक-पृथक रहतीं और उनका लाभ एक दूसरे को न मिल पाता ।

संचार के क्षेत्र में बेतार तकनीक का महत्व किसी से छुपा नहीं है ।साथ ही, आज उपग्रहों के माध्यम से कई हजार व्यक्ति एक साथ सूचनाओं का आदान प्रदान कर सकते हैं। आज प्रकाश संचरण आधुनिक संचार प्रणाली में अपनी विशेष भूमिका निभा रहा है । यद्यपि टेलिफोन के आविष्कारक अलैक्जैंडर ग्राहम बेल ने 1887 में प्रकाश तरंगों के माध्यम से संचार की संभावना बताई थी परंतु लगभग आठ दशकों के बाद ही कुछ आशा बंधी जब डॉ. सी. के. काओं और डॉ. जी.ए. हॉक्हेम ने कांच तंतु (फाइबर) को प्रकाश तरंगों के संचरण का माध्यम प्रस्तावित किया । इससे पूर्व संचार विद्युतीय सिगलनों को केवल कॉपर के तारों में से प्रवाहित कर किया जाता था । फलस्वरूप 1975 के बाद से प्रकाश संचरण की एक ऐसी प्रणाली बड़ी तीव्रता से विकसित हुई जिसके द्वारा अत्यन्त उच्च दर से आंकडों को भेजना संभव हो पाया । इस प्रणाली में सूचनाओं का ह्रास काफी कम होता है । इसकी आवृति बैंड प्रसार काफी अधिक होने के साथ साथ इसका अन्य विद्युत-चुम्बकीय विकिरणों से कोई व्यति करण भी नही होता और इस प्रकार सूचनाओं को आसानी से टैप (चुराया) भी नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह एक मजबूत एवं आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य प्रणाली है । पिछले बीस वर्षों में वैज्ञानिकों द्वारा इस दिशा में पांच स्तरों में विकास हो चुके हैं जिनमें से प्रत्येक अपने आप में एक नया कीर्तिमान था । प्रकाश संचरण के लिए सर्वप्रथम सिलिका फाइबर का प्रयोग किया गया । इस प्रणाली के प्रथम चरण में सूचनाओं को एक विशेष विद्युतीय सिगनल में परिवर्तित किया जाता है (एनकोडिंग) फिर उनको प्रेषक (ट्रांसमीटर) द्वारा प्रकाशीय सिगनल में परिवर्तित करके कांच फाइबर में से गुजारते हुए दूसरी जगह पहुंचाया जाता है जहां पर ग्राहक (रिसीवर) द्वारा इन प्रकाशीय सिगनलों को पुनः इस प्रकार विद्युतीय सिगनल में बदला जाता है (डिकोडिंग) जिसे टेलिफोन अथवा कंप्यूटर समझ सकें। सिगनल लंबी दूरी तय करते करते कमजोर पड़ने लगते हैं जिन्हे रिपीटर के उपयोग से यथावश्यक दूरी पर प्रवर्धित किया जाता है । लेकिन अब पांचवी पीढीं के प्रकाशीय तंतु विकिसित किए जा चुके हैं , जिनमें इरबियम डोप्ड प्रकाशीय फाइबर का इस्तेमाल किया जाता है । इसे एक सूक्ष्म लेजर डायोड वाली चिप द्वारा शक्ति दी जाती है।

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि इनमें सिगनल बिना किसी रिपीटर के अपने आप प्रवर्धित होता है और इस प्रकार सिगनल को उसकी गुणता में बिना किसी परिवर्तन के बहुत अधिक दूरी तक पहुंचाया जा सकता है । ये आज के तथाकथित कंप्यूटर संचार के लिए वरदान सिध्द हो रहे हैं।

विज्ञान ने तो सूचना प्रसारण के साधन उपलब्ध करा दिए है परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या केवल यह प्रसारण पर्याप्त है? इसका उत्तर होगा नहीं। क्योंकि यह सब तो भैंस के आगे बीन बजाने के समान होगा, यदि हम उन लोगों को न समझा पायें जिनके लिये यह सूचना भेजी जा रहीं हो । यहां पर आवश्यक हो जाता है संचार का माध्यम । जैसे पहले कहा जा चुका है कि भाषा ही वह महत्वपूर्ण घटक है जो प्रेषक तथा ग्राहक के बीच की कड़ी का काम करता है। हम अपनी बात दूसरों को तभी समझा पाएंगे जब दूसरा हमारी भाषा समझता हो । इसलिए सारा ज्ञान एवं विज्ञान निरर्थक हो जाएगा यदि उसका संचार सरल तथा सही रूप मे न हो पाए । इसमें दो राय नही हो सकतीं कि हर व्यक्ति, चाहे वह महान दार्शनिक हो अथवा वैज्ञानिक या अन्य कोई और, मौलिक चिंतन अपनी मूल भाषा (जिसमें वह प्रारंभिक ज्ञान अर्जित करता है) में ही करता है तथा फिर उसे अंग्रेजी या अन्य भाषा में कहता है ।

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद अपने 25 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में 'रजत जयंती समारोह' मना रही है । इस दौरान परिषद अपने देश में हुयी विभिन्न वैज्ञानिक उपलब्धियों से संबंधित जानकारी एकत्र करने का प्रयास कर रही हैं । इस जानकारी के संचार का माध्यम हिन्दी रखा गया है ताकि इसे वे लोग भी जान सकें जिन्हें केवल इसी भाषा का ज्ञान हो । हिन्दी में विज्ञान साहित्य संग्रह का यह एक महत्वपूर्ण कार्य होगा । भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अभी हाल में जादवपुर विश्वविद्यालय के प्रो. अशोक मुखर्जी की देश के प्रतिष्ठित आई. आई. टी. परीक्षाओं से संबंधित प्रकाशित एक रिपोर्ट का जिक्र असंगत न होगा । इसमे यह निष्कर्ष निकाला गया कि वर्ष 1990 में जब आई. आई.टी. प्रवेश परीक्षाओं में अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं को परीक्षा का माध्यम रखा गया तो केवल 3.7 प्रतिशत अंग्रेजी माध्यम वाले तथा 0.3 प्रतिशत अन्य भाषाओं वाले परीक्षार्थी चुने गये । स्पष्ट है यह 0.3 प्रतिशत प्रतिभाशाली विद्यार्थी केवल भाषा के माध्यम के कारण अन्यथा नही चुने जाते । यह भारतीय भाषाओं के विकास की दृष्टि से एक उत्साहजनक निष्कर्ष/ परिणाम है। एक बात और, चूंकि अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं वाला माध्यम पहली बार शुरू किया गया था इसलिए हो सकता है कि अपनी पुरानी मानसिकता के कारण कई प्रतिभाशाली विद्यार्थी अंग्रेजी में लिखने का दुस्साहस कर असफल रहे होंगे ।

प्रस्तुत जनवरी-मार्च 1993 अंक परिषद के रजत जयंती समारोह के अवसर पर एक विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है । इसमें देश के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों द्वारा ऊर्जा, संचार, प्रतिरक्षा, जैव प्रौद्योगिकी, कृषि, आयुर्विज्ञान इत्यादि क्षेत्रों में भारत की उपलब्धियों से संबंधित लेखों/ सारांशों को प्रकाशित किया जा रहा है । इसके अतिरिक्त भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन, इंडियन रेयर अर्थ्स की गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण भी दिया जा रहा है । हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, तथा उसकी त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" से पिछले पच्चीस वर्षों में जुड़े वैज्ञानिकों एवं अन्य महानुभावों की सूची भी दी जा रही है। हो सकता है इस संकलन के दौरान कुछ ऐसे सहयोगियों के नाम (सूचना उपलब्ध न होने के कारण) छूट गए हों जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में परिषद के विकास में अपने अपने रूप से सहयोग दिया हो । इस भूल के लिए हमें खेद होगा। "वैज्ञानिक" के अंकों के बारे में अपनी प्रतिक्रियाओं से हमें अवश्य लाभान्वित करायें ।

"सभी पाठकों को नव वर्ष की मंगल कामनाए"

डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल

<u>संगोष्ठी परिचय</u>

भारत में विज्ञान : सफलता के पथ पर

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र का एक विशिष्ट स्थान है । अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के अतिरिक्त इस केंद्र ने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में भी विशेष योगदान दिया है । इस दिशा में व्यवस्थित रूप से कार्य करने हेतु केंद्र में 1968 में, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की स्थापना की गई। परिषद इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक त्रैमासिक पत्रिका 'वैज्ञानिक' का नियमित प्रकाशन, अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का वार्षिक आयोजन, वैज्ञानिक शब्दावलियों का निर्माण, वार्ताओं एवं विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर संगोष्ठियों का आयोजन निरंतर करती रही है । 1993 में 25 वर्ष पूरे होने पर, परिषद रजत जयन्ती समारोह मना रही है ।

इस उपलक्ष्य में 18 - 20 जनवरी, 1993 को हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, न्यूक्लिअर पावर कारपोरेशन एवं इंडियन रेअर अर्थ्स लि. के संयुक्त तत्वावधान में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बंबई में एक संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है जिसका विषय है भारत में विज्ञान : सफलता के पथ पर।

स्वतंत्रता के पश्चात स्थापित, विज्ञान की सुदृढ़ नींव के फलस्वरूप आज भारत विकास के हर क्षेत्र में एक अग्रणी राष्ट्र के रूप में उभर रहा है । इस संदर्भ में संगोष्ठी के मंच पर विशिष्ट प्रौद्योगिकियों और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में लब्ध प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों द्वारा नाभिकीय ऊर्जा, पर्यावरण संरक्षण, अंतरिक्ष विज्ञान, कंप्यूटर, रक्षा विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, कृषि, आयुर्विज्ञान, जीव विज्ञान, समुद्र विज्ञान, ऊर्जा के अपरंपरागत, स्रोत, पशुधन एवं खनिज व रसायन विषयों पर वार्ताओं का आयोजन किया गया है ।

आशा है यह संगोष्ठी भारत में विज्ञान की उपलब्धियों एवं उज्ज्वल भविष्य की एक झलक राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत करने और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन मे एक प्रमुख भूमिका निभाएगी ।

राम निवास आर्य
(संयोजक)

सलाहकार समिति

डॉ. आर. चिदम्बरम् - अध्यक्ष

निदेशक, बी. ए. आर. सी., बंबई

डॉ.बी.एस.अरुणाचलम
भूतपूर्व वैज्ञानिक सलाहकार
रक्षा मंत्री, दिल्ली

श्री.जे.एल.भसीन
प्रबंध निदेशक
यू.सी.आई.एल, जादूगुड़ा

श्री.आर.बी.बुद्धिराजा
संयुक्त सचिव
डी.ए.ई, बंबई

श्री.एस.के.चटर्जी
कार्यकारी निदेशक
एन.पी.सी, बंबई

श्री.आर.जी.देशपांडे
मुख्य कार्यकारी
बी.आर.आई.टी, बंबई

डॉ.एस.के.जोशी
महानिदेशक
सी.एस.आई.आर, दिल्ली

श्री.एस.एम.कृष्णमूर्ति
उप महाप्रबंधक
एल.एण्ड.टी, बंबई

डॉ.डी.एन.मिश्र
महानिदेशक
एम.पी.सी.सी.टी, भोपाल

श्री.एम.एस.नागर
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
आई.आर.ई, बंबई

डॉ.जी.पी.फोंडके
निदेशक
पी.आई.डी, दिल्ली

डॉ.पी.रामाराव
सचिव
डी.एस.टी, दिल्ली,

डॉ.एस.रामचन्द्रन
सचिव
जैव प्रौद्योगिकी विभाग, दिल्ली

डॉ.के.रामकृष्ण
निदेशक
बी.एच.ई.एल, दिल्ली

डॉ.ई.बी.आर.राव
निदेशक
ई.सी.आई.एल, हैदराबाद

डॉ.यू.आर.राव
अध्यक्ष
अंतरिक्ष आयोग, बैंगलोर

श्री.ए.आर.सूद
उपाध्यक्ष
वालचंदनगर उद्योग लि. बंबई

प्रो.सूरज भान सिंह
अध्यक्ष
सी.एस.टी.टी, दिल्ली

डॉ.एस.के.सिन्हा
निदेशक
आई.ए.आर.आई, दिल्ली

प्रो.बीरेन्द्र सिंह
निदेशक
टी.आई.एफ.आर, बंबई

प्रो.पी.एन.टंडन
ए.आई.आई.एम.एस, दिल्ली

आयोजन समिति

डॉ.दीन दयाल सूद - अध्यक्ष

श्री.राम निवास आर्य - संयोजक

डॉ.शिव प्रकाश गर्ग - संयोजक

श्री.एन.के.अग्रवाल - संयोजक

श्री.एम.आर. बालकृष्णन

डॉ.आर.एन.भटनागर

श्री.पी.एस. ढेकणे

श्री.जी.एल. गोस्वामी

श्री.ए.के.ग्रोवर

डॉ.ए.बी.जयरामन

श्री.एच.के. कौरा

श्री.पी.एल.कुकरेजा

श्री.ललित कुमार

श्री.प्रभात कुमार

श्री.रवींद्र मागो

श्री.एस.मजुमदार

श्री.एम.एल.मालू

डॉ.बी.के.मनचंदा

डॉ.यू.सी.मिश्र

श्री.रमेश चंद्र पंत

श्री.राम प्रसाद

डॉ.बी. रामशेष

श्री.जिले सिंह

डॉ.एस.के. सिक्का

श्री.सी.जी. सुकमारन

डॉ.बी.एन. वैदुय

उपसमितियां

कार्यक्रम एवं संपादन

श्री. राम प्रसाद
श्री.एम.एल.सोनी
डॉ. दुर्गा प्रसाद पाण्डेय
डॉ. कैलाशचंद्र भल्ला
डॉ. जनार्दन स्वरुप

स्मारिका एवं जन संपर्क

श्री. रविंद्र मागो
श्री. प्रभात कुमार
श्री. एच.डी. शर्मा
डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
श्री. काशीनाथ पांडेय

प्रदर्शनी

डॉ.विजय कुमार मनचंदा
श्री.के.पी. टंडन
डॉ.एच.एस.शर्मा
श्री.के.सी. शर्मा
डॉ. राजेंद्र स्वरुप
डॉ. एस.ए. अहमद
श्री. एन. एल. मिश्रा

पंजीकरण

श्री. रमेश चंद्र पंत
श्री.एस.पी. अवस्थी
श्री. दिवाकर प्रसाद
कु. राजकली पाल
श्री. राम चरण शर्मा

अतिथि सत्कार

श्री. जिले सिंह
श्री. दीप प्रकाश
श्री.सी.एस. यादव
डॉ. पी.एल. कुकरेजा
श्री. हरिओम मित्तल
श्री.टी. आर. बांगिया

सांस्कृतिक कार्यक्रम

श्री.एस.मजुमदार
श्री. वी. के. भाटिया
डॉ.अशोक ताम्हनकर
डॉ. सी. एल. थापर
श्री. के.एम. माहूले

सभागृह व्यवस्था

श्री.ए.के. ग्रोवर
श्री. आई.जी. शर्मा
श्री. प्रवीण खेडकर
श्री.वी.एस. ओझा
श्री. सुधाकर कोकाटे

परिवहन एवं आवास व्यवस्था

श्री.बी.एन. वैद्य
श्री. जी.डी. मित्तल
श्री.जे.डी. माथुर
श्री.एस. कृष्णन्
श्री.एम.एल. मालू

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद - एक परिचय

ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी
सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बंबई - 400 085.

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, 25 वर्ष पूरे कर आज भी अपने लक्ष्य की ओर प्रयत्नशील है। परिषद की स्थापना करते समय हमारे मन में सुब्रह्मण्यम् भारती के विचार ही थे-

"तीस कोटि मुख प्राण एक, यह भारत माँ की गुरुता।।
एक चिंतन किन्तु अठारह भाषाओं की क्षमता।।"

हम यही चाहते भी थे कि हमारा चिन्तन, वैज्ञानिक विचारधारा हमारी अपनी भाषाओं में जनसमुदाय तक पहुचें।

समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि समाज के प्रवुद्ध वर्ग, चिंतक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक समुदाय और आम जनता के बीच विचारों के आदान प्रदान का एक माध्यम हो। इस सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिकों का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। उनसे यह आशा की जाती है कि वे ज्ञान को अर्जित कर आम व्यक्ति तक पहुंचायें जिससे उन्हें अंधविश्वासों और रुढ़िगत मान्यताओं से मुक्ति मिल सके। इसके लिए ज्ञानार्जन के साथ उसका संचार भी महत्वपूर्ण है और यह एक सरल आम भाषा में हो।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है कि "ज्ञान, विज्ञान, धर्म एवं राजनीति की भाषा सदैव लोकभाषा ही होनी चाहिये।"

इसी मूल विचारधारा को लेकर विज्ञान और टैक्नोलॉजी के प्रमुख केन्द्र भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में सन 1968 में हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की स्थापना की गई। परिषद् का मुख्य उद्देश्य हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की रचना एवं प्रसार रहा और इसे पूरा करने के लिए परिषद ने पुस्तक प्रकाशन, विज्ञान वार्ताएं, शब्द संग्रह निर्माण, अनुवाद कार्य, विज्ञान संगोष्ठियां, लेख प्रतियोगिताओं जैसे कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इन सभी गतिविधियों का परिणाम है कि आज यह परिषद देश की अग्रणीय संस्थाओं में से एक है।

वैज्ञानिक का प्रकाशन

परिषद की गतिविधियों में सबसे मुख्य एवं स्थाई गतिविधि त्रैमासिक पत्रिका 'वैज्ञानिक' का अनवरत प्रकाशन रही है। वैज्ञानिक का परिचय अंक लगभग 24 वर्ष, पूर्व 1969 में प्रकाशित हुआ था। वैज्ञानिक चिंतन हिन्दी में प्रारम्भ हो, एक उच्च स्तरीय लेखों की पत्रिका पाठकों को मिले तथा विज्ञान में रुचि रखने वाले लेखकों को एक मंच मिले, इत्यादि विचार 'वैज्ञानिक' प्रकाशन में हमारे प्रेरणा स्रोत रहे हैं। वैज्ञानिक में प्रकाशित लेख विज्ञान की सभी शाखाओं से लिए जाते हैं। जिनमें विशेषज्ञ अपने नवीनतम शोध की जानकारी सभी पाठकों तक पहुंचाते हैं। विषय विशेष पर नवीनतम एवं पूर्ण जानकारी देने के उद्देश्य से 'वैज्ञानिक' के विशेषांको को प्रकाशित करने की शुरूआत सन् 1972 में की गई। पिछले 21 वर्षों में विभिन्न विषयों पर विशेषांक निकाले जा चुके हैं। जिनमें कृषि विज्ञान, खगोल भौतिकी, शरीर विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, ध्रुव रिएक्टर, रेडियो रसायनिकी, सुरक्षा, पर्यावरण प्रदूषण, भारतीय विज्ञान की भावी दिशाएं, लेसर जैसे उपयोगी तथा आधुनिक विषय शामिल है। 'वैज्ञानिक' के विशेषांको की सूची तालिका-1 में अलग से भी दी जा रही है (पृष्ठ-27)।

'वैज्ञानिक' के प्रकाशन में हमें भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिकों का बराबर सहयोग मिला जिन्होंने इसके व्यवस्थापन एवं संपादन में अत्यन्त सराहनीय कार्य किया। इसके साथ परमाणु ऊर्जा विभाग ने आर्थिक अनुदान देकर जहां एक ओर हमारा उत्साह बढ़ाया, वही इस कार्य को और भी अधिक सुव्यवस्थित ढंग से करने के लिए भी प्रेरित किया।

"विज्ञान पत्रिका"का प्रकाशन

हमने पिछले वर्ष (1991-92) से विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया है। इस विज्ञान समाचारिक पत्रिका के माध्यम से हम उन लोगो से जो विज्ञान के क्षेत्र में प्रत्यक्ष रुप में कार्य नही करते सम्बन्ध बनाये हुए हैं। इस पत्रिका में देश एवं विदेश के वैज्ञानिक समाचार, उपलब्धियों एवं किसी विषय विशेष पर सीमित सरल जानकारी का समावेश होगा। हम आशा करते है कि इस त्रैमासिक पत्रिका से और अधिक लोगों तक अपनी बात कह सकेगें।

अखिल भारतीय वैज्ञानिक लेख प्रतियोगिता

1970 से प्रतिवर्ष परिषद अखिल भारतीय स्तर पर विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती आ रही है। इस प्रतियोगिता का मुख्य उद्देश्य आम पाठक में राज भाषा में वैज्ञानिक लेख लिखने की क्षमता पैदा करना, और अच्छे वैज्ञानिक लेखों को 'वैज्ञानिक' पत्रिका द्वारा सभी तक पहुंचाना है। इसमें अच्छे लेखकों को पुरस्कार तथा प्रमाण पत्र भी दिये जाते हैं। अहिन्दी भाषी अच्छे लेखकों को विशेष पुरस्कार दिये जाते हैं। इस प्रतियोगिता ने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया जिसमें 160 लेख प्राप्त हुए। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि यह प्रतियोगिता वास्तव में बहुत लोकप्रिय है।

विज्ञान संगोष्ठियां -

परिषद द्वारा समय समय पर आधुनिक विषयों पर विज्ञान संगोष्ठियों का आयोजन भी किया जाता रहा है। इन विज्ञान संगोष्ठियों का उद्देश्य आधुनिक जानकारी को सदस्यों तक पहुंचाना रहा है। इन संगोष्ठियों ने इस बात को भी सिद्ध किया है कि आधुनिक वैज्ञानिक विषयों पर राजभाषा हिन्दी में सार्थक चर्चा की जा सकती है। परिषद द्वारा आयोजित संगोष्ठियों/सेमिनार/कार्यशालाओं का संकलन पृष्ठ-28 पर दिया गया हैं।

शब्द संग्रह निर्माण एवं अनुवाद कार्य

वैज्ञानिक शब्दावली एवं अनुवाद आज एक बहुचर्चित विषय है क्योंकि इसके माध्यम से ही हम वैज्ञानिक साहित्य एवं जानकारी को जनसाधारण तक हिन्दी में पहुंचाने का कार्य सरलता से कर सकते हैं, परन्तु इस प्रक्रिया में अनेक मत है। इस विषय की सार्थकता एवं गूढ़ता को देखते हुए परिषद ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के साथ मिलकर कई कार्यशालाओं का आयोजन किया है। इनमें शब्दावली निर्माण, अनुवाद सिद्धान्त एवं प्रक्रिया, भाषा विकास, शैली माध्यम तथा सप्रेषण माध्यम आदि जटिल विषयों पर चर्चा की गई। इसके अलावा समय-समय पर दक्ष वैज्ञानिकों की सहायता से विज्ञान के आधुनिक विषयों पर जैसे स्वास्थ्य भौतिकी, न्यूक्लीय इंजीनियरिंग, घनावस्था विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, रेडियो रसायनिकी विषयों से संबंधित शब्दों के संकलन प्रकाशित किये गये। साथ ही परिषद लेखों के अनुवाद कार्य में परमाणु ऊर्जा विभाग की सहायता करती रहती है।

राजभाषा वार्ताएं -

समसामायिक वैज्ञानिक विषयों पर राजभाषा वार्ताओं का सिलसिला प्रारम्भ से ही चलता आ रहा है। हर वर्ष में तीन चार विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न विषयों पर राजभाषा वार्ताएं प्रस्तुत कीं जाती हैं। राजभाषा कार्यान्वयन समिति, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र ने इसमें हमें सहयोग दिया।

नोबेल पुरस्कार - किसे और क्यों ?

हमने पिछले वर्ष से यह नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। इसका उद्देश्य विज्ञान के क्षेत्र में दिये जानेवाले श्रेष्ठतम पुरस्कार (नोवेल पुरस्कार) विजेता वैज्ञानिकों एवं उनके शोध कार्यों के बारे में जानकारी देना है। पहला कार्यक्रम 20 जनवरी 1992 को आयोजित किया गया जिसमें 1991 में मिले भौतिकी, रसायनिकी एवं मैडीसन में पुरस्कार विजेताओं के बारे में तथा उनसे सम्बन्धित विषयों के बारे में चर्चा की गई।

विद्यार्थियों के लिये कार्यक्रम

परिषद ने अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ विद्यार्थियों के लिये विशेष कार्यक्रम भी किये हैं। इनमें वैज्ञानिक 'प्रश्नमंच एवं स्कूलों/कालेजों में 'वैज्ञानिक वार्ताएं' जैसे कार्यक्रम शामिल हैं। इनका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में विज्ञान के प्रति रुचि पैदा करना तथा राजभाषा में वैज्ञानिक तथ्यों को जन साधारण तक पहुंचाने के कार्य में योगदान देना है। इसी अवस्था में हिन्दी के माध्यम से विज्ञान विषयों का अध्ययन मौलिक चिंतन जागृत करने से सहयोग दे सकता है। ये कार्यक्रम पंडित नेहरू एवं डॉ. होमी भाभा की स्मृति में आयोजित किए जाते हैं।

अन्य कार्यक्रम

इसके अतिरिक्त परमाणु ऊर्जा विभाग के प्रशासनिक वर्ग एवं अन्य सहायक कर्मचारियों (नान्-टेक्निकल/साइन्टिफिक) के लिए भी परिषद ने कुछ ऐसे कार्यक्रम शुरू किए हैं जिनसे उनको आधुनिक विज्ञान की जानकारी मिल सके। साथ ही उनके ज्ञान एवं मनोबल में वृद्धि हो सके।

परिषद ने अपने 25 वर्षों के इस अल्पकाल में विज्ञान को हिन्दी के माध्यम से लोकप्रिय बनाने की दिशा में काफी कुछ किया है। इस प्रगति से हमें कुछ संतोष तो मिलता है परन्तु हम अपने प्रयासों को तभी पूर्णतया सफल मानेंगे जब वैज्ञानिक विषयों पर मौलिक चिंतन की प्रक्रिया राजभाषा में सहज रुप से होने लगेगी। इसके लिए वे प्रयास भी आवश्यक हैं जो शिक्षित वर्ग की मानसिकता में उचित बदलाव ला सकें। आज इस दिशा में कुछ उत्साहजनक संकेत मिल रहे हैं। इसलिए हमें अपने प्रयासों की मजबूती को निरन्तर कायम रखना चाहिए। इस रजत जयन्ती के अवसर पर हम उन सभी लोगों को जिन्होने परिषद को गतिशील बनाने में सहयोग दिया है उनके हार्दिक रुप से आभारी हैं और आशा करते हैं कि हमें उनका सहयोग मिलता रहेगा और परिषद अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर होती रहेगी।

न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन (एन पी सी)

भारत में परमाणु शक्ति द्वारा विद्युत उत्पादन की संभावना का स्वर्गीय डा.होमी जहांगीर भाभा ने सन् 1945 में ही एक स्वप्न देखा था । इस स्वप्न के साकार होने की शुरूआत योजना आयोग द्वारा अगस्त 1958 में तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत एक 300 मेगावाट के परमाणु बिजलीघर स्थापित करने के प्रस्ताव के अनुमोदन के साथ हुआ । सन् 1960में तारापुर में 210-210 मेगावाट क्षमता के दो बॉयलिंग वाटर रिएक्टर लगाने का निर्णय लिया गया । सन्1969 में अमेरिका की जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी द्वारा तारापुर बिजलीघर बनाकर पूरा किया गया सन् 1962 में एटॉमिक इनर्जी ऑफ कनाडा के सहयोग से 220-220मेगावाट क्षमता के दाबित भारी पानी किस्म के 2 रिएक्टर राजस्थान में कोटा के पास रावतभाटा में चंबल नदी के किनारे लगाने का निर्णय लिया गया । सन् 1964 में बिजलीघर संबंधी कार्यो को सुचारू रूप से चलाने कि लिए राजस्थान परमाणु ऊर्जा परियोजना कार्यालय की स्थापना बम्बई में की गई । नाभिकीय ऊर्जा के कार्यक्रम को बढ़ाने की योजनाएं बनी तो अप्रैल 1967 में पावर प्रोजक्ट इंजीनियरिंग डिविजन (पी. पी. ई. डी.) की स्थापना की गई । नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रो के पूर्ण डिजाइन, इंजीनियरिंग, उपस्करों की आपूर्ति निर्माण, कमीशनिंग, प्रचालन एवं अनुरक्षण का उत्तरदायित्व पी पी ई डी को सौपा गया । परमाणु विद्युत प्राधिकरण (एटोमिक पावर अथौरिटी) की स्थापना जुलाई 1970 में की गई तत्पश्चात् इसका पी पी ई डी में विलय कर दिया गया ।

परमाणु ऊर्जा आयोग के 15 वर्षीय कार्यक्रम के अंतर्गत सन 2000 तक 10,000 मेगावाट विद्युत उत्पादन के लक्ष्य की प्राप्ति करने हेतु अगस्त 1984 में न्यूक्लियर पावर बोर्ड की स्थापना की गई । इस विशाल कार्यक्रम के लिए लगभग 14,000 करोड़ रुपयों के वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता थी । इसलिए परमाणु ऊर्जा अधिनियम में संशोधन कर 3 सितम्बर सन् 1987 को न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन की स्थापना की गई । एन पी सी भारत सरकार का एक उद्यम है । परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के लिए महत्वपूर्ण निर्णय अब लगभग पूर्णतया कारपोरेशन ले सकता है। कारपोरेशनने अपने पहले वर्ष में लगभग 60 करोड़ रुपयों का लाभ अर्जित किया।

एन पी सी द्वारा प्रचालित एवं निर्माणाधीन बिजलीघरों एवं परियोजनाओं के कुछ मुख्य आंकड़े इस प्रकार हैं:-

बिजलीघर	क्रांतिकता प्राप्ति की तारीख	वाणिज्यिक रूप से प्रचालन की तारीख	बिजली का कुल उत्पादन (दस लाख युनिटों में) वाणिज्यिक प्रचालन के पश्चात जुलाई 1992 तक
तारापुर परमाणु बिजलीघर-1	01/02/69	28/10/69	20,479.9
तारापुर परमाणु बिजलीघर-2	27/02/69	20/10/69	20,840.0
राजस्थान परमाणु बिजलीघर ● *-1	11/08/72	16/12/73	7,993.4
राजस्थान परमाणु बिजलीघर*-2	08/10/80	01/04/81	12,760.5
मद्रास परमाणु बिजलीघर -1	जुलाई '83	27/01/84	8,452.8
मद्रास परमाणु बिजलीघर -2	सितम्बर'85	21/03/86	6,210.4
नरोरा परमाणु बिजलीघर -1	12/03/89	01/01/91	1,044.3
नरोरा परमाणु बिजलीघर -2	24/10/91		
काकरापार परमाणु बिजलीघर -1	03/09/1992		

● राजस्थान परमाणु बिजलीघर प्रचालन परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत

* भारी पानी संयंत्र, कोटा को वाष्प की आपूर्ति सहित

निर्माणाधीन परियोजना	प्रचालन का लक्ष्य
काकरापार परमाणु विद्युत परियोजना -2	1992-93
राजस्थान परमाणु विद्युत परियोजना-3	1995-96
राजस्थान परमाणु विद्युत परियोजना-4	1995-96
कैगा परमाणु विद्युत परियोजना -1	1995-96
कैगा परमाणु विद्युत परियोजना -2	1995-96
तारापुर परमाणु विद्युत परियोजना -3-4	2000-2001

निर्माणाधीन परियोजनाओं के अतिरिक्त राजस्थान में 500-500 मेगावाट की चार तथा कैगा में 235-235 मेगावाट की चार परियोजनाओं के लिए मूलरूप से निर्णय लिया जा चुका है ।

पृथ्वी पर अवतीर्ण होने से आज तक (= एक वर्ष) : मनुष्य ने क्या किया?

1	जनवरी	मनुष्य का प्रवेश ** (पृथ्वी पर)
19	नवंबर	मनुष्य ने अग्नि (आग) की खोज कर ली
10	दिसम्बर	कंदराओं, गुफाओं में नक्काशी की शुरूआत
29	दिसम्बर	कृषि की खोज; मनुष्य ने झोंपड़ी बनाई
30	दिसम्बर	पिरामिडों का निर्माण
31	दिसम्बर	2130 बजे : प्रिंटिंग प्रेस का निर्माण
		2305 बजे : औद्योगिक क्रांति
		2340 बजे : वायुयान का निर्माण
		2355 बजे : पहला कम्प्यूटर
		2359 बजे : आर्मस्ट्राग चंद्र तल पर
		2400 बजे : आज जो कुछ हो रहा है

केमिकल वीकली (20 अगस्त 1991) में श्री. घरपुरे के लेख के आधार पर निर्मित।

** मनुष्य का विकास डार्विनी पद्धति से हुआ अथवा उस का बीजारोपण अंतरिक्ष से आये अन्य मानवों ने किया, निश्चित नहीं। यहां दो टांगों पर चलनेवाले मनुष्य का जिक्र है।

(प्रस्तुति : डा देवकी नन्दन)

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड (आई. आर. ई. लि.)

इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड को 18 अगस्त, 1950 को भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 के अधीन भारत सरकार और तत्कालीन त्रावणकोर-कोचीन के संयुक्त स्वामित्ववाली एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में निगमित किया गया था। 1963 में, त्रावणकोर-कोचीन राज्य के शेअर भारत सरकार को सौंप दिए गए थे और आई. आर. ई. परमाणु ऊर्जा विभाग के अधीन एक पूर्ण केन्द्रीय सरकार का उपक्रम बन गई थी ।

प्रचालन के क्षेत्र

इस समय यह कंपनी निम्नलिखित प्रभाग चलाती है : (क) रेअर अर्थ्स, आलवे, (ख) खनिज प्रभाग, i)चवरा, ii)मनवलाकुरिचि, और iii) क्विलोन, (ग) आसकॉम-छत्रपुर, उड़ीसा।

कंपनी के वर्तमान कार्यों में चार क्षेत्र शामिल हैं; (i) तटीय रेत खनिजों के पृथक्करण के लिए खनन कार्य, (ii) विविध प्रकार के रसायनों के उत्पादन के लिए मोनाजाइट की अभिक्रिया, (iii) परमाणु ऊर्जा विभाग, भारत सरकार की ओर से थोरियम संयंत्र का प्रबंध, और (IV) मूल्य वर्धित खनिजों के उत्पादन के लिए ऑसकॉम परियोजना का प्रचालन ।

उत्पाद और उनका उपयोग

खनिज

इल्मेनाइट : मुख्य रूप से सल्फेट प्रक्रिया द्वारा एक श्वेत रंग द्रव्य टिटेनियम डाय ऑक्साइड के निर्माण में प्रयुक्त होता है । इसे सिंथेटिक रोइल (बेनिफिशिएटेड इल्मेनाइट) के उत्पादन के लिए और फेरो टिटेनियम मिश्र धातुओं के उत्पादन के लिए भी काम में लाया जाता है ।

स्टाइल : वेल्डिंग इलेक्ट्रोड की कोटिंग के लिए और क्लोराइड प्रक्रिया द्वारा टिटेनियम डाइऑक्साइड रंग द्रव्य के उत्पादन के लिए भी और टिटेनियम मेटल/स्पांज के उत्पादन के लिए टिटेनियम टेट्राक्लोराइड के लिए प्रयुक्त होता है ।

सिंथेटिक स्टाइल : क्लोराइड प्रक्रिया द्वारा टिटेनियम ऑक्साइड रंग द्रव्य के निर्माण में और टिटेनियम मेटल/स्पांज के उत्पादन के लिए टिटेनियम टेट्राक्लोराइड के लिए काम में लाया जाता है

हिटॉक्स :शुद्ध टिटेनियम डाय ऑक्साइड रंग द्रव्य के लिए एक विकल्प के रूप में काम में लाया जाने वाला एक बफ रंग वाला टी. आई. ओ. रंग द्रव्य ।

सिलिमेनाइट :उच्च तापमान रिफ्रि क्ट्रियों के निर्माण के लिए मुख्य रूप से प्रयुक्त। सैरेमिक उद्योग में भी काम में लाया जाता है ।

जरकॉन : फाउंड्री सैरेमिक और रिफ्रिक्टरी में प्रयुक्त। जिरकॉनियम रसायनों, धातुओं और मिश्र धातुओं के निर्माण में भी प्रयुक्त।

जिरकॉनियम आक्साइड : सैरेमिक एनैमलों में प्रयुक्त होता है ।

जिरकॉन फ्लाउर (जिरफ्लाउर) : उच्च तापमान ढलाई के लिए फाउंड्री में काम मे लाया जाता है ।

गारनेट : कांच/टी.वी. ट्यूबों, लकडी की पॉलिशिंग, रेत ब्लास्टिंग के और जल फिल्टरेशन के लिए, अपघर्षकों के निर्माण के लिए प्रयुक्त होता है ।

रेअर अर्थ्स क्लोराइड : लाइटर चकमक बनाने के लिए प्रयुक्त मिश्रधातु के निर्माण में, पेट्रोलियम भंजन के लिए उत्प्रेरकों के उत्पादन में, धातुक साबुनों के निर्माण में जिनका उपयोग रंगों में शुष्ककों के रूप में होता है, शुद्ध रेअर अर्थ्स और रेअर अर्थ्स मिश्रणों के उत्पादन के लिए एक प्रारंभिक सामग्री के रूप में, कार्बनिक अपद्रव्यों को और पेपरमिल एफ्लुएंटों के विरंजीकरण के लिए, और विशेष फेरोअस कॉस्टिंग के निर्माण में विस्तृत रूप से काम में लाया जाता है ।

रेअर अर्थ्स फ्लुओराइड : चाप तीव्रता बढ़ाने के लिए आर्क कार्बन इलेक्ट्रोड, पिंडाकार कास्ट आयरन, स्पेशल स्टील और रेअर अर्थ्स मिश्र धातुओं के निर्माण में प्रयुक्त होता है ।

रेअर अर्थ्स ऑक्साइड :चाप तीव्रता बढ़ाने के लिए आर्क कार्बन उद्योग में, दृष्टि कांच संयोजन, कांच की पालिश और रिफ्रैक्टरी सामग्रियों के लिए काम में लाया जाता है ।

सिरियम ऑक्साईड : ऑप्टिकल लैंसों, प्लेट ग्लास, टेलीविजन ट्यूब फेस प्लेटों, प्रिज्मों आदि की पॉलिश क रने में काम आता है । सालिड स्टेट डिवाइसों, अल्ट्रावाइलेट एब्जार्पशन ग्लासों, रेडिएशन प्रोटेक्टिव ग्लासों आदि में काम मे लाया जाता है।

सिरियम हाइड्रेट : कांच के विरंजीकरण में पालिशिंग संयोजनो के निर्माण में, विशेष कांचो में अल्ट्रावाइलेट एब्जार्बरों में एक संघटक के रूप में, रंग और छपाई की स्याही के शुष्ककों के एक उत्प्रेरक अंश के रूप में [ग्रेन ग्रोथ कंट्रोल] के लिए एक मिश्रण तत्व के रूप मे और फैरोअस धातुकी, में काम लाया जाता है ।

डिडिमियम कंपाउंड : शुद्ध रेअर अर्थ्स मिश्रणों के निर्माण में, कांच, सैरेमिक, न्यूक्लिअर और इलेक्ट्रॉनिक उद्योगो में और स्टेनलेस स्टील मिश्र धातुओं की गर्म कार्य क्षमता को सुधारने के लिए काम मे लाया जाता है ।

समेरियम ऑक्साइड/कन्सन्ट्रेट :समेरियम धातु को बनाने के लिए जिसका उपयोग उच्च निग्रह बल और उच्च चुंबकीय ऊर्जा के साथ समेरियम कोबाल्डट परमानेंट मैगनेट के निर्माण में किया जाता है ।

गैडोलिनियम ऑक्साइड/कान्सन्ट्रेटः चुम्बकीय बुदबुदों के लिए गैडोलिनियम गैलिनियम गारनेट (जीजीजी) द्रव्यों के निर्माण में काम आता हैं । न्यूट्रॉन एब्जार्बर के रूप में न्यूक्लियर रियेक्टरों में भी काम में लाया जाता है ।

इट्रियम ऑक्साइड/कन्संन्ट्रेट: रंगीन टी. वी. ट्यूबों और फ्लुओरेसेंट लैम्पों के लिए,फॉसफेरस के निर्माण में काम में लाया जाता है ।

यूरोपियम ऑक्साइड /कंन्संट्रेट : उत्प्रेरक के रूप में कलर टी वी ट्यूब और फ्लुरेसेंट लाइटस के लिए फॉसफोर बनाने में उपयोगी ।

ट्राइसोडियम फास्फेट :ब्वायलर में एक डिस्केलिंग और डिग्रीजिंग एजेंट के रूप में, डिटर्जेंट पाउडर के निर्माण में एक फिलर के रूप में गन्ने की रस की स्पष्टता सुधारने में और चाशनिओं की मात्रा घटाने के लिए विस्तृत रूप से काम में लाया जाता है । स्वच्छता के लिए टैक्सटाइल, कागज और खाद्य उद्योगों में भी काम मे लाया जाता है ।

थोरियम नाइट्रेट और थोरियम ऑक्साइड :गैस मेटल उद्योग में और फ्लुओरेसेंट ट्यूबों में स्टार्टरों के लिए और न्यूक्लियर रियेक्टरों के लिए ईंधन तत्व बनाने के लिए काम मे लाया जाता है ।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंन्द्र :एक परिचय

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, परमाणु ऊर्जा विभाग का एक प्रमुख संस्थान है, जो नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए नाभिकीय विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास संबंधी गतिविधियों में कार्यरत है। वर्षों के प्रयास के फलस्वरुप नाभिकीय शक्ति एवं परमाणु ऊर्जा के शांतिमय उपयोग हेतु एक आत्मनिर्भर अनुसंधान एवं विकास का आधार प्राप्त करने के लिए, बहुविषयी अनुसंधान सुविधाएं स्थापित की जा चुकी है तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी मानव शक्ति भी तैयार की जा चुकी है। नाभिकीय अयस्क के अन्वेषण एवं खनन से लेकर नाभिकीय ईंधन संविरचन, नाभिकीय विद्युत संयत्रों के विकास एवं उनकी स्थापना, भुक्त शेष ईंधन का पुनर्संसाधन एवं नाभिकीय अपशिष्ट के निपटान तक के पूर्ण नाभिकीय ईंधन चक्र के क्षेत्र में केंन्द्र ने स्वदेशी तकनीकी हासिल की है। एक अन्य प्रमुख गतिविधि, रेडियोआइसोटोपों का उत्पादन और इनके आयुर्विज्ञान, उद्योग एवं कृषि में अनुप्रयोग की रही है। आज भारत आइसोटापों के उत्पादन में केवल आत्म-निर्भर ही नहीं बल्कि इस क्षेत्र में उच्चस्तरीय जानकारी रखने वाले विश्व के समुन्नत राष्ट्रों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

भापअ केन्द्र ने भौतिकी, रसायनिकी, जीव विज्ञान, इंजीनीयरी एवं पदार्थ विज्ञानों मीभी सशक्त बुनियादी अनुसंधान वर्गो का विकास किया गया है। लेसर, त्वरक, उच्च तापीय अतिचालकता, निम्नतापिकी, रोबोटकी एवं कंम्प्यूटर विज्ञानों जैसे उच्च तकनीकी एवं विज्ञान के अग्रणी क्षेत्रों में इनके अनुप्रयोग पर विशेष बल देते हुए लगातार स्वदेशी जानकारी उपलब्ध कराई जा रही है। नाभिकीय एवं अन्य पदार्थों की गुणवता को सुनिश्चित करने एवं उनके अभिलक्षणन हेतु उन्नत विश्लेषणात्मक रसायनिकी एवं स्पेक्ट्रमी उपकरण भी स्थापित किए गए हैं। संपूर्ण नाभिकीय ईंधन चक्र, आइसोटोपों के अनुप्रयोगों, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा, बुनियादी एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान हेतु अपेक्षित इलेक्ट्रानिकी यंत्रीकरण के विकास पर भी विशेष बल दिया गया हैं।

परमाणु ऊर्जा विभाग के अन्य संगठनों को नाभिकीय तथा सम्बद्ध प्रौद्योगिकी निरंतर हस्तांतरित की जारही है। इसके अतिरिक्त इन गतिविधियों से कई स्पिनऑफ प्रौद्योगिकीयों का विकास किया गया है। जिनका लाभ हम अन्य सरकारी अभिकरणों, सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों एवं निजी क्षेत्र के उद्योगों को भी उपलब्ध करा रहे है। राष्ट्रीय हित की विभिन्न प्रौद्योगिकियों हेतु आवश्यक जानकारी एवं परामर्श सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं।

नाभिकीय विज्ञान एवं रिएक्टर इंजीनियरी

रिएक्टर प्रणाली हेतु भौतिकी एवं इंजीनियरी के बुनियादी एवं अनुप्रयुक्त पहलुओं पर अनुसंधान कार्य तथा शांतिपूर्ण अनुप्रयोगों हेतु रेडियोआइसोटोपों के उत्पादन के लिए भापअ केंद्र द्वारा अब तक सात अनुसंधान रिएक्टर अभिकल्पित एवं निर्मित किए जा चुके हैं। इन रिएक्टरों में पहले रिएक्टर, 1956 में निर्मित, तरणताल (स्विमिंग पूल) प्रकार का एक मेगावॉट का रिएक्टर अप्सरा था और सबसे बडा रिएक्टर है 100 मेगावाट ध्रुव रिएक्टर, जो 1985 में कमींशन किया गया। उच्च फ्लक्स वाला रिएक्टर ध्रुव को पूर्णतया भापअ केन्द्र के वैज्ञानिको एवं इंजीनीयरों द्वारा अभिकल्पित कर कमीशन किया गया। इसमें नाभिकीय विद्युत उत्पादन, नाभिकीय पदार्थो का मूल्यांकन एवं बुनियादी तथा अनुप्रयुक्त अनुसंसाधनों से संबंधित प्रयोगों के लिए कई विशेष सुविधाएं उपलब्ध कराई गई है। ध्रुव रिएक्टर के चालू होने से रेडियोआइसोटोपों की उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। और देश को कार्बन -14 एवं आयोडीन -125 जैसे विशिष्ट रेडियोआइसोटोप उपलब्ध कराये जा रहे है। न्यूट्रानरेडियोग्राफी अनुप्रयोगों के लिए कलपक्कम स्थित इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केन्द्र में भापअ केन्द्र द्वारा 30 किलोवाट न्यूट्रान स्रोत वाले कामिनी रिएक्टर का निर्माण किया जा रहा है। भापअ केन्द्र में हाल ही में 5 में 10 मेगावाट की तापीय विद्युत

क्षमता का एक फ्लक्स अनुसंधान रिएक्टर का अभिकल्पन किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण के सुसंगत सुरक्षा मानदण्डों के अधीन एक द्विपक्षीय समझौते के आधार पर इस रिएक्टर के निर्यात का प्रस्ताव भी किया जा रहा है।

अपने विद्युत कार्यक्रम को अनुसंधान एवं विकास संबंधी सहायता उपलब्ध कराने के जनादेश का भापअ केन्द्र में क्रियान्वयन किया जा रहा है। इस प्रयास के एक भाग के रूप में मुख्य आधार स्वरुप, दाबित भारी पानी रिएक्टर हेतु विभिन्न प्रणालियों के अभिकल्पन एवं विकास के क्षेत्र में भापअ केन्द्र निरंतर कार्यरत है। जटिल रिएक्टर प्रणालियों एवं उनके घटकों के स्वदेशीकरण की दिशा में व्यापक रुप से कार्य किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त 500 मेगावाट दाबित भारी पानी रिएक्टर एवं 500 मेगावाट के प्रोटोटाईप द्रुत अभिजनक रिएक्टर की हस्तन प्रणाली के अभिकल्पन में भी यह केन्द्र उल्लेखनीय योगदान कर रहा है। इस समय दो क्वथन (बॉयलिंग) जल रिएक्टर इकाइयों के अलावा छ: दाबित पानी रिएक्टर इकाइयां तारापुर में काम कर रही हैं।

अपनी प्राथमिकताओं एवं नई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए थोरियम की उपयोगिता की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भापअ केन्द्र में किए जाने वाले कार्यों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, रिएक्टर सुरक्षा संबंधी अनुसंधान कार्य इनका लाभ न्यूक्लिअर पावर कारपोरेशन को भी उपलब्ध कराया जा रहा है।

नाभिकीय पदार्थ

नाभिकीय रिएक्टरों हेतु नाभिकीय ईंधनों, न्यूट्रान विमंदकों एवं संरचनात्मक पदार्थों जैसे विभिन्न पदार्थों के उत्पादन एवं संविरचन संबंधी जानकारी एवं विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए रासायनिक एवं धातुकीय अनुसंधान हेतु श्रेष्ठ सुविधाएं भापअ केन्द्र में उपलब्ध हैं। भापअ केन्द्र में विकसित प्रवाह चित्र के आधार पर विद्युत रिएक्टरों के लिए नाभिकीय श्रेणी के जिर्कोलाय संघटक एवं प्राकृतिक तथा समृद्ध यूरेनियम आक्साइड ईंधन संविरचन हेतु नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र हैदराबाद में उत्पादन सुविधाएं स्थापित की गई है। कलपक्कम स्थित द्रुत अभिजनक परीक्षण रिएक्टर भापअ केन्द्र में विकसित प्लूटोनियम आधारित ईंधन का उपयोग करते है। तारापुर स्थित रिएक्टर के लिए एक वैकल्पित ईंधन के रुप में यूरेनियम मिश्रित आक्साइड ईंधन भी विकसित किया गया है। भापअ केन्द्र में लिए गए अनुसंधान एवं विकास संबंधी कार्यों के आधार पर ही देश में भारी पानी संयंत्र स्थापित किए गए हैं। किरणित ईंधन से प्लूटोनियम के पृथक्कन हेतु भुक्त शेष ईंधन के रासायनिक पुनर्संसाधन के क्षेत्र में उल्लेखनीय विशेषज्ञता हासिल की गई है। भापअ केन्द्र ट्राम्बे तथा तारापुर स्थित पुनर्संसाधन संयंत्र, किरणित ईंधन का संसाधन करता। ईंधनों के पुनर्संसाधन से प्राप्त उच्च रेडिओएक्टिव द्रव अपशिष्ट को तारापुर स्थित अपशिष्ट अचलीकरण संयंत्र में (अनिक्षालनीय विधि से) कांच के मैट्रीक्स में स्थिर किया गया है। ऐसा ही एक अपशिष्ट अचलीकरण संयंत्र ट्राम्बे एवं कलपक्कम में स्थापित किया गया है।

रेडियोआइसोटोप

आइसोटोप उत्पादन एवं विकिरण अनुप्रयोग भापअ केन्द्र की एक प्रमुख गतिविधि है। कोबाल्ट - 60, इरीडियम - 190 एवं सीजियम - 137 जैसे रेडियोआइसोटोपों की बड़ी मात्रा में हस्तन के लिए भापअ केन्द्र में स्थित प्रयोगशालाओं में अनेक सुविधाएं तथा मास्टर स्लेव परिचालक उपलब्ध हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार के आइसोटोपों के उत्पादन हेतु तुर्भे, नई मुंबई में एक रेडियो औषध प्रयोगशाला (आइसोफार्म) की स्थापना की गई है। रेडिओ औषध की श्रृंखला में स्वदेशी उत्पादन से देश में नाभिकीय औषधियों के विकास को काफी प्रेरणा मिली है। कैंसर संबंधी विकारों, थायरायड एवं यकृत विकारों से संबंधित बीमीरयों के निदान हेतु छ: लाख रोगियों की जांच के लिए आज लगभग 300 से अधिक आयुर्विज्ञान संस्थान एवं 80 अस्पताल रेडियोआइसोटोपों का प्रयोग करते है। विभिन्न बीमारियों के शीघ्र निदान हेतु शरीर में उपलब्ध द्रव में वाइरल प्रोटीनों एवं हारमोनों, एवं ड्रगों जैसे जैविक संघटकों की व्यापक किस्मों के आकलन हेतु अनेक रेडियो प्रतिरक्षण आमापन किट

दैनिक रुप से भापअ केन्द्र द्वारा उपलब्ध कराये जा रहे है। व्यापक गामा विकिरण तो का एक दूसरा प्रमुख अनुप्रयोग चिकित्सा उत्पादों के निर्जर्मीकरण का है जिसे हाल में चिकित्सा के क्षेत्र मे काफी लोकप्रियता मिली है, शल्य चिकित्सा संबंधित उत्पादों हेतु भारतीय चिकित्सा उद्योग को व्यावसायिक स्तर पर ट्राम्बे आइसोमेड संयंत्र द्वारा 1974 से लगातार विकिरण निर्जर्मीकरण सेवाएं उपलब्ध कराई गई है। एक नया विकिरण निर्जर्मीकरण संयंत्र रश्मि 1989 में बंगलोर में कमीशन किया गया है तथा तीसरा किरणन संयंत्र नई दिल्ली में स्थापित किया गया है।

उद्योग में औद्योगिक दाब पात्रों, नलिकाओं एवं जटिल घटकों में दोषों का पता लगाने के लिए गामा रेडियोग्राफी का व्यापक उपयोग किया गया है। बंद पात्रों में द्रव स्तरों के नियंत्रण एवं पाइपों, पन्नियों तथा शीटों की मोटाई के मापन के लिए न्यूक्लियानिक गेजों का उपयोग किया गया है। गैस / तेल की भूमिगत पाइपलाइनों में सूक्ष्म रिसावों का पता लगाने में रेडियोआइसोटोपों का इस्तेमाल उपयोगी सिद्ध हुआ है और इसके लिए कोई उत्खनन कार्य आवश्यक नही होता। बांधों में रिसाव एवं बंदरगाहों में गाद (सिल्ट) के स्थान परिवर्तन से संबंधित अध्ययन में रेडियोआइसोटोपों का उपयोग किया गया है। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि जुलाई 1991 में रेडियोआइसोटोपों का दस लाखवां परेषण पूरा हो गया था।

भापअ केन्द्र ने अवमल को खाद के रूप में उपयोग में लाने के लिए किरणन द्वारा उसके रोगजनक बैक्टेरियों एवं विषाणुओं को नष्ट करने हेतु हाल ही में बड़ौदा में एक अवमल स्वास्थ्यीकरण संयंत्र स्थापित किया है।

विकिरण जीव विज्ञान एवं कृषि में अनुसंधान एवं विकास का एक सुदृढ़ आधार विकसित किया गया है और विकिरण तकनीकों का प्रयोग कर कई फसलों के पौंधे के विकसित उत्परिवर्तियों का उत्पादन किया है। अरहर, मूग, उड़द, एवं लंबे पतले चावल 'हरि' जैसी दालों एवं अनाजों की नई किस्में, भारतीय किसानों में अपनी अधिक उपज देने के कारण पहले ही काफी लोकप्रिय हो चुकी हैं। अधिक लाभ देने वाली फसलों की अन्य किस्में जूट, मूँगफली एवं सरसों की फसलें हैं। खाद्य उत्पादों के संरक्षण के लिए किरणन प्रौद्योगिकी अब विकसित हो चुकी है तथा यह केन्द्र आलू, प्याज, मछली, पोल्ट्री, मांस, गेहूं के उत्पादों, मसालों एवं आम तथा केले जैसे फलों के संरक्षण के लिए इसके अनुप्रयोग को बढ़ावा दे रहा है।

इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण

भापअ केन्द्र, भारत में इलेक्ट्रानिकी के विकास पर जोर देनेवाला पहला संगठन था। संपूर्ण नाभिकीय ईंधन चक्र एवं आइसोटोप अनुप्रयोग तथा बुनियादी अनुसंधान के लिए अपेक्षित उन्नत इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण के विकास पर विशेष बल दिया गया है। विकिरण मानिटरिंग, नाभिकीय आंकडा संचयन, रिएक्टर नियंत्रण एवं कम्प्यूटर प्रणाली, उच्च विभेदन नाभिकीय स्पैक्ट्रमी एवं त्वरक नियंत्रण हेतु कैमेक उपकरण आदि में विशेषज्ञता प्राप्त की गई है। नाभिकीय उद्योग में उच्च विकिरणों का उद्भासन होता है अत:उन विकिरणों का सुरक्षित हस्तन हेतु विभिन्न प्रकार के चल और अचल सुदूर नियंत्रण उपकरण, रोबोट की अवश्यकता होती है। हमारे विभिन्न नाभिकीय संस्थानों में उपयोग के लिए इन रोबोटो का अभिकल्पन एवं संविरचन इसके अंतर्गत किया है। इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण में अनुसंधान एवं विकास के सुदृढ आधार के फलस्वरुप ही इलेक्ट्रानिकी में परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा इलेक्ट्रानिकी कारपोरेशन जैसे सार्वजनिक क्षेत्र की बड़ी कंपनी की स्थापना हो सकी है।

भापअ केन्द्र ने परमाणु ऊर्जा विभाग की विभिन्न इकाइयों के लिए यूरेनियम एवं भारी पानी के विश्लेषण हेतु कई मासस्पेक्ट्रोमीटरों का विकास एवं उनकी स्थापना की है। ध्रुव रिएक्टर में उपयोग के लिए न्यूट्रान स्पेक्ट्रोमीटर एवं सहायक उपकरणों की एक पूरी श्रृंखला का अभिकल्पन और निर्माण किया गया है और उसे कमीशन किया जा चुका है। लेसर संबंधित आयनीकरण स्पैक्ट्रमी संबंधी उच्च तकनीकी उपयोग के लिए उच्च स्तरीय संवेदनशील संसूचकों का विकास इस केन्द्र में सम्पन्न किया गया है। परमाणुओं, अणुओं, प्लाज्माओं, द्रवों एवं ठोसों आदि में अनुसंधान हेतु He-Ne, He-Cd, Ar-ion, Kr-ion, NH3 एवं डाईलेसरों जैसे विभिन्न प्रकार के लेसरों का विकास किया गया है।

मूलभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान

अपने नाभिकीय कार्यक्रम तथा विज्ञान के अन्य अग्रणी क्षेत्रों से संबंधित मूलभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधानों के लिए स्वदेशी जानकारी एवं आवश्यक सुविधाओं के विकास पर विशेष जोर दिया जाता है। नाभिक संरचना, नाभिकीय अभिक्रिया और नाभिकीय विखंडन आदि के अध्ययन के लिए पेलेट्रान त्वरक से प्राप्त भारी आयन पुंज और रिएक्टरों से प्राप्त न्यूट्रान पुंजों द्वारा मूलभूत अनुसंधान किया जा रहा है। रिएक्टर, भौतिकी, संलयन भौतिकी, उच्च दाब भौतिकी, स्पंद शक्ति प्रणाली, तीव्र इलेक्ट्रान एवं आयन पुंज उत्पादन तथा भूकंप विज्ञान आदि जटिल क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास कार्य किये जा रहे हैं। प्रगत प्रौद्योगिकी केन्द्र इंदौर में इन्डस -1, सिंक्रोट्रोरोन विकिरण स्रोत विकास के अंतर्गत चार सिंक्रोट्रोरोन पुंज श्रृंखलाओं के लिए उपकरणों के विकास कार्य से भापअ केन्द्र सक्रिय रुप से जुड़ा हुआ है। रासायनिकी के क्षेत्र में ईंधन तथा अन्य पदार्थों के सूक्ष्म स्तरीय विश्लेषण, लेसर एवं विकिरण रसायनिकी, नाभिकीय ईंधन चक्र से संबंधित पदार्थों पर विकिरण के प्रभाव, उत्प्रेरण, उच्च तापीय ऊष्मा गतिकी संश्लेषण एवं अतिचालकीय ऑक्साइडों की अभिलक्षणन, एक्टीनाइड रसायनिकी एवं ईंधन रसायनिकी क्षेत्रों में विशेषज्ञता एवं सुविधाएं विकसित की गई।

जीव विज्ञान में, यहां आण्विक जीव विज्ञान, जेनेटिक इंजीनियरी, विकिरण जीव विज्ञान, जैव रसायनिकी, नाभिकीय कृषि, जैव प्रौद्योगिकी एवं खाद्य प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास का सुदृढ आधार उपलब्ध है। डी.एन.ए. अनुक्रमण, पॉलिमरों की श्रृंखला अभिक्रिया, ओलिगोन्यूक्लियोटाइड संश्लेषण साइटोमेट्री प्रवाह, स्पन्दित क्षेत्र-जेल वैद्युतकण संचलन, कंप्यूटर आधारित अनुक्रम विश्लेषण, प्रोटीन संशोधन एवं संरचना निर्धारण जैसी सुविधाएं इस केन्द्र में उपलब्ध हैं।

इस प्रकार भापअ केन्द्र में किए जा रहे उच्च स्तरीय अनुसंधान के फलस्वरुप इंगलैड, अमेरीका, जर्मनी एवं रुस जैसे अनेक विकसित देशों के साथ समान स्तर पर परस्पर सहयोग संभव हो सका।

स्वास्थ्य एवं सुरक्षा

विकिरण स्रोतों का उपयोग करने वाले उद्योगों, चिकित्सा एवं अन्य संस्थानों के साथ - साथ परमाणु ऊर्जा विभाग के वैज्ञानिकों को विकिरण की सुरक्षा सेवाएं उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व भी इस केन्द्र का है। स्थान चयन से लेकर अपशिष्ट के निपटान तक के नाभिकीय ईंधन चक्र के सभी चरणों के लिए पर्यावरणीय निगरानी की व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त विकिरण स्रोतों का उपयोग करने वाले देश से सभी संगठनो को कार्मिक मानिटरन से संबंधित सेवाएं भी प्रदान की जाती है। विकिरण मानिटरन संसूचकों एवं उपकरणों का विकास किया गया हैं। नाभिकीय ऊर्जा को सुरक्षित एवं खतरे से मुक्त रखने की दृष्टि से, विकिरण खतरों का मूल्यांकन एवं नियंत्रण, दुर्घटना की रोकथाम एवं सुरक्षा के मानकों का विकास के कार्यक्रम भी तैयार किए गए हैं।

स्पिन ऑफ प्रौद्योगिकियां

परमाणु ऊर्जा विभाग के अन्य संगठनों को नाभिकीय प्रौद्योगिकियों के अलावा भापअ केन्द्र में किए गए मूलभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान कार्यों से कई स्पिनऑफ तकनीकी विकसित हुई हैं। उदाहरणत: नाभिकीय पदार्थ बेरीलियम का अंतरिक्ष कार्यक्रम में उपयोग हुआ हैं। भूमिगत नाभिकीय विस्फोंटों के मानिटरन् हेतु विकसित भूकंपीय प्रणाली का उपयोग खनन उद्योग में सुरक्षा के लिए चट्टानों के प्रस्फोटन से संबंधित अग्रिम चेतावनी देने के लिए किया गया है। गैर नाभिकीय उद्योगों में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थों हेतु कई प्रक्रियाएं विकसित की हैं। अभी हाल ही में हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड के लिए, भारत के प्रथम कोबाल्ट संयंत्र की स्थापना में सहयोग प्रदान किया है और सैंडविक एशिया लिमिटेड, पुणे को कटिंग टूल स्क्रैप से मिश्रित नायोबियम टेंटेलम ऑक्साइड की उपलब्धि एवं इसके शोधन के लिए एक संयंत्र की स्थापना हेतु तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराई है।

खनिज अन्वेषण निगम लिमिटेड के अनुरोध पर आंध्र प्रदेश के अयस्क से टंगस्टन एवं ग्रेफाइट की लब्धि हेतु एक नये प्रक्रिया प्रवाह पत्र का विकास तथा उसका इष्टमीकरण किया गया है। यह केन्द्र, बस्तर जिलेमें जगदलपुरके जनजाति क्षेत्र में एक टिन निष्कर्षण संयंत्र की स्थापना में मध्य प्रदेश राज्य खनन निगम को भी अपना सहयोग प्रदान कर रहा है। पृथक्कृत विरल मृदाओं का इलेक्ट्रानिकी, चुंबकीय एवं अब अतिचालकता के क्षेत्र में व्यापक रुप से अनुप्रयोग हो रहा हैं। इंडियन रेयर अर्थ्स को विरल मृदा के पृथक्करण की विलायक निष्कर्षण तकनीक हस्तांतरित की गई है जिसने उत्पादन संयंत्र भी स्थापित किया है। फेरोनियोबियम धातु चूर्ण, एवं उच्च ताप सह जिरकोनियम आक्साइड आदि विशिष्ट लोह-मिश्रधातु प्रौद्योगिकियां, भारतीय उद्योगों को अनेक व्यावसायिक उपयोग हेतु हस्तांतरित की गई हैं। पावर इलेक्ट्रानिकी एवं सर्वो नियंत्रण के क्षेत्र में भापअ केन्द्र की जानकारी का उपयोग कावलुर स्थित वेणु बापु प्रकाशिक दूरबीन के लिए, अरवी स्थित प्रथम व्यावसायिक सैटेलाइट भूकेन्द्र, विक्रम की प्रचलन प्रणाली हेतु किया गया है और अब उसका उपयोग पुणे में निर्मित किये जा रहे 45 मीटर व्यास के जीएमआरटी एन्टेना के लिए किया जा रहा हैं। इन्सेट कार्यक्रम के लिए हसन स्थित मास्टर नियंत्रण सुविधा के ट्रैक रेडार में सर्वो प्रचलन प्रणालियों का भी उपयोग किया गया है। बंबई उपनगरीय रेल्वे की विद्युत बहुतारी इकाईयों में दिष्टधारा (डी. सी.) कर्षण मोटरों के थाईरिस्टर चापर नियंत्रण के लिए भी जानकारी उपलब्ध कराई गई है जिसके परिणाम स्वरुप 20% से 30% तक की विद्युत शक्ति की बचत हुई है। उच्च तकनीक के अग्रणी क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास में हमारी अभिरुचि के फलस्वरुप उच्च निर्वात, उच्चताप, उच्च-वोल्टता एवं उच्च करेंट इंजीनियरी के क्षेंत्र हमें सुविज्ञता प्राप्त हुई है। मेसर्स इंडो-बर्मा पेट्रोलियम को पहले ही प्रसरण पंपो, उच्च निर्वात वाल्वों एवं अन्य घटकों के भी निर्माण हेतु विकसित प्रौद्योगिकियां हस्तांतरित की गई थी। हाल ही में 10^{-10} टॉर तक का निर्वात उत्पन्न कर सकने वाले कण-क्षेपण आयन पपों एवं उनकी विद्युत आपूर्ति प्रणाली का विकास किया गया है। सैटेलाइट प्रयोगों हेतु संघटकों के परीक्षण के लिए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के लिए 4 मीटर व्यास के एक समरुपता कक्ष एवं भारतीय खगोल भौतिकी संस्थाओं के लिए उनके दूरबीन के दर्पणों के लेपन हेतु एक निर्वात विलेपण इकाई का विकास किया गया है। 25 डिग्री सेन्टीग्रेड तक के तापवाले एक 100 किलोवाट के प्लाज्मा कर्तन टार्च का भी निर्माण किया गया है तथा इस टार्च से 125मि.मी.की मोटाई के स्टेनलेस स्टील प्लेटों को परिशुद्धता के साथ काटा जा सकता है। अंतर्जलीय कर्तन हेतु एक मेगावाट के प्लाज्मा टार्च का अभिकल्पन किया गया है।

10 किलोवॉट के एक प्लाज्मा स्प्रे टार्च का विकास किया गया है जिसका प्रयोग डाइबेटिक आइ. सी.इंजनों के पिस्टनों जैसे विभिन्न पुर्जों पर उच्च ताप सह लेपन के शीकरन (स्प्रे) के लिए किया जा सकता है। 16, किलोवाट, 150 किलोवाट कोष्ठक प्रकार के एक इलेक्ट्रान पुंज वेल्डन मशीन का निर्माण किया गया है जिसका प्रयोग इस्पात, ऐल्युमिनियम, जिर्कोलाय, तांबा, एवं इसकी मिश्र धातुओं, टैन्टेलम एवं टंगस्टन जैसे अनेक पदार्थों के वेल्डन के लिए किया जा सकता है। इन उपस्करों के विनिर्माण की प्रौद्योगिकी अब व्यापारिक संस्थाओं को स्थानांतरण करने का लिए उपलब्ध है। भापअ केन्द्र ने उपलब्ध स्वदेशी हार्डवेयर का उपयोग करके एक उच्च गतिवाले समानांतर संसाधन कंम्प्यूटर प्रणाली का विकास किया है। यह इस केन्द्र तथा देश के अन्य अनुसंधान विकास संगठनों की उच्च स्तरीय गणना संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पिछले कुछ वर्षों में लगभग 50 प्रौद्योगिकियां विभिन्न उद्योगो को हस्तांतरित की जा चुकी हैं।

परामर्श सेवाएं

परमाणु ऊर्जा विभाग की विभिन्न औद्योगिक इकाइयां तथा अन्य सरकारी उपक्रमों को परामर्श सेवाएं उपलब्ध कराने के अतिरिक्त अपने देश में अनेक उद्योगों को भी यह केन्द्र अपनी परामर्श सेवाएं उपलब्ध कराता है। उदाहरणस्वरुप विभिन्न अनुप्रयोगो में प्रयुक्त होनेवाले सिलिकोन सौर सेलों की दक्षता को बढाने के लिए सेंन्ट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड को इस केन्द्र द्वारा परामर्श सेवाएं उपलब्ध कराई गई हैं। महाराष्ट्र में नागोठाणे स्थित गैस क्रैकर परिसर में हुए विस्फोट के संभवित कारणों के

विश्लेषण एवं उनका पता लगाने के लिए इस केन्द्र द्वारा सहायता उपलब्ध कराई गई ताकि देश में उनके सम्पूर्ण संकायों के लिए उन्हें कम्प्यूटरीकृत आँकडा आधार प्राप्त हो सके।

मानव संसाधन विकास

परमाणु ऊर्जा विभाग की विशिष्ट जरूरतों के लिए मानव संसाधन विकास कार्यक्रम के एक भाग के रुप में 1957 में एक प्रशिक्षण विद्यालय शुरु किया गया। तबसे कुल 5414 वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों को प्रशिक्षित किया जा चुका है जो अब देश में नाभिकीय कार्यक्रम का प्रबंधकीय कार्य कर रहे है। देश के नाभिकीय औषध केन्द्रों की, चिकित्सा भौतिकी विज्ञानी एवं चिकित्सकों की मांग को पूरा करने के लिए, चिकित्सा स्नातकों हेतु विकिरणकीय एवं अस्पताल भौतिकी में एक वर्षीय स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम का भी, पिछले तीन दशकोंसे आयोजन किया जा रहा हैं। इसके अतिरिक्त यह केन्द्र विकिरण सुरक्षा, औद्योगिक रेडिओग्राफी एवं रेडियो प्रतिरक्षा आमापन पर अल्पावधि पाठ्यक्रमों का भी आयोजन करता आ रहा है।

इस केन्द्र में कुल मिलाकर लगभग 13,921 लोग कार्य करते हैं। जिनमें से 3,978 वैज्ञानिक, 6442 तकनीकी, 1268 प्रशासनिक एवं 2233 सहायक क्षेत्रों से संबंधित हैं।

राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

विश्वविद्यालयों के अनुसंधान-कर्ता, विज्ञान के अग्रणी क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य के लिए वर्षों से इस केन्द्र की सुविधाओं का उपयोग करते रहे हैं। अब प्रमुख अनुसंधान सुविधाओं का उपयोग करने के लिए एक विश्वविद्यालयी सहायता संघ का गठन भी किया गया हैं।

भापअ केन्द्र एशिया और प्रशांत महासागर के क्षेत्र में तकनीकी सहायता उपलब्ध कराकर अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। विभिन्न द्विपक्षीय समझौतों के अधीन विकासशील एवं विकसित देशों के साथ कई सहयोगी अनुसंधान कार्यक्रमों को भी प्रोत्साहन दे रहा हैं।

■

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

कार्यकारिणी (वर्ष 1967 से अब तक)

पद	1967-68	1969	1970
अध्यक्ष	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ
उपाध्यक्ष	श्री. के. के. सिन्हा	श्री. शै. कु. मेहता	डा. सुखदेव पाल
सचिव	डा. देवकी नन्दन	डा. मनोहरलाल	डा. जगदीश लूथरा
सहसचिव	(स्व) श्री. ओम प्रकाश कलंत्री	श्री. उमेश चन्द्र मिश्र	श्री. मोहन राम चन्दानी
कोषाध्यक्ष	,,	श्री. देवकी नन्दन	(स्व) श्री ओम प्रकाश कलंत्री
सदस्य (1)	डा. कैलाश चन्द्र भल्ला	(स्व.) श्री. ओम प्रकाश कलंत्री	श्री. एस. पी. अवस्थी
(2)	श्री. संतोष कुमार अवस्थी	श्री. उमेश चन्द्र गुप्ता	डा. प्रताप कुमार माथुर
(3)	डा. माधव सक्सेना	श्री. नेमी चन्द्र सोनी	श्री. उमेश चन्द्र गुप्ता
(4)	श्री. जसवन्त सिंह	डा. बी. बी. सिंह.	श्री. भूपेन्द्र नारायण राठी
(5)	डा. मनोहर लाल	श्री. वीरेन्द्र कुमार गुप्त	श्री. हरिहर के. अय्यर
(6)	श्री. मोहन राम चन्दानी	कुमारी लता छावड़ा	श्री. डी. बी. सिंह

पद	1971	1972	1973
अध्यक्ष	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ
उपाध्यक्ष	डा. सुखदेव पाल	डा. देवकीनन्दन	डा. श्याम बिहारी श्रीवास्तव
सचिव	डा. जगदीश लूथरा	श्री. अरुण कुमार सक्सेना	श्री. जसवन्त सिंह
सहसचिव	श्री. उमेश चन्द्र भारतीय	श्री. उमेश चन्द्र भारतीय	श्री. राम नाथ जिंदल
कोषाध्यक्ष	श्री. प्रेम प्रकाश खन्ना	श्री. हरिहर के अय्यर	श्री. उमेश चन्द्र भारतीय
सदस्य (1)	डा मनोहर लाल	डा. उमेश चन्द्र मिश्र	डा. कैलाश चन्द्र भल्ला
(2)	डा. प्रताप कुमार माथुर	डा. मनोहर लाल	श्री. रमाकांत माथुर
(3)	डा. उमेश चन्द्र मिश्र	श्री. प्रेम प्रकाश खन्ना	श्री. महेश त्रिवेदी
(4)	श्री. भूपेन्द्र नारायण राठी	श्री. कमल किशोर	श्री. दया शंकर शुक्ला
(5)	श्री सूर्य कुमार गुप्ता	श्री. के . बी. लाल	श्री. कमल किशोर
(6)	श्री. हरिहर के अय्यर		श्री. विजय कुमार भल्ला

पद	1974, 75	1976, 77	1977, 79
अध्यक्ष	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ
उपाध्यक्ष	डा. उमेश चन्द्र मिश्र	श्री. जसवंत सिंह	डा. भगवान कृष्ण गौड़
सचिव	श्री. जसवंत सिंह	श्री. राम सिंह	डा. जनार्दन स्वरूप
सहसचिव	श्री. राम प्रसाद	डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल	डा. निर्मल डे.
कोषाध्यक्ष	श्री. भगवती चरण वर्मा	श्री. विजय कुमार भार्गव	श्री अशोक कुमार महन्त
सदस्य (1)	डा. कैलाश चन्द्र भल्ला	डा. ज्ञानेंद्र प्रसाद तिवारी	श्री. राजेन्द्र नारायण
(2)	श्री. नेमी चन्द्र सोनी	श्री. अशोक कुमार महंत	श्री राम सिंह
(3)	श्री. महेश त्रिवेदी	श्री. अमर नाथ नाकरा	श्री जीतेन्द्र पाल गुप्त
(4)	श्री. माधव सक्सेना	श्री. ललित चन्द्र चंदोला	श्री सीताराम द्विवेदी
(5)	श्री. रविकुमार खेर	श्री. राजेन्द्र कुमार निगम	श्री राजेन्द्र कुमार निगम
(6)	श्री. विजय कुमार भल्ला	श्री. नरेन्द्र दत्त शर्मा	श्री नरेन्द्र दत्त शर्मा

पद	1979	1980, 81	1982
अध्यक्ष	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ	डा. वेंकटेश अ. कामथ
उपाध्यक्ष	डा. भगवान कृष्ण गौड़	डा. भगवान कृष्ण गौड़	डा. भगवान कृष्ण गौड़
सचिव	डा. जनार्दन स्वरूप	श्री. विनय कुमार श्रीवास्तव	श्री विनय कुमार श्रीवास्तव
सहसचिव	डा. सूर्यदेव मिश्र	डा. वृजेश कुमार श्रीवास्तव	डा. वृजेश कुमार श्रीवास्तव
कोषाध्यक्ष	श्री. विनय कुमार भार्गव	श्री. विनय कुमार भार्गव	श्री रमाकांत रस्तोगी
सदस्य (1)	श्री. विनय कुमार श्रीवास्तव	डा. अंबिका सहाय प्रधान	डा. माधव सक्सेना
(2)	डा. अंबिका सहाय प्रधान	श्री. विजय कुमार	डा ललित हरि शर्मा
(3)	डा प्रताप कुमार माथुर	श्री. अरुण कुमार सक्सेना	श्री राजेश चन्द्र मित्तल
(4)	श्री. सीता राम द्विवेदी	डा. माधव सक्सेना	श्री विजय कुमार जैन
(5)	श्री. राजेन्द्र कुमार निगम	श्री मिथिलेश कुमार श्रीवास्तव	श्री वीरेन्द्र नाथ पांडेय
(6)	श्री. नरेन्द्र दत्त शर्मा	डा ललित हरि शर्मा	श्रीमती नीलम गोयल

पद	1983, 84	1985, 86	1987-88-89
अध्यक्ष	डा. पी. के. अय्यंगार	डा. पी. के. अय्यंगार	डा. आर चिदंबरम्
उपाध्यक्ष	डा. भगवान कृष्ण गौड़	डा. एस. एस. राममूर्ति	डा. दीन दयाल सूद
सचिव	डा. हर स्वरूप शर्मा	श्री. राम निवास आर्य	डा. ज्ञानेन्द्र प्रसाद तिवारी
सहसचिव	डा. वृजेश कुमार श्रीवास्तव	डा. सूर्य देव मिश्र	डा. विजय कुमार जैन
कोषाध्यक्ष	श्री. रमाकांत रस्तोगी	श्री तीरथ जे. असनानी	श्री राम प्रसाद
सदस्य (1)	श्री. राजेश चन्द्र मित्तल	डा. भगवान कृष्ण गौड़	डा. माधव सक्सेना
(2)	श्री. वीरेन्द्र नाथ पांडये	डा. राजेन्द्र स्वरूप	डा. देवकी नन्दन
(3)	श्रीमती नीलम गोयल	डा. ललित हरि शर्मा	डा. ननी गोपाल दत्त
(4)	श्री. गैरूल हसन रिजवी	श्री ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव	श्री राकेश कुमार
(5)	श्री. मिथिलेश कुमार श्रीवास्तव	विनय कुमार श्रीवास्तव	श्री सुधाकर कोकाटे
(6)	डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल	श्री अमर नाथ दूबे	श्री राधे श्याम छोकरा

पद	1989-90, 90-91	1991-92, 92-93
अध्यक्ष	डा. आर चिदंबरम्	डॉ. आर. चिदम्बरम्
उपाध्यक्ष	डा. दीन दयाल सूद	डॉ. दीन दयाल सूद
सचिव	श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी	श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी
सहसचिव	डा. विजय कुमार जैन	डॉ. विजय कुमार मनचन्दा
कोषाध्यक्ष	श्री ललित कुमार	श्री. ललित कुमार
सदस्य (1)	श्री राम प्रसाद	श्री. रामनिवास आर्य
(2)	डा. देवकी नन्दन	श्री. हरीश कुमार कौरा
(3)	डा. दुर्गा प्रसाद पाण्डेय	डॉ. एस. के. सिक्का
(4)	डा. सत्यनारायण त्रिपाठी	डॉ. एस. ए. अहमद
(5)	श्री हरीश कुमार कौरा	डॉ. राजेन्द्र स्वरूप
(6)	डा. विजय कुमार मनचन्दा	डॉ. गोविन्द प्रसाद कोठियाल

तालिका - 1

वैज्ञानिक विशेषांकों की सूची

	विशेषांक का नाम	वर्ष	अंक
1.	डॉ. विक्रम साराभाई स्मृति अंक	1972	4(1)
2.	खगोल भौतिकी	1972	4(3)
3.	टेलिविज़न	1972	4(4)
4.	हमारी पृथ्वी और ब्रह्माण्ड	1973	5(2)
5.	भारत में विज्ञान - कुछ उपलब्धियां	1975	7(1)
6.	अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष (महिला वैज्ञानिकों द्वारा लिखे गये लेख)	1975	7(4)
7.	शरीर विज्ञान	1978	10(2)
8.	जनहित में विज्ञान	1978	10(3)
9.	भूकंप विज्ञान	1978	10(4)
10.	पर्यावरण प्रदूषण (स्वर्ण जयंती अंक)	1981	13(1/2)
11.	अंतर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष (विशेष सामग्री)	1981	13(3)
12.	पदार्थ विज्ञान	1981	13(4)
13.	जीव संरचना	1982	14(1)
14.	खगोल विज्ञान	1982	14(3/4)
15.	रेडियो रसायनिकी	1983	15(3/4)
16.	ध्रुव रिएक्टर	1984	16(2/3)
17.	भारतीय विज्ञान की भावी दिशाएं	1986	18(1/2)
18.	विकिरण सुरक्षा	1986	18(4)
19.	कृषि विज्ञान (भाग - 1)	1987	19(2)
20.	कृषि विज्ञान (भाग-2)	1987	19(3)
21.	नाभिकीय शब्दावली (अंग्रेजी - हिंदी)	1989	21(1)
22.	लेसर	1990	22(1)
23.	नाभिकीय ऊर्जा	1990	22(4)
24.	विकिरण संरक्षण : मापदंड एवं कार्यान्वयन	1991	23(3)
25.	नाभिकीय ऊर्जा एवं पदार्थ	1992	24(3)

(संकलन : गो. प्र. को.)

तालिका - 2

परिषद द्वारा आयोजित / *सह-आयोजित संगोष्ठियां, सेमिनार एवं कार्यशाला

	संगोष्ठी का नाम	संगोष्ठी का स्थल एवं दिनांक	संयोजक
1.	जनहित में विज्ञान (परिषद के 10 वें वर्ष के उपलक्ष्य में)	12 मार्च, 1978	डॉ. भगवान कृष्ण गौड़
2.	पर्यावरण प्रदूषण ('वैज्ञानिक' की स्वर्ण जयंती के अवसर पर)	जून, 1981	डॉ. भगवान कृष्ण गौड़
3.	भारतीय विज्ञान की भावी दिशाएं	17 जनवरी,1986	डॉ. उमेश चन्द्र मिश्र
4.	*नाभिकीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी : अध्यापन तथा अनुसंधान	1-2 दिसंबर, 1986	डॉ. सूर्यदेव मिश्र
5.	कंप्यूटर क्षेत्र में नये विकास	18 जनवरी, 1988	श्री.एच.सी.कीरा
6.	*नाभिकीय ऊर्जा	भोपाल, 20-21 अप्रैल, 1989	डॉ. ज्ञानेंद्र प्रसाद तिवारी
7.	*पर्यावरण प्रदूषण और उद्योग	18-19 सितंबर, 1989	डॉ. उमेशचंद्र मिश्र
8.	लेसर का विकास एवं उपयोग	26 मार्च, 1990	डॉ. एस.ए.अहमद एवं डॉ. हेमचंद्र पंत
9.	अतिचालकता	6 अप्रैल, 1990	डॉ. जे.वी.यखमी एवं श्री. राम प्रसाद
10.	*शब्दावली कार्यशाला	26-29 जून, 1990	श्री. रमेश चंद्र पंत
11.	परमाणु ऊर्जा एवं विकास	12 जुलाई, 1990	श्री. सुधाकर कोकाटे
12.	*विज्ञान की भावी दिशाएं	इंदौर, 7-8 दिसंबर, 1990	डॉ. विजय कुमार मनचंदा
13.	परमाणु ऊर्जा के शांतिमय उपयोग	26, सितंबर, 1991	श्री. सुधाकर कोकाटे
14.	आधुनिक जीव विज्ञान एवं जैव तकनीकी	2 मार्च, 1992	डॉ. सूर्य देव मिश्र
15.	परमाणु ऊर्जा एवं पदार्थ	पटना, 24 जनवरी, 1992	डॉ. आर.विजयराघवन एवं डॉ. एस.ए. अहमद
16.	नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों?	20 जनवरी 1992	डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
17.	* भूकंप विज्ञान में प्रगति - एक अवलोकन	17 फरवरी 1992	डॉ. विजयकुमार जैन
18.	परमाणु रिएक्टर - ऊर्जा का एक सुरक्षित स्रोत	17 सितम्बर 1992	श्री. सुधाकर कोकाटे
19.	* जन संचार माध्यमों के लिए हिन्दी में विज्ञान लेखन प्रशिक्षण / कार्यशाला	4 नवम्बर 1992	श्री. रमेशचन्द्रपंत एवं डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
20.	नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों?	13 जनवरी 1993	डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

नोट: क्रमांक 6, 12 व 15 के अतिरिक्त सभी आयोजन बंबई में संपन्न हुए हैं।

(संकलन : गो. प्र. को.)

"वैज्ञानिक'' के संपादक गण एवं उनका कार्यकाल

नाम	कार्यकाल
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'	अक्टू. 1969 - जून 1973,
	अप्रैल 1977 - जून 1977
	अप्रैल 1983 - दिसं. 1985
	जनवरी 1988 - मार्च 1988
डॉ. उमेश चन्द्र मिश्र - (संयोजक)	जन. 1970 - मार्च 1972
डॉ. प्रताप कुमार माथुर	जन. 1970 - जून 1971
डॉ. व्रज मोहन पांडे	---"---
डॉ. मोहन रामचंदाणी - (संयोजक)	अप्रैल 1972 - जून 1973
डॉ. हेमचंद्र पंत - (संयोजक)	जुलाई 1973 - दिस. 1974
डॉ. राजीव भटनागर	---"---
दुर्गा प्रसाद पांडेय - (संयोजक)	जन. 1975 - दिसं. 1978
कृष्ण चन्द्र उपाध्याय	जन. 1975 - मार्च 1975
ललित चन्द्र चंदोला	अप्रैल 1975 - मार्च 1977
डॉ. देवकी नन्दन	जुलाई 1977 - दिसं. 1978
डॉ. देवकी नन्दन - (संयोजक)	जन. 1979 - दिसं. 1979
डॉ. उमेश चन्द्र मिश्र	---"---
डॉ. नरेंद्र शर्मा	---"---
डॉ. प्रताप कुमार माथुर	---"---
डॉ. बशेशर लाल गुप्त	---"---
डॉ. सनत कुमार अरोरा	---"---
कु. मालिनी वातल	---"---
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' - (संयोजक)	जन. 1980 - मार्च 1983
डॉ. मिथिलेश कुमार श्रीवास्तव	जन. 1980 - मार्च 1983
डॉ. ललित हरि शर्मा	जन. 1980 - जून 1982
राम प्रसाद	जुलाई 1982- दिसं. 1984
डॉ. सनत कुमार अरोरा	---"---
डॉ. गोविंद प्रसाद कोटियाल - (संयोजक)	अप्रैल 1983 - दिसं. 1985
डॉ. प्रभात कुमार चौहान	---"---
आइवन बी राम	जन. 1985 - मार्च 1987
डॉ. सुमन कुमार शर्मा	---"---
डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी (संयोजक)	जन. 1986 - मार्च 1989
कु. कृष्णा मिश्रा	जन. 1986 - मार्च 1987
अभिताभ जोशी	अप्रैल 1987 - मार्च 1989
स्वप्रेश कुमार मल्होत्रा	अप्रैल 1987 मार्च 1989
डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल	अप्रैल 1988 - अब तक
डॉ. जनार्दन स्वरुप (संयोजक)	अप्रैल 1989 - अब तक
डॉ. भूपेन्द्र तोमर	अप्रैल 1989 - मार्च 1990
डॉ. कैलाश चद्र भल्ला	अप्रैल 1989 - अब तक
डॉ. दुर्गा प्रसाद पाण्डेय	अप्रैल 1990 - अब तक
हरि ओम मित्तल	जुलाई 1992 - अब तक

(संकलन : गो. प्र. को.)

"वैज्ञानिक" व्यवस्थापन से संबंधित सदस्यगण एवं उनका कार्य काल (1970 से अब तक)

नाम	कार्यकाल
डॉ. सुखदेव पाल (संयोजक)	1970 - मार्च 1972
डॉ. शिव दुलारे प्रसाद अवस्थी	अप्रैल 1970 - दिस. 1970
श्री. हरिहर अय्यर	1970-1972
श्री. भूपेन्द्र नारायण राठी	1970 - 1972
डॉ. जगदीश लूथरा	1970 - 1971
श्री. सूर्य कुमार गुप्ता	1971 - 1972
डॉ. मनोहर लाल	1971 - 1972
श्री. उमेश चन्द्र भारतीय	1971 - 1972
डॉ. उमेश चन्द्र मिश्र	जन.1972 - दिस.1972
डॉ. भगवान कृष्ण गौड (संयोजक)	अप्रैल1972-मार्च1977
श्री. रवि कुमार खेर	अप्रैल1975-मार्च1977
श्री. विजय कुमार भल्ला	" "
श्री. अरुण कुमार सक्सेना	" "
डॉ. माधव सक्सेना	" "
श्री.ए.बी. मकवाना	" "
श्री. राम सिंह (संयोजक)	अप्रैल1977- जून1978
श्री. सीता राम द्विवेदी (संयोजक)	जुलाई1978-दिस.1978
श्री. अरूण कुमार सक्सेना (संयोजक)	जन.1980- मार्च 1983
श्री. विनयकुमार श्रीवास्तव	जुलाई1982-मार्च1983
डॉ.बृजेष कुमार श्रीवास्तव	जुलाई1982-मार्च1985
श्री. रमाकान्त रस्तोगी	जुलाई 1982-जून1985
श्री. राजेश चन्द्र मित्तल	जुलाई1982-सितं.1986
डॉ.उमेश चन्द्र मिश्र (संयोजक)	अप्रैल 1983-मार्च 1989
डॉ. हरस्वरुप शर्मा	अप्रैल1983 - मार्च1985
श्रीमती वासंती अय्यर	अप्रैल 1984मार्च 1989
श्री. योगेन्द्र देव वशिष्ठ	अक्टु 1984 -मार्च 1987
श्री. रामनिवास आर्य	अप्रैल 1985-मार्च 1987
———	अप्रैल 1989-अब तक
श्री. तीरथ जे. असनानी	अप्रैल 1985- मार्च1987
श्री. उ. पा. चौहान	जुलाई1986-मार्च1989
डॉ. ज्ञानेन्द्रप्रसाद तिवारी	अप्रैल 1987-दिस. 1989
श्री.राम प्रसाद	अप्रैल 1987-दिस. 1989
डॉ. शिव प्रकाश गर्ग (संयोजक)	अप्रैल 1989-अब तक
श्री. राम चरण शर्मा	अप्रैल1989-दिस.1991
श्री. राम प्रकाश हंस	अप्रैल1989-दिस.1991
श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी	जन.1990 - अब तक
श्री. ललित कुमार	जन.1990 - अब तक
श्री. इन्द्र कुमार शर्मा	अप्रैल 1992- अब तक
श्री. दीप प्रकाश	अप्रैल 1992 अब तक

(संकलन : गो. प्र. को.)

भाग - 2

लेख - सारांश

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र : प्रौद्योगिकी हस्तांतरण

डा. आर. चिदम्बरम्
निदेशक, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र
बम्बई 400 085.

पिछले कुछ समय से देश के प्रमुख अनुसंधान एवं विकास केंद्रों में विकसित तकनीकी जानकारी का हस्तांतरण बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। इसका एक कारण तो सरकार की नई खुली आर्थिक नीति है और दूसरा यह है कि भारतीय अनुसंधान एवं विकास केन्द्र अब उस विशेषज्ञता को प्राप्त कर चुकें है, जब कि वे भारतीय उद्योगों में अपना योगदान दे सकते हैं । शायद सरकार द्वारा जनित अनुकूल परिस्थितियाँ और कुछ अप्रत्यक्ष दबाव भी इसमें अपनी भूमिका निभा रहे हैं ।

आज भारतीय उद्योग देश में विकसित प्रौद्योगिकियों को अपनाने के प्रति इच्छुक हैं और वे अनुसंधान व विकास केंद्रों में विकसित तकनीकों के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। कहीं उन्हें सरकार की नई खुली नीति के कारण विदेशी उद्योगों और निवेशकों से आशंका तो नहीं है ? या भारत ने तकनीकी तौर पर इतनी प्रगति कर ली है कि अब उन्नत देशों को हमें नवीन प्रौद्योगिकी देने में असुरक्षा और भय का अनुभव हो रहा है ? अथवा अब हमारे उद्योगों में तकनीकी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले नये व साहसी उद्योगी आ गये हैं जो भारतीय प्रौद्योगिकी के प्रति उत्सुकता दिखाने लगें है ? शायद ये सब कारण मिलकर प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की गति को बढ़ावा दे रहे हैं। पिछले एक साल में हुई विभिन्न गोष्ठियों/सेमिनारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यही मूड और उत्साह भारत की सभी, छोटी या बड़ी, अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशालाओं में छाया हुआ है तथा भा प अ केंद्र में भी इसी बात पर बल दिया जा रहा है । वास्तव में, प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण तो प्रारंभ से ही हमारे अनुसंधान एवं विकास कार्यों का एक अत्यंत आवश्यक अंग रहा है ।

इस केंद्र का मुख्य ध्येय नाभिकीय विज्ञान और अभियांत्रिकी में अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देना रहा है ताकि नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम और उसके अन्य शांतिमय अनुप्रयोग - जैसे रेडियो समस्थानिकों का उत्पादन, तथा उद्योगों, कृषि व आयुर्विज्ञान में उनके प्रयोग से संबंधित स्वदेशी-तकनीकी विकसित की जा सके । अब तक केंद्र ने पूरे नाभिकीय ईंधन चक्र के लिए आवश्यक अनुसंधान एवं विकास की सुविधाओं को जुटा लिया है और नाभिकीय अयस्कों को खोजने, खनन करने से लेकर नाभिकीय ईंधन के बनाने, नाभिकीय रिएक्टरों व उनके नियंत्रण तंत्रों का अभिकल्पन, नाभिकीय अपशिष्ट प्रबंधन व उनके अंतिम निपटान आदि में दक्षता प्राप्त कर ली है । नाभिकीय प्रौद्योगिकी से जुड़े वैज्ञानिकों, कर्मचारियों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की जिम्मेदारी भी केंद्र की है । इसके अंतर्गत विकिरण सें जुड़े सभी कर्मचारियों का व्यक्तिगत मॉनीटरन और नाभिकीय ईंधन चक्र के सभी घटकों से संबंधित कार्यों में पर्यावरण का सतत परिवीक्षण आता है । इसी दौरान केंद्र ने विज्ञान के अग्रणीय क्षेत्रों में मूलभूत और अनुप्रयोगिक अनुसंधान कार्य भी जारी र खा है और रोबोटिक्स, कंप्यूटर, लेसर, प्लाज्मा एवं फ्यूजन भौतिकी, अतिचालकता, पदार्थ विज्ञान, जैनेटिक अभियांत्रिकी आदि क्षेत्रों में तकनीकी विकास करने पर पूरा जोर दिया गया है । इनमें से कई प्रौद्योगिकियों का तो नाभिकीय अनुप्रयोग में महत्वपूर्ण योगदान है और कई अपने विशिष्ट गुणों के कारण इन क्षेत्रों में विकसित की गई हैं ।

अंतर्विभागीय प्रौद्योगिकी हस्तांतरण :- नाभिकीय ऊर्जा केंद्र के अनुसंधान एवं विकास कार्यों की श्रंखला मे एक मुख्य कार्य केंद्र में सात अनुसंधान रिएक्टरों का निर्माण कार्य हैं, जिनमें 100 MW वाला ध्रुव रिएक्टर और शून्य ऊर्जा वाला U 233 रिएक्टर शामिल हैं । इन रिएक्टरों ने देश में नाभिकीय ऊर्जा उत्पादन से संबंधित प्रयोगों, नाभिकीय पदार्थों के मूल्यांकन, समस्थानिकों के उत्पादन और नाभिकीय तथा ठोस अवस्था भौतिकी में मूलभूत एवं अनुप्रयोग अनुसंधान की हमारी क्षमता को बढ़ाया है

नाभिकीय रिएक्टरों में लगने वाले विभिन्न पदार्थों, जैसे नाभिकीय ईंधनों, न्यूट्रान मंदकों और निर्माण-सामग्री के उत्पादन तथा भुक्त-ईंधन से रासायनिक प्रक्रिया द्वारा प्लूटोनियम एवं U 233 अलग करने की विशेषज्ञता प्राप्ति के लिए रासायनिक एवं धात्विकी अनुसंधान हेतु आवश्यक श्रेष्ठ सुविधाओं का निर्माण किया गया है ।

मूलभूत अनुसंधान, समस्थानिकों के अनुप्रयोग और संपूर्ण नाभिकीय ईंधन चक्र के लिए आवश्यक परिष्कृत इलेक्ट्रानिकी और उपकरणों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है । जिन कुछ क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त की गयी हैं, वे हैं विकिरण-मानीटरन-सिस्टम, नाभिकीय-डेटा-संग्रहण, रिएक्टर नियंत्रण एवं कंप्यूटर-सिस्टम, उच्च-विभेदन नाभिकीय स्पेक्ट्रोस्कोपी और त्वरक-नियंत्रण हेतु CAMAC उपकरण आदि । चूंकि नाभिकीय उद्योग का संबंध उच्च-विकिरण से है अत: सुरक्षित क्रिया-कलापों के लिए विभिन्न सुदूर नियंत्रण प्रणालियों, चल और अचल रोबोटों का अभिकल्पन और निर्माण किया गया हैं, जिन्हें विभिन्न नाभिकीय केंद्रों में इस्तेमाल किया जा रहा है ।

ईंधन चक्र की जानकारी का स्वदेशी विकास ऐतिहासिक दृष्टिकोण से परमावश्यक था, क्योंकि इस क्षेत्र में अर्जित ज्ञान को दूसरे राष्ट्र अपने तक ही सीमित रख रहे थे । केंद्र में प्रयोगशाला स्तर पर विकसित तकनीकियों को निजी-क्षेत्र के उद्योगों के उत्पादन के लिए स्थानांतरित करना मुश्किल रहा है, क्योंकि उनके पास, विशेषत: विकास के प्रारंभिक वर्षों में उच्च तकनीकी अपनाने लायक सुविधाओं और आधार का अभाव था । अत: नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम हेतु केंद्र एवं परमाणु ऊर्जा विभाग को स्वयं अपनी औद्योगिक सुविधाएं बनानी पड़ी । इसके कुछ उदाहरण हैं:

यूरेनियम एवं अन्य नाभिकीय पदार्थों के खनन के लिए यू-सी-आई-एल, पावर-रिएक्टरों के ईंधन-निर्माण के लिए नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र, विभिन्न भारी पानी संयंत्र, नाभिकीय उपकरणों एवं नियंत्रक प्रणालियों के लिए इ-सी-आई-एल/ पर जब भी संभव हुआ हमने निजी क्षेत्र के उद्योगों को अपने कार्यक्रम में शामिल किया है । लार्सन-टूबरो द्वारा केलैंड्रिया पात्रों व वालचन्द नगर उद्योग द्वारा एण्डशील्ड व डम्प टैंकों का निर्माण इसके कुछ उदाहरण हैं। इस प्रक्रिया में इन उद्योगों ने कठिन मानकों व उच्च गुणवत्ता के निर्माण-कार्यों के लिए साधन जुटा लिये हैं और उच्च कोटि की वेल्डिंग, रेडियोग्राफी व अन्य अविनाशी परीक्षण विधियों को आत्मसात कर लिया है । इस प्रकार का आंतरिक प्रौद्योगिकी हस्तातंरण अत्यंत सफल रहा हैं, क्योंकि उसके ध्येय और अंतिम उपयोग स्पष्ट एवं अच्छी तरह परिभाषित थे ।

रेडियो समस्थानिक - प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण : नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय प्रयोगों में केंद्र का अन्य महत्वपूर्ण कार्य रेडियो समस्थानिकों का उत्पादन एवं इनका आयुर्विज्ञान, उद्योगों एवं कृषि में उपयोग रहा है । इस उच्च तकनीकी क्षेत्र में भी हमने वास्तविक उपयोगकर्ता को पहचान कर, उत्पादन प्रणाली को उसके अनुसार ढाला ताकि इन क्षेत्रों में उनका ठीक ढंग से प्रयोग हो सके । आयुर्विज्ञान क्षेत्र में रेडियो समस्थानिकों के दोनों प्रकार के, निदानीय एवं चिकित्सीय उपयोगों हेतु अनुसंधान व विकास कार्य चल रहे हैं । आज 80 से अधिक अस्पताल और 300 से अधिक आयुर्विज्ञान संस्थाएँ 8 लाख मरीजों में कैंसर, थायराइड, यकृत व न्यूरो कार्डियो वेस्कुलर खराबियों के प्रारंभिक निदान में समस्थानिकों का प्रयोग कर रही हैं । विकिरण प्रतिरक्षा आमापन RIA किटों (इकाइयों) का निर्माण एवं वितरण किया जा रहा है , जिनके द्वारा शारीरिक द्रव्यों में हॉर्मोन, विटामिन ड्रग तथा वाइरल प्रोटीन आदि महत्वपूर्ण जैविक घटकों का विश्वसनीय मापन करके प्रारंभिक अवस्था में हीं विभिन्न रोगों का पता लगाया जा रहा है ।

चिकित्सा उत्पादों का निर्जर्मीकरण एक अन्य क्षेत्र हैं, जिसमें हमने गामा विकिरण के प्रयोग को बढ़ावा दिया है । बंबई, बंगलूर व दिल्ली स्थित तीन संयंत्र व्यवसायिक स्तर पर चिकित्सा उत्पादों, दवाईयों व औजारों आदि का विकिरण निर्जर्मीकरण कर रहे हें ।

भा प अ केंद्र ने स्व-उत्पादित इरीडियम-192 और कोबाल्ट -60· जैसे गामा विकिरण स्रोतों का उपयोग कर उद्योगों के लिए विभिन्न रेडियोग्राफी उपस्करों का विकास किया है । आज देश में 800 से अधिक ऐसे उपकरण वेल्डिंग, कास्टिंग, फोर्जिंग आदि के उत्पादों व समुच्चयों , के सूक्ष्म दोषों का पता लगाने में प्रयुक्त हो रहे हैं। ट्रेसर के रूप में समस्थानिकों का उपयोग तेल व गैस वाही भूमिगत पाईपों,

बांधों आदि में रिसाव तथा बंदरगाहों में गाद संचलन (सिल्ट मूवमेन्ट) तथा जल स्रोतों के प्रबंधन में नियमित रूप से किया जा रहा है ।

कृषि-क्षेत्र में विकिरण के प्रयोग से चावल, अरहर, मूंग, उड़द, जूट, मूंगफली तथा सरसों की नई संशोधित प्रजातियों का विकास किया गया है । विभिन्न सरकारी एजेन्सियों के माध्यम से इन्हें किसानों को दिया गया है ।

तकनीकी हस्तांतरण का एक उदाहरण लें । जुलाई 1991 में रेडियो समस्थानिकों की दस लाखवीं खेंप की आपूर्ति की गई । इस प्रकार इस क्षेत्र में भी हमारा प्रयास अत्यंत सफल रहा है। यद्यपि हमारा लक्ष्य स्पष्ट था परंतु उपयोगकर्ता इन तकनीकों को अपनाने के लिए, कम से कम शुरू में, मानसिक रूप से तैयार नहीं थे ।

केंद्र संगोष्ठियों, प्रशिक्षण-कोर्सों का आयोजन कर व अपने विशेषज्ञों को प्रयोग-कर्ताओं तक भेजकर इस नई तकनीकी के उपयोग के प्रति जागरूकता बढ़ा रहा है। आज हम गर्व से कह सकते हैं कि भारत रेडियो समस्थानिकों का उपयोग करने वाले अग्रणीय राष्ट्रों में से एक है ।

प्रगत प्रौद्योगिकी एवं संबंधित क्षेत्रों में विकास : इलेक्ट्रानिकी, पदार्थ विज्ञान, निर्वात तकनीकी, कण एवं विकिरण संसूचक, भूकंप विज्ञान, नाभिकीय जीवविज्ञान आदि नाभिकीय विज्ञान से संबंधित विज्ञान व इंजीनियरी के कई ऐसे क्षेत्र हैं जो परमाणु ऊर्जा और अन्य नाभिकीय तकनीकियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने आरंभ से इन प्रौद्योगिकियों तथा त्वरक प्लाज्मा भौतिकी, लेसर, निम्नतापिकी एवं अतिचालकता आदि प्रगत क्षेत्रों के विकास पर विशेष बल दिया है । इससे कई नाभिकीय और गैर-नाभिकीय तकनीकियों का विकास संभव हुआ है । हम इन्हीं तकनीकियों से संबंधित जानकारी को सरकारी व सार्वजनिक उद्यमों तथा निजी उद्योगों को देते हैं ।

भारत में इलेक्ट्रानिकी के विकास पर बल देने वाला पहला संस्थान भाभा संस्थान परमाणु अनुसंधान केंद्र था और इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप ही हैदराबाद में इलेक्ट्रानिक्स कारपोरेशन आफ इंडिया लि. की स्थापना हुई । आज ई सी आई एल 350 करोड़ से अधिक रुपये के, नाभिकीय इलेक्ट्रानिकी, चिकित्सा संबंधी उपकरण, संचार प्रणालियां, कम्प्यूटर एवं टेलिविजन आदि विभिन्न उत्पाद बनाती है । आज भी बी ए आर सी., इलेक्ट्रानिकी और नाभिकीय यंत्रीकरण क्षेत्रों से संबंधित कई तकनीकियों की जानकारी इ सी आई एल को व्यावसायिक उत्पादन के लिए दे रहा है। यद्यपि इ सी आई एल और भा प अ केन्द्र परस्पर सहयोग आज भी जारी है परंतु पिछले कुछ वर्षों से हम इन तकनीकियों का निजी उद्योगों को भी हस्तांतरण कर रहे हैं । आरवी में स्थापित प्रथम व्यवसायिक उपग्रह भू-स्टेशन "विक्रम", कावलूर के वैनू बाप्पू आप्टीकल टेलीस्कोप एवं पूना स्थित 45 मीटर व्यास के GMRT एंटीना के चालन तंत्र के लिए बी ए आर सी में विकसित पावर इलेक्ट्रानिकी व सर्वोनियंत्रण प्रणालियों का उपयोग किया गया हैं । बंबई की उपनगरीय रेलगाड़ियों की डी सी ट्रैक्शन मोटरों में थायरिस्टर कर्तक (चॉपर) नियंत्रण के लिए केंद्र द्वारा दी गई तकनीकी के कारण 20-30% तक विद्युत की बचत संभव हुई है ।

30 वर्षों के अनुसंधान व विकास के अनुभव के आधार पर, भाभा अनुसंधान केंद्र ने, नाभिकीय व ठोस भौतिकी में मूल अनुसंधान के लिए कई प्रकार के न्यूट्रान स्पेक्ट्रोमीटरों के विकास में विशेष क्षमता प्राप्त की है । अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के माध्यम से एक समझौते के अंतर्गत, बंगला देश को संपूर्ण आंकडा संग्रहण व नियंत्रण प्रणाली युक्त त्रिअक्षीय न्यूट्रान स्पेक्ट्रोमीटर बनाकर दिया गया है जिसकी कीमत 70 लाख रुपये है और इसका आधा भाग विदेशी मुद्रा में प्राप्त हुआ है । कई अन्य विकासशील देशों ने भी इन स्पेक्ट्रोमीटर ती मांग की है । हमारी भारी पानी परियोजनाओं और दूसरे नाभिकीय संस्थानों में उपयोग के लिए मास-स्पेक्ट्रोमीटरों भी यहीं बनाए गये हैं जिससे करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत हुई है ।

प्रगत प्रौद्योगिकी के विकास में पदार्थों का विशेष योगदान है । वास्तव में उपयुक्त पदार्थों के अभाव में विकास की गति मंद पड़ जाती है । भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने हमारे नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम के लिए आवश्यक सभी पदार्थों के उत्पादन से संबंधित तकनीकियों का विकास किया

है । नाभिकीय ईंधन व आवरण पदार्थों का निर्माण एवं भारी उत्पादन भी इनमें शामिल हैं । इस प्रक्रिया के दौरान गैर नाभिकीय उद्योग में उपयोग हेतु भी कई पदार्थों का विकास किया गया है । केंद्र ने भारत के प्रथम कोबाल्ट संयंत्र की स्थापना में हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड की सहायता की है और कटिंग-टूल स्क्रैप से Nb-Ta आक्साइड की प्राप्ति व संशोधन के लिए सैंडविक एशिया को पूना में एक संयंत्र स्थापित करने के लिए तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान की है । इससे काफी विदेशी मुद्रा की बचत हुई है । खनिज अन्वेषण कारपोरेशन के अनुरोध पर आंध्र प्रदेश अयस्क से टंगस्टन और ग्रैफाइट की प्राप्ति के लिए नये प्रक्रम प्रवाह चित्र का विकास किया गया है । इस केंद्र के सहयोग से मध्य प्रदेश राज्य खान निगम के लिए, बस्तर जिले के आदिवासी क्षेत्र जगदलपुर में, टिन निष्कर्षण संयंत्र की स्थापना की जा रही है ।

इलेक्ट्रानिकी चुंबकत्व और उच्चतम अतिचालक के क्षेत्र में, रेअर अर्थ्स को काफी उपयोगी पाया गया है । रे अर अर्थ्स के पृथक्क न हेतु विलायक निष्कर्षण (Solvent Extraction) तकनीकी, इंडियन रेअर्स अर्थ्स को हस्तांतरित की गई है और उन्होंने इसके आधार पर उत्पादन संयंत्र स्थापित किये हैं । रेडियोएक्टिव पदार्थों के हस्तन अनुभव के आधार पर हमारे बेरिलियम संयंत्र की स्थापना की गई है जो अंतरिक्ष उपयोग हेतु गाइरो-अवयवों के लिए निर्वात तप्त दाबित (Vacuum Hot Pressed) बेरीलियम पिंडों का उत्पादन करता है ।

फैरोनायोबियम, फैरो वैनेडियम, फैरोटाइटेनियम आदि विशेष लौह मिश्रधातुओं, अपघर्षी (Abrasive) ग्रेड बोरन कार्बाइड, जरकोनियम पाउडर व उच्चतापसह जरकोनियम आक्साइड आदि के निर्माण की तकनीकियां भारतीय निजी उद्योगों को दी गई हैं ।

उच्च निर्वात, उच्च ताप, उच्च वोल्टता व उच्च धारा इंजिनीयरी जैसे प्रगत प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में, हमारे अनुसंधान व विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप, हमारे पास विशेष दक्षता उपलब्ध है । विसरण (Diffusion) पंप, उच्च निर्वात वाल्व और निर्वात घटकों के उत्पादन से जुड़ी तकनीकी इंडो बर्मा पेट्रोलियम कंपनी को काफी पहले दी गई थी जो इनका व्यवसायिक रूप से उत्पादन कर रहे हैं । हाल ही में हमने 10^{-10} टॉर निर्वात के लिए स्पटर-आयन पंप और इनकी पावर सप्लाई का विकास किया है । उपग्रह के विभिन्न अवयवों के परीक्षण हेतु, कें द्र ने भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के लिए 4 मीटर व्यास के समरूपता कक्ष का विकास किया है । भारतीय खगोल भौतिकी संस्थान के टेलीस्कोप दर्पणों पर लेपन के लिए निर्वात लेपन यूनिट का विकास भी किया गया है । 2500 डि. सेल्सियस तक की 100 किलोवाट क्षमता की प्लाज्मा कटिंग टार्च बनाई गई है जो 125 मिलीमिटर मोटी स्टेनलेस स्टील प्लेट को सुनिश्चित आमाप में काटने में सक्षम है । इसके अतिरिक्त पानी में काटने के लिए एक मेगावाट प्लाज्मा टार्च बनाई गई है, जिसका अब परीक्षण चल रहा है ।

एक 10 किलोवाट प्लाज्मा स्प्रे टार्च का विकास भी इस केंद्र में हुआ है जो आंतरिक दहन इंजनों (I. C. Engine) के पिस्टन व अन्य घटकों पर तापसह पदार्थों के लेपन में अत्यंत उपयोगी है । इस लेपन से इन अवयवों का ताप व घर्षण प्रतिरोध बढ़ जाता है । 150 किलो वोल्ट व 6 किलो वाट क्षमता की इलेक्ट्रान बीम वेल्डिंग मशीन बनाई गई है जो इस्पात, एल्यूमीनियम, जरकेलाय, तांबा व निकेल तथा इनकी मिश्रधातुओं , टैंटलेम और टंगस्टन आदि की वेल्डिंग के लिए अति उपयोगी हैं। यह तकनीकी अब हस्तांतरण के लिए उपलब्ध है ।

समयाभाव के कारण भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के द्वारा विकसित एवं हस्तांतरित सभी तकनीकियों की चर्चा यहां संभव नहीं हैं । केंद्र ने, गत तीस वर्षों में, परमाणु ऊर्जा विभाग की स्वतंत्र इकाइयों और अन्य सरकारी क्षेत्र के उद्यमों को नाभिकीय विज्ञान, इलेक्ट्रानिकी, तकनीकी भौतिकी, रसायन व धातुकी इंजीनियरी आदि के क्षेत्रों में 331 तकनीकियाँ हस्तांतरित की हैं जबकि आइसोटोप अनुप्रयोग के क्षेत्र में यह संख्या 428 है । इनके अतिरिक्त, पिछले 8 वर्षों में , लगभग 50 तकनीकियां विभिन्न निजी उद्योगों को भी दी गई हैं ।

(शेष भाग पृष्ठ 54 पर)

कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान एवं क्रांति

वीरेन्द्र लाल चोपड़ा,

महानिदेशक
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली

समय के साथ हमारी आवश्यकताएं और उनके स्वरुप में भी बदलाव आता है। इसी तरह खाद्य-उत्पादन संबंधी हमारी प्राथमिकताएं और लक्ष्य भी बदल रहें हैं। आज के दशक में पारिवारिक स्तर पर समानता और आर्थिक समृद्धि पर जोर दिया जा रहा है। आज तक की हमारी खाद्य संबंधी नीतियों का समुचित प्रतिफल देश को मिला है, जो विभिन्न खाद्यान्नों के उत्पादन में कई गुना बढ़ोतरी में दिखाई देता है। इस प्रयास में कृषि अनुसंधान और कृषि शिक्षा तंत्र के स्थापना प्रयासों के अंतर्गत, तिलहन, दाल, डेयरी विकास और पेयजल जैसे कई मिशन चलाये गये हैं। इनमें तिलहन मिशन ने महत्वपूर्ण सफलता दिखाई है। खेती में विविधता लाने के लिए फल, फूल और सब्जियों के उत्पादन पर भी समुचित जोर दिया जा रहा है। मांसाहारी खाद्यों और अन्य समुद्री उत्पादों के विकास और व्यापार में भी भरपूर प्रयास हो रहा हैं। दूध के उत्पादन और वितरण में तो चमत्कारी परिवर्तन आया है।

अब यहां से आगे, देश के कृषि विकास में कई नई दिशाएं नजर आ रही है। पूर्वी भारत में फसल उत्पादन में सुधार, तटवर्ती क्षेत्रों के लिये उपयुक्त किस्में, मध्यभारत में सोयाबीन और राजमा का बढ़ता हुआ उत्पादन, फसल चक्र में नई किस्मों का समावेश, हमारी कृषि के फैलते आयाम हैं। अरहर, चावल आदि में संकर किस्मों का कार्यक्रम भी जारी है।

उत्पादन के साथ साथ, भंडारण और कीड़ों से रक्षण भी कृषि के महत्वपूर्ण पहलू हैं। 'जीन तकनीकी' की संभावनाएं, कल की खेती में नई दिशा दिखा रही है। पर्यावरण के अनुकूल, संपूर्ण टिकाऊ खेती चक्र का विकास भावी प्रगति और आर्थिक समृद्धिका रास्ता दिखायेंगे।

समय परिवर्तनशील है। समय के साथ साथ चीजें बदलती रहती हैं। समय के साथ हमारी मांगों, यहां तक कि हमारी मांगों के स्वरूप में भी बदलाव आता रहता है। इसी तरह हमारे सामाजिक, नैतिक, राजनितिक और सांस्कृतिक मूल्यों में भी बदलाव आता है और, इसी तरह खाद्य उत्पादन की हमारी प्राथमिकताओं और उसके लक्ष्यों में भी बदलाव आ सकता है। छठे और सातवें दशक में लाखों को भोजन तथा वस्त्र उपलब्ध कराना आवश्यक था, आठवें दशक के दौरान खाद्य उत्पादन में आत्म निर्भरता प्राप्त करने का नारा दिया गया, नवें दशक में सामाजिक एकता और पोषण संबंधी आहार सुरक्षा पर अधिक बल दिया गया और इस सदी के अंतिम दशक में हम परिवार के स्तर पर जीवन में समानता और आर्थिक समृद्धि पर जोर दे रहे हैं। इस अवधि के दौरान कृषि ने अपना मार्ग बदला है और अब स्थायी और पर्यावरण के अनुकूल कृषि पर जोर दिया जा रहा है।

खाद्यान्न (अनाज) उत्पादन की उपलब्धियां:

खाद्य उत्पादन का बढ़ा हुआ स्तर सोच-विचार कर लिए गए नीति संबंधी निर्णयों का परिणाम है। आजादी के बाद एक महत्वपूर्ण निर्णय सरकार द्वारा देश में गतिशील

कृषि अनुसंधान और शिक्षा तंत्र को समर्थन देना रहा है। इस नीति के परिणाम स्वरूप देश में उम्दा अनुसंधान व्यवस्था कायम हुई है, जिसके तहत राष्ट्रीय संस्थान और राज्य कृषि विश्वविद्यालय आते हैं।

हरित-क्रांति युग (1967-68 से 1986-87) के दौरान विभिन्न फसलों की सालाना मिली जुली बढ़वार की दर अधिक रही है, जैसे गेहूं, 5.48; तारामीरा सरसों, 3.2; गन्ना, 2.63; चावल, 2.54; पटसन, 2.57; और अन्य फसलें 2.5 प्रतिशत से कम। इस तरह 1950-51 की तुलना में कुल खाद्यान्न उत्पादन 3.5 गुना बढ़ा।

देश में चलाये गये आर्थिक मिशनों (तिलहन, डेयरी विकास और दूर संचार) तथा सामाजिक मिशनों (साक्षारता, रोग निरोधता और पीने के पानी) में तिलहन मिशन को जाहिरा तौर पर सब से ज्यादा कामयाबी मिली 1985-86 और 1990-91 के बीच में तिलहन की उपज करोड़ लाख टन से बढ़ कर एक करोड़ 85 लाख टन हो गई। यह उपज में वृद्धि 69 प्रतिशत थी। ऐसी वृद्धि किसी भी कृषि उत्पाद में नहीं हो पायी थी। आठवी योजना के अंत तक (1996-97) के अंत तक) तिलहन उत्पादन का लक्ष्य 2 करोड़ 30 लाख टन रखा गया है। जब यह लक्ष्य हासिल हो जाएगा, तब भारत खाद्य तेलों में आत्मनिर्भर हो जाएगा।

दलहन उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि नजर नहीं आई। 1950-51 में 84 लाख 10 हजार टन से पैदावर बढ़कर 1990-91 में 1 करोड़ 40 लाख 60 हजार टन हो गई। अगर पूर्वी और तटवर्ती क्षेत्रों में और बारानी क्षेत्रों में खेती में सुधार किया जाए, तो मोटे अनाजों (मक्का, ज्वार, बाजरा आदि), दाल (चना, अरहर आदि), चावल और मूंगफली की पैदावर बढ़ाई जा सकती है।

खेती में विविधता लाने के लिए बागवानी फसलों की मुख्य भूमिका रहती है। इन फसलों से आराजियों, पहाडी ढलानों, मरू और अर्द्ध - मरू क्षेत्रों में, तलाऊं भूमि और नमी वाले उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अधिक आर्थिक लाभ मिल सकता है। फलों के उत्पादन में भारत का स्थान ब्राजील और संयुक्त राज्य अमरीका के बाद तीसरा है और सब्जी के उत्पादन में चीन के बाद दूसरा है। अपनी अलग-अलग किस्म की मिट्टियों और कृषि जलवायु संबंधी स्थितियों में भारत प्रतिवर्ष 2 करोड़ 60 लाख टन फल और 5 करोड़ 40 लाख टन सब्जियां, जिसमें आलू भी शामिल हैं, पैदा करता है। इन उत्पादों की सालाना बढ़वार की दर सातवीं योजना में क्रमशः 1.66 और 3.96 थी। पश्चिम बंगाल में हुगली जिले में सब से अधिक सब्जियों की उपज (25 टन प्रति हैक्टर) बर्दवान में हुयी । जिस तरह महाराष्ट्र फल उत्पादन में सब से आगे रहनेवाला राज्य रहा है, उसी तरह पश्चिम बंगाल की सबसे ज्यादा सब्जी उगाने वाला राज्य बनने की संभावना है। पश्चिम बंगाल में ही बागवानी फसलों और कृषि वानिकी की अनेक सफलताओं की संभावना नजर आती है। शामलात और जंगली भूमि में पौधों को सुधार कर ईंधन के लिए पेड़ तैयार करना अपने आप में एक मिसाल है।

केरल, तामिलनाडू, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में व्यावसायिक पेड़ उगाए जा रहे हैं। नारियल पूरी तौर से भारत के छोटे किसानों की फसल बन गया है। दक्षिण भारत में नारियल उगानेवाले 90 प्रतिशत क्षेत्र हैं। एक हैक्टर से कम आकार की आराजियां हैं। औसतन 0.22 हैक्टर की आराजी बैठती है। केरल की प्राकृतिक पृष्ठभूमि में जहां नारियल के पेड़ो की भरमार है, वहां धूप की तेजी कम होती है। इसलिए कटफूलावर आसानी से पाए जाते हैं। दरअसल, आरचिड में पैदावार की क्रांति अब केरल से बाहर जा रही है। जहां तक मछली उत्पादन का प्रश्न है, समुद्री और अंदरूनी जल के साधनों से मछली उत्पादन क्रमशः 3 गुना और6 गुना बढ़ा है। 1973-74 में जहां अंदरूनी मछली पालन 250 किलोग्राम प्रति हैक्टर सालाना था, वहां अब यह 1,900 किलोग्राम प्रति हैक्टर हो गया है। जहां तक विदेशों को भेजी जाने वाली मछलियोंवाले उत्पादन का सम्बन्ध है, ये पहले स्थान पर आता है। समुद्री उत्पाद निर्यात क्षेत्र अथारिटी के अनुसार बर्फ में जमाई गई झींगा मछलियों की मात्रा 45 प्रतिशत थी और इनसे होनेवाली आमदनी का

(1,400 करोड़ रुपये) 73 प्रतिशत थी। दुनिया में झींगा मछलियों का बाजार बराबर बढ़ रहा है। जल्दी ही इसकी विदेशों में निर्यात किए जाने की सीमा 10 लाख टन तक पहुंचने की संभावना है। इससे लगभग 10 अरब अमरीकी डालर की आमदनी मिल सकेगी। अंदाज लगाया गया है कि सन 2000 तक दुनिया में झींगा मछली की मांग और सप्लाई के बीच में 6 लाख टन का फासला रहेगा और भारत इसका लाभ उठा सकता है। और उसे उठाना भी चाहिए। जहां कैप्चर (पकड़ा हुई) मछलियों का उत्पादन 15 लाख टन सालाना पर टिका रहा वहां जल वाले साधनों में इनका उत्पादन 1985 में 2.6 लाख टन से बढ़ कर 1990 में 5.6 लाख टन हो गया। यह बढ़वार की दर सालाना 33.5 प्रतिशत है। इसी प्रकार दूध की पैदावार की मिलीजुली बढ़वार की दर पिछली सदी में 5.45 प्रतिशत सालाना के लगभग रही। 1968-69 में जहां दूध का सालाना उत्पादन करोड़ 12 लाख टन था वहां 1990-91 में यह 5 करोड 37 लाख टन पहुंच गया।

आनेवाले कल का अनाज उत्पादन :

भविष्य में खाद्य उत्पादन किस तरह का होगा? इस बारे में उम्मीद बनाए रखाना ठीक ही होगा। इसके लिए कई मिसालें दी जा सकती हैं।

(1) पूर्वी भारत में बढती हुई फसल उगाने की क्षमताः

वैज्ञानिक शब्दावली में पूर्वी भारत को एक कठिन पारिस्थितिकी सिस्टम के वर्ग में रखा गया है। यहां पैदावर बढ़ाने के लिए बुनियादी ढ़ांचा नहीं है और तरक्की की राह में इस क्षेत्र के कदम अभी धीमे ही हैं। यहां हासिल की गई उपज और संभावित उपज क्षमता के बीच में काफी फासला है और अभी तक प्राकृतिक साधनों का पूरी तरह उपयोग नहीं हो पाया। उनका उपयोग किया जाना जरूरी है। चावल की बहुत तेजी से और तेजी से बढ़ने किस्मों के और तकनीकों के विकास से अब चावल की उपज प्रति हैक्टर 3 से 4 होने लगी है। तलाऊं भूमि और गहरे पानी की स्थितियों के लिए चावल की किस्में विकसित की गयी हैं। चावल अनुसंधान निदेशालय, हैदराबाद और केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक में किये गये अनुसंधान प्रयासों के फलस्वरूप इस सदी के अंत तक चावल की उपज मौजूद 3.5 टन प्रति हैक्टर से बढ़ कर 4.1 टन प्रति हैक्टर होने की उम्मीद है। सन 2020 तक इसके 5.5 टन प्रति हैक्टर तक पहुंचने की उम्मीद है। धान के पौधे के स्वरूप को बदल कर दुबारा नया रूप देने से यह सफलता हासिल हुई है। अभी तक अधिक उपज देनेवाली चावल की किस्मों के पौधों में 20 से 25 दी (टिलर) होतें हैं। पर इन में से 15 से 16 में गई पुष्प-गुच्छ (पेनिकल्स) आते हैं जिसमें 100 से 200 दाने होते हैं। नई पौध-किस्मों में दौजियों की संख्या कम होती है। इससे दौजियों में बड़े पुष्प-गुच्छ आते हैं जिनमें दानों की संख्या 250 से 300 तक होती है। नयी किस्मों में कीट व्याधियों का मुकाबला करने की अधिक क्षमता होती है। पूर्वी भारत के लिए मूंगफली की उपयुक्त किस्में विकसित की गयी जिन्हें प्रयोग में लाया जा रहा है। इस इलाके के लिए खासतौर तैयार की गयी नई किस्मों से पूर्वी भारत में गेहूं और सरसों का उत्पादन बढ़ा है।

(2) तटवर्ती कृषि के लिए जायद फसलः

आध्र प्रदेश के तटवर्ती बड़े क्षेत्र में धान की फसल के बाद भूमि पड रहती थी। उड़द की नयी किस्म तैयार की गयी है जिसे धान के फसल चक्र में धान की पड़ती भूमि में उगाया जा सकता है। तटवर्ती कृषि में यह उम्दा, रूपांतर के योग्य और रूपांतर किया जानेवाली तकनीक है जिससे इन क्षेत्रों में उपज बढ़ायी जा सकती है।

(3) बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में रबी - मक्काः

बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में एक बड़ी पट्टी में बदले हुए गैर मौसम में भी उगायी जा सकने वाली किस्मों और तकनीकों के तैयार किये जाने से रबी का फसल में मक्का उगायी जा सकती है यह इस क्षेत्र के लिए वरदान सिद्ध हुई है।

(4) मैदानी इलाकों के लिए नई फसलों का विकासः

मध्य भारत के मैदानों में राजमा और सोयाबीन की फसल काफी सफल सिद्ध हुई है और इनके तहत क्षेत्र भी तेजी से

बढ़ रहा है। हरियाणा के लिए सोयाबीन की आशाप्रद किस्में तैयार की गयी हैं।

(5) उत्तर में फसलों में मूक - क्रांतिः

पंजाब में सूरजमुखी के प्रचलन, अरहर - गेहूं क्रम में अगेती अरहर की किस्मों के प्रचलन और कपास - गेहूं क्रम में जल्दी पकने वाली कपास की किस्मों के सफलतापूर्वक तैयार किये जाने से उत्तरी राज्यों में एक नयी मूक क्रांति आ रही है। पंजाब सरकार 20 प्रतिशत काश्त योग्य क्षेत्र में गेहूं - धान क्रम की जगह अधिक मुनाफा देनेवाली तिलहनी फसले कपास और गन्ना आदि उगाने का इरादा रखती है।

(6) संकर अनुसंधान में नेतृत्वः

भारत मे रबी ज्वार, अरण्डी, बाजरा और अरहर की संकर किस्में तैयार करने में नेतृत्व किया है। चावल की संकर किस्म तैयार करने के एक विशाल कार्यक्रम को हाथ में लिया जा रहा है। भारत ने कपास की पहली संकर किस्म तैयार की है जिससे बहुत उम्दा किस्में तैयार करने में आत्मनिर्भरता हासिल हुई है। मिले जुले कीट प्रबन्ध की नयी तकनीकें तैयार की गयी हैं। पंजाब में इन तकनीकों का कपास उगानेवाले 25 खंडों में 25 - 25 हैक्टर प्रदर्शन खेतों में प्रदर्शन करने का सरकार का इरादा है ताकि कीटनाशक दवाइयों का इस्तेमाल कम दिया जा सके।

(7) मरू क्षेत्र में वर्षा के पानी के प्रबंध के लिए सुधरी तकनीकें :

भारत सरकार के जल मिशन द्वारा पीने के लिए वर्षा के पानी को इकट्ठा करने और उसे सुरक्षित रखने के लिए सुधरे तालाबों को बड़े पैमाने पर अपनाया जा रहा है। एक बड़े जलाशय में जल साधनों के समेकित (एक जुट) प्रबन्ध के विचार को अमल में लाया गया है और इस पर प्रयोग किये गये हैं। इसके लिए तैयारशुदा तकनीकों को भा.कृ.अनु. परिषद और कृषि विश्व विद्यालयों के अध्ययनों में बढावा दिया जा रहा है। भारत सरकार ने इस विचार को बारानी इलाकों में जलाशयों पर आधारित विकास के लिए अपना लिया है। पहले गांवों के स्तर पर पानी निकालने के तरीकों को खत्म करने में जमींदोज पानी के इस्तेमाल में कमी आई हैं। हमारी परंपरा के अनुसार हर एक भारतीय गांव में अपनी खेती की भूमि, चरागाह, जंगलात, बंजर भूमि और तालाब आदि होते थे। यह सारे घटक एक दूसरे से जुड़े रहते थे, एक का असर सब पर पड़ता था। ग्रामीण पारिस्थितिक पद्धतियों में से प्रत्येक को समूचे रूप से बढ़ाना जरूरी है, ताकि हरेक साधन की उपजाऊ क्षमता बढ़े और कुल मिला कर उनका भरपूर लाभ मिल सके। इसको इस तरह से अमल में लाया जाएगा जिससे समान रूप से और स्थायी लाभ मिल सके।

निकट भविष्य में खाद्य उत्पादन

आज हमारे सामने जो चुनौती है वह यह है कि किस तरह अलग - अलग स्थितियों के अनुसार स्थायी तौर पर उपज को बढ़ाया जाये और ऐसी कोशिश की जाये कि धीरे - धीरे रासायनिक साधनों की जगह जैविक साधनों को उपयोग में लाया जा सके।

ऐसे तरीकों के अनुसन्धान की जरूरत है जिससे नाशी कीट रोधिता के लिए जीनों को जंगली प्रजातियों से लेकर नई किस्मों में डाला जाये और नाशी कीटों से इन की उपज को होने वाले नुकसान को कम किया जा सके। इसके लिए एक विशिष्ट जीन संग्रह तैयार करना होगा ताकि अलग अलग हालात में टिकाऊ खेती की जा सके।

सीमांत तकनीकों में बायों -टैक्नौलोजी से, जिसमें टिश्यू कल्चर, आनुवांशिक इंजीनियरिंग, बायो-प्रोसेसिंग शामिल हैं, बहुत उम्मीदे हैं। कम्पूटर टैक्नौलोजी; माइक्रोइलेक्ट्रोनिक्स और उपग्रह बिम्ब (इमेजरी) आदि से छोटे किसानों की उपज क्षमता बढ़ सकेगी और खेती की लागत में भी कमी आएगी।

बरीनी खेती के लिए समय पर कृषि कार्य जैसी नमी का संरक्षण बीज के लिए मेंड़ तैयार करना, बुआई, निराई - गुडाई आदि किये जाने जरूरी हैं। इसके लिए अलग - अलग फसलों और अलग - अलग मिट्टियों के लिए खास तौर पर

(शेष भाग पृष्ठ 49 पर)

विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन एवं अनुप्रयोग

आर. जी. देशपाण्डे व डॉ. जी. शर्मा
विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड,
बम्बई - 400085

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों के अन्तर्गत सहउत्पाद के रूप में मिलने वाले विकिरण समस्थानिकों (आइसोटोप) के असीमित उपयोगों से अनभिज्ञ होते हुए भी आज इनके अनुप्रयोगों ने चिकित्सा एवं कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिये हैं। औद्योगिक क्षेत्र में भी निर्माण लागत में काफी कमी तथा उपभोक्ता वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। पिछले 3 दशकों में विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोगों से विभिन्न क्षेत्रों में आशाजनक प्रगति एवं जनसाधारण के कल्याणार्थ काफी काम हुआ है।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में हमारा ज्ञान प्राकृतिक रूप से मिलने वाले रेडियम, पोलोनियम तथा थोरियम विकिरण समस्थानिकों तक ही सीमित था। 1934 में कृत्रिम रूप से उत्पादित विकिरण समस्थानिक की खोज और 50 वें दशक में परमाणु भट्टियों के बन जाने से विभिन्न विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन कम खर्च पर अधिक मात्रा में होने लगा। हमारे देश में इनका उत्पादन अप्सरा, सायरस तथा ध्रुव परमाणु भट्टियों की सहायता से बड़ेपैमाने पर किया जाता है। आज हम 70 विकिरण रसायन एवं चिन्हित कृषि रसायन; 150 चिन्हित कार्बनिक तथा जैव यौगिक; विकिरणस्रोत; विकिरण भेषज और उनसे सम्बन्धित उपस्करों के लिए विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन देश की 1000 संस्थाओं के लिए करते हैं।

विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोग निम्नलिखित 3 सिद्धांतों पर आधारित हैं:

1) विकिरण समस्थानिक - अनुसारक के रूप में; 2) पदार्थों पर समस्थानिकों की विकिरण किरणों का प्रभाव; और 3) समस्थानिकों की ऊर्जा का उपयोग।

विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोगों में विकिरण चित्रण, विकिरणमापी नियामक, टपकन का परिचयन, तलछट परिवहन, घिसाई का अध्ययन और उत्पादन प्रक्रिया अध्ययन आदि शामिल हैं।

जल विज्ञान में विकिरण समस्थानिक, नदियों और बाँधों के जल के जमीन के अन्दर होने वाले प्रवाह की दिशा, स्थान एवं गति का अध्ययन करने में बहुत सहायक हुए हैं।

विकिरण समस्थानिक जन स्वास्थ रक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका उपयोग विकिरण उपचार, विकिरण भेषज उत्पादन तथा विभिन्न चिकित्सीय उत्पादों व औषध के निर्जर्मीकरण हेतु किया जाता है। रेडियोलॉजिकल प्रयोगशाला में विकिरण स्रोत का उत्पादन कैंसर जैसे प्राणघातक रोगोपचार हेतु, वाशी स्थित प्रयोगशाला में रेडिओ भेषज एवं विकिरण प्रतिरक्षा आमापन किट्स का उत्पादन अनेक रोगों के आकलन हेतु किया जाता है। आइसोमेड [ट्राम्बे], रश्मि [बंगलौर] और सार्क [दिल्ली] स्थित विकिरण संयंत्र चिकित्सीय उत्पादों के निर्जर्मीकरण के लिए कार्यरत हैं।

आवासीय स्थानों तथा कल कारखानों से निकला मल एवं कीच जन साधारण के स्वास्थ्य को चुनौती देता नजर आता है। इनमें रहकर पलनेवाले जीवाणु जो हैजा, पेचिश,

मियादी बुखार आदि बीमारियों के लिए उत्तरदायी हैं, की रोकथाम के लिए विकिरण संयंत्र **(बड़ौदा)** एक आशापूर्ण अनुप्रयोग है।

खाद्यपदार्थों जैसे अनाज, मसाले, फल एवं सब्जियों को जीवाणुओं तथा फफूंद आदि से रक्षा कर अधिक समय तक सुरक्षित रखना भी विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोगों में सम्मिलित है।

कृषि क्षेत्र में वनस्पतियों को मिट्टी से मिलने वाले पोषक तत्व जैसे फासफोरस, सोडियम, पोटेशियम की उचित मात्रा के निर्धारण का ज्ञान भी विकिरण समस्थानिक चिन्हित उर्वरक द्वारा ही संभव हो पाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन का हर क्षेत्र विकिरण समस्थानिकों के परोक्ष अथवा अपरोक्ष अनुप्रयोगों से प्रभावित है।

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के अन्तर्गत सहउत्पाद के रूप में मिलने वाले विकिरण समस्थानिक अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुए हैं। इनके असीमित उपयोगों की पूर्ण जानकारी से व्यापक रूप से अनभिज्ञ होते हुए भी आज इनके अनुप्रयोगों ने चिकित्सा एवं कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। औद्योगिक क्षेत्र में भी उत्पादन शुल्क में कमी तथा उपभोक्ता वस्तुओं की गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ है। पिछले 2-3 दशकों में जनसाधारण की समृद्धि एवं कल्याण में हुई प्रगति को देखते हुए हम आत्मविश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि परमाणु शक्ति के अस्तित्व को समझने की यह शुरूआत भर है।

विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन

यद्यपि प्राकृतिक रूप मिलने वाले भारी तत्वों के रेडिओ समस्थानिक इस शताब्दी के पूर्व से ही उपलब्ध रहे, लेकिन कम मात्रा में मिलने की वजह से इनका उपयोग सीमित ही रहा, फिर भी विकिरण समस्थानिकों, जैसे रेडियम का उपयोग रेडियोग्राफी एवं पोलोनियम, थोरियम आदि का उपयोग अनुसारक के रूप में होने लगा। 1934 में कृत्रिम रूप से उत्पादित विकिरण समस्थानिकों की खोज और 50 वें दशक में परमाणु भट्ठियों के बन जाने से विभिन्न विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन कम लागत पर अधिक मात्रा में होने लगा। आजकल आम तौर से 170 रेडियो न्यूक्लिओटाइड्स का उपयोग विभिन्न अनुप्रयोगों में होता है। इनमें से 120 परमाणु भट्टियों में और शेष त्वरकों में अथवा यूरेनियम की विघटन विधि द्वारा उत्पादित किये जाते हैं।

भारत में रेडियो समस्थानिकों का उत्पादन 1957 के अन्त में अप्सरा भट्टी के बन जाने के साथ ही शुरू हो गया था। अप्सरा भट्टी से प्राप्त अनुभव और 1961 में साइरस भट्टी की स्थापना के साथ ही विकिरण समस्थानिकों की उत्पादन क्षमता का धीरे-धीरे विस्तार हुआ। सातवें दशक में तो इनका उत्पादन बड़े पैमाने पर ट्राम्बे में व्यवस्थित रूप से चालित साधनों द्वारा होने लगा तथा इसके साथ ही कोबाल्ट 60 स्रोत का उत्पादन राजस्थान में स्थापित ऊर्जा भट्टी द्वारा अधिक मात्रा में होने लगा था। आठवें दशक में नई बम्बई में विकिरण भेषज एवं चिन्हित यौगिक उत्पादन हेतु वाशी कॉम्प्लैक्स और ट्रॉम्बे में रेडियो आइसोटोप उत्पादन हेतु अधिक न्यूट्रान प्रवाह वाली अनुसंधान भट्टी, ध्रुव की स्थापना हुई। इस प्रकार, इन वर्षों के मध्य विकिरण समस्थानिकों के उत्पादन के लिए तीन अनुसंधान भट्टियों एवं उनके अनुप्रयोगों हेतु प्रयोगशालाओं की स्थापना से, विकिरण समस्थानिक संबंधित तकनीक में उत्तम दर्जे की आत्मनिर्भरता लाने में काफी योगदान रहा। आज हम 70 विकिरण रसायन एवं चिन्हित कृषि रसायन; 150 चिन्हित कार्बनिक तथा जैव यौगिक; विकिरण स्रोत; विकिरण भेषज नाभिकीय चिकित्सा एवं संबंधित उपस्करों के लिए बनाने में सक्षम हैं। भारत संसार के उन कुछ चुने हुए देशों में से है जो विभिन्न विकिरण समस्थानिकों का उत्पादन एवं देश की 1000 संस्थानों की आवश्यकता की आपूर्ति करता है।

विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोगों के सिद्धांत

विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोग निम्नलिखित तीन सिद्धांतों पर आधारित हैं :

क) विकिरण समस्थानिक - अनुसारक के रूप में;

ख) पदार्थों पर समस्थानिकों की विकिरण किरणों का प्रभाव ; और

ग) समस्थानिकों की ऊर्जा का उपयोग।

विकिरण समस्थानिकों के अनुसारक के रूप में अनुप्रयोगों ने ज्यादा ख्याति अर्जित की है। चाहे वह एक जीवित कोशिका का अध्ययन हो अथवा गोदी और बन्दरगाहों में तलछट परिवहन अध्ययन। कुछ दूसरे मुख्य औद्योगिक अनुप्रयोग इस प्रकार हैं - जमीन के अन्दर दफनाई हुई पाइपों के टपकन का परिचयन ; रसायन संयंत्रों में उत्पादन प्रक्रिया अध्ययन ; जल विज्ञान में नदियों, बाँधों के जल के जमीन के अन्दर होने वाले प्रवाह की दिशा, स्थान एवं गति का अध्ययन आदि। पदार्थों पर समस्थानिकों की विकिरण किरणों के प्रभाव के सिद्धान्त पर आधारित बहुत से औद्योगिक अनुप्रयोग हैं जैसे - रेडियोग्राफी कैमरे द्वारा ढलाई एवं झलाई - जोड़ों का अभंजक परीक्षण ; धातु की चद्दरों एवं वर्क की मोटाई मापन आदि और इसी प्रकार विकिरणमापी नियामकों द्वारा बन्द पात्रों में क्षयकारी तरल पदार्थों का अछूत सतह - मापन तथा नियन्त्रण। तीसरे प्रकार के अनुप्रयोग विकिरण समस्थानिकों से निकलने वाली ऊर्जा के उपयोग पर आधारित हैं। इस ऊर्जा का उपयोग मुख्यत: चिकित्सीय उत्पादों का निर्जर्मीकरण, कैंसर रोगोपचार और खाद्य पदार्थों के संरक्षण के लिए किया जाता है।

उद्योगों में विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोग

रेडियोग्राफी :- एक्स - किरणों का ढलाई एवं झलाई - जोड़ों के अभंजक परीक्षणों में उपयोग काफी सालों से प्रचलित है। विकिरण समस्थानिकों से निकलने वाली गामा किरणें भी अति ऊर्जा वाली एक्स किरणों के सम्यक हैं और इसलिए विभिन्न औद्योगिक उत्पादों के परीक्षण में अत्यन्त उपयोगी हैं। यह परीक्षण गामा रेडियोग्राफी कैमरे की सहायता से किये जाते हैं। यह कैमरे सुवाहृय हैं, बिना बिजली के चलते हैं और इन्हीं कारणों से सुदूर क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। इरीडियम 192 तथा कोबाल्ट -60 विकिरण स्रोतों से बने 600 से भी अधिक विकिरण चित्रण यंत्र भारतीय उद्योगों के उपयोग में हैं जिनमें उच्च - चापपात्र उद्योग, जहाजरानी और वायुयान उद्योग, नाभिकीय एवं ताप ऊर्जा संयंत्र, खाद्य एवं पैट्रोरसायन उद्योग शामिल हैं।

विकिरणमापी नियामक : विकिरण - किरणों का पदार्थों से गुजरते समय तनुकरण के सिद्धांत पर आधारित विकिरणमापी - नियामकों का व्यवहारिक उपयोग अल्यूमिनियम, स्टील और प्लास्टिक चद्दरों आदि उद्योगों में उत्पादन - विधि विकास, मापन तथा विधि - नियन्त्रण में अत्यन्त प्रचलित है। इसी तरह, बन्द पात्रों में क्षयकारी तरल पदार्थों का अछूत सतह मापन तथा नियन्त्रण किया जा सकता है। समस्थानिक नियामकों का व्यापक उपयोग घरेलू गैस सिलिन्डरों एवं साबुन - पाउडर के पैकेटों को भरने में किया जा रहा है। आज, लगभग 1500 विकिरणमापी नियामक भारतीय उद्योग में उपयोग में आ रहे हैं।

टपकन का परिचयन : विकिरण समस्थानिकों का अनुसारक के रूप में अनुप्रयोग जमीन के अन्दर दफनाई हुई पाइपों तथा रसायन संयंत्रों की युक्तियों के टपकन के परिचयन हेतु अत्यन्त प्रचलित है। साधारण तथा दफनाई हुई पाइपलाईन में टपकन का परिचयन उस पर बिछाई गई मिट्टी को हटाकर निरीक्षण के बाद ही किया जाता है। यह एक अत्यन्त खर्चीली एवं अधिक समय लेने वाली विधि है। अनुसारक विधि द्वारा पाइपलाईन पर बिछाई गई मिट्टी को हटाये बगैर ही टपकन का पता लगाया जा सकता है। इस कार्य के लिए विकिरण अनुसारक का चापयुक्त घोल पाइपलाईन में भर दिया जाता है। इस चाप के कारण टपकनेवाले स्थान पर विकिरण अनुसारक मिट्टी में टपक जाता है। इसके बाद, पानी के प्रवाह से पाइपलाईन को साफ कर दिया जाता है। टपकने वाले स्थान का पता, किसी सुवाहृय विकिरण परिचायक उपकरण द्वारा पाइपलाईन की पूरी लम्बाई में विकिरण ढूंढकर लगा लेते हैं। इस तकनीक का असाधारण उदाहरण 140 कि.मी. लम्बी विरमगाम - कोयाली पाइपलाईन है, जिसमें टपकन का पता इस विधि द्वारा लगाया गया। कम रिसाव वाले 5 स्थानों का पता सिर्फ 6 सप्ताह में लगने से और उन

स्थानों का रिसाव बंद कर देने के कारण पाइपलाईन की संस्थापना का कार्य समय से सम्पन्न होने में बड़ी मदद मिली। प्रचलित विधि द्वारा इस कार्य में एक वर्ष का समय एवं दस गुना अधिक खर्चा होता। इसी प्रकार के एक दूसरे अध्ययन में तेलशोधक कारखाना, बम्बई से पेट्रोलियम भंडार एवं वितरण केन्द्र, पुणे के मध्य बिछाई गई पाइपलाईन में कम स्राव वाले टपकन के स्थानों का पता पाइपलाईन की संस्थापना से पूर्व ही लगा लिया गया था।

तलछट परिवहन : विकिरण अनुसारक तकनीक विभिन्न गोदियों और बन्दरगाहों पर जहाज परिवहन मार्ग से हटाई गई तलछट को फेंकने के सही स्थान निर्धारण करने में काफी बचत करा चुकी है। साधारणतया इन स्थानों से हटाई गई तलछट को समीप ही किसी स्थान पर समुद्र तल पर डाल दिया जाता है। परन्तु यह जानना आवश्यक है कि कुछ समय पश्चात यह तलछट वापिस उसी जहाज मार्ग पर आ जायेगी अथवा नहीं। तलछट परिवहन का अध्ययन ऐसी कृत्रिम तलछट को जमाकर किया जाता है जिसमें उचित किस्म के विकिरण अनुसारक जैसे स्केन्डियम - 46 मिले होते हैं। बाद में, जलमग्न विकिरण परिचायक उपकरणों द्वारा इस तलछट के परिवहन की दिशा और स्थान का पता लगा लिया जाता है। ऐसे 30 अध्ययन भारत के विभिन्न बन्दरगाहों में किये जा चुके हैं और इनके परिणाम स्वरूप बन्दरगाह के अधिकारियों ने इसे तलछट फेंकने के सही स्थान निर्धारण एवं तलछट कार्य नियोजन में आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यन्त उपयोगी पाया है।

घिसाई का अध्ययन : किसी भी इंजन, यन्त्र के अंश तथा काटने वाले औजारों की रीतिगत विधियों से घिसाई-दर का अनुमान लगाना एक कठिन और समय - साध्य कार्य है। विकिरण अनुसारक के उपयोग से घिसाई-दर का न सिर्फ अतिशुद्ध अनुमान मिलता है, बल्कि यह काम जल्दी और कम लागत में भी पूरा हो जाता है। जिस अंश की घिसाई मापनी है, उसे पहले नाभिकीय भट्टियों में न्यूट्रॉन द्वारा किरणित करके विकिरण सक्रिय बना लेते हैं, या फिर साईक्लोट्रोन में ड्यूट्रोन या प्रोटोन जैसे आवेशित कणों द्वारा किरणित कर लेते हैं। किरणित अंश को परीक्षण - संयंत्र में लगाकर इस्तेमाल करते हैं और उसके बाद घिसाई - मलबे में तथा स्नेहक तेल में पाई गई विकिरण-सक्रियता को स्फुरण-गणित्र उपकरण द्वारा माप लेते हैं। वाहन अनुसंधान केन्द्र, पुणे ने इस तकनीक द्वारा विभिन्न उत्पादकों द्वारा बनाए गए पिस्टन छल्लों में घिसाई-दर का अध्ययन किया और उसमें अन्तर पाया और बाद में उसका संबंध उनकी संविरचना से भी स्थापित किया। भारतीय पैट्रोलियम संस्थान, देहरादून में भी इसी प्रकार का अध्ययन किया गया है। इस विधि का उपयोग इस्पात उद्योग में भी ब्लास्ट भट्टी की विभिन्न सतहों के क्षय का अध्ययन उनमें कम सक्रियता वाले स्रोत को समाविष्ट करके किया गया और इससे समय पर सतहों के पुन: निर्माण में मदद मिली है। भारत के बहुत से इस्पात संयंत्रों ने भी इस विधि को अपनाया और आर्थिक दृष्टिकोण से आकर्षक पाया।

कार्यप्रणाली - प्राचल : किसी भी औद्योगिक कार्य प्रणाली में वस्तुओं के उत्पादनार्थ काम में आने वाले बड़े बर्तनों जिनमें मिश्रण एवं रसायनिक क्रियाएं सम्पन्न होती हैं, में पदार्थों का मध्यक-आवास-समय एवं आवास-समय-वितरण महत्वपूर्ण प्राचल हैं। ये उत्पाद की मात्रा और गुणवत्ता, दोनों को प्रभावित करते हैं। आवास-समय-वितरण का मापन विकिरण अनुसारक की मदद से कार्यप्रणाली में बिना विघ्न पहुंचाए सुगमता से किया जा सकता है। इससे उत्पन्न आंकड़े संयंत्र की कार्य प्रणाली को नियन्त्रित करने में सहायक होते हैं। उदाहरणार्थ परीक्षण के दौरान विकिरण समस्थानिक चिन्हित पदार्थ को कार्य प्रणाली के प्रथम चरण में ही सूक्ष्म मात्रा में मिला दिया जाता है। इसके पश्चात विभिन्न चरणों में विकिरण सक्रियता समय - समय पर माप ली जाती है। विकिरण सक्रियता एवं समय के मध्य खींचे रेखाचित्र की मदद से मध्यक - आवास - समय एवं आवास - समय वितरण का शुद्ध अनुमान लगा लेते हैं। इस प्रकार के अनेक अध्ययन भारत के विभिन्न रसायन एवं सिमेंट उद्योगों में किये गये हैं और इनसे मिले आंकड़ों से प्रबंधकों को उनका संयंत्र पूर्ण कार्य क्षमता से चलाने में सहायता मिली।

जलविज्ञान में अनुप्रयोग

विकिरण समस्थानिकों ने जल विज्ञान में जाँच - पड़ताल एवं जल व्यवस्था बनाये रखने में एक अत्यावश्यक औजार के रूप में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। इनके अनुप्रयोगों ने पृथ्वी की सतही आर्द्रता को ट्रिशियम अनुसारक से चिन्हित उसके मिट्टी में प्रवाह के अध्ययन द्वारा सतही जल की पुनः आपूर्ति के मापन में, नहरों और बाँधों में पानी के रिसाव का पता लगाने और नहरों एवं नदियों में जल के प्रवाह की गति के मापन में स्वयं को बहुत ही उपयोगी प्रमाणित किया है। इन सब अनुप्रयोगों के लिए या तो दूसरी विधियाँ उपलब्ध नहीं हैं अथवा ऐसे अतिशुद्ध आँकड़े सूक्ष्मता से प्राप्त नहीं किये जा सकते। भारत में विकिरण समस्थानिक अनुसारक शुष्क क्षेत्रों में सतही पानी की आपूर्ति मापन, हौज एवं बाँधों (श्री सेलम बाँध, अलियार बाँध) में पानी का रिसाव पता लगाने और अधिक वेग वाली नदियों (ताप्ती, व्यास) के पानी के निष्कासन के मापन के उपयोग में लाये गये हैं। जल - प्रबंध कार्यक्रमों, जैसे महाराष्ट्र में पानी साफ करने वाली टंकियों की इच्छित कार्यक्षमता का पता लगाने; मद्रास के तटवर्ती इलाके में स्थित एक्वीफर्स में नमकीन पानी के प्रवेश का अध्ययन, इन दोनों में ही विकिरण अनुसारकों की मदद से महत्वपूर्ण जानकारी मिली है।

विकिरण समस्थानिक एवं स्वास्थ्य

विकिरण समस्थानिकों के अनुप्रयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभाजित किये जा सकते हैं।

क) नाभिकीय चिकित्सा में रोगों के आकलन हेतु,

ख) कैंसर रोगोपचार हेतु, और

ग) चिकित्सीय उत्पादों के निर्जर्मीकरण हेतु ।

विकिरण भेषज रोगों के आकलन हेतु

विकिरण भेषज ऐसे पदार्थ हैं, जो कम अर्ध-आयु वाले उपयुक्त विकिरण समस्थानिकों जो बीटा या गामा किरणें देते हैं, द्वारा चिन्हित रहते हैं। इन्हें कम मात्रा में रोगी के शरीर में रोग के आकलन हेतु प्रविष्ट किया जाता है। तत्पश्चात स्फुरण - गणित्र उपकरण द्वारा शरीर के अवयव के विस्तार, शक्ल और स्थान का पता लगा लेते हैं। इनके अनुप्रयोगों से यह भी पता लगा लेते हैं कि अवयव ठीक प्रकार से काम कर रहा है अथवा नहीं। उदाहरणार्थ I- 31 चिन्हित सोडियम आयोडाइड की सूक्ष्म मात्रा शरीर में प्रविष्ट करा, जो केवल थाईरॉइड ग्रन्थि द्वारा सोखली जाती है, उससे निकलने वाली किरणों को गामा कैमरे अथवा स्कैनर द्वारा पता लगा लिया जाता है। तत्पश्चात अवयव का अक्स कागज या वीडियो स्टेशन पर बना लिया जाता है। इस विधि द्वारा विभिन्न शारीरिक अवयवों, जैसे मस्तिष्क, फेफड़े, हृदय, गुर्दे आदि सही प्रकार से अपना कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं पता लगाया जा सकता है। यह जानकारी विभिन्न रोगों के आकलन एवं निदान के लिए बहुत ही उपयोगी है। दूसरा अनुप्रयोग जिसमें विकिरण प्रतिरक्षा आमापन किट्स का उपयोग होता है, कम विकिरण सक्रियता वाले पदार्थों को रोगी के शरीर में प्रविष्ट करके, रक्त का नमूना लेकर शरीर के तरल पदार्थों में हारमोन्स, विटामिन्स, प्रोटीन्स आदि जैविक अंशों की सूक्ष्म मात्रा का सफलता पूर्वक पता लगा सकते हैं। भारत में विकिरण भेषजों का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। हर साल लगभग 6,00,000 रोगी इससे लाभ उठा रहे हैं। इनकी आपूर्ति देश के 150 चिकित्सालयों में विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड, ट्रॉम्बे द्वारा की जा रही है।

विकिरण भेषजों का नाभिकीय चिकित्सा में व्यापक उपयोग टैक्नीशियम - 99m जेनेरेटर द्वारा किया जा रहा है। Tc-99m एक ऐसी गामा किरण देने वाला विकिरण समस्थानिक है जिसकी अर्ध आयु मात्र 6 घंटे है। यह मालिब्डीनम-99 जिसकी अर्ध-आयु 67 घंटे है, से चिकित्सालयों में ही तैयार किया जा सकता है। इसके पश्चात Tc-99m दूसरे रासायनिक यौगिकों के साथ चिन्हित कर अनके रोगों के आकलन हेतु प्रयुक्त किया जाता है। विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड की ओर से ऐसी व्यवस्था

की गई है कि अल्पकालिक माँग पर चिकित्सालयों में ही इन्हें तैयार कर रोगी की जाँच पड़ताल के लिए इनका समय पर उपयोग किया जा सके।

विकिरण उपचार

कोबाल्ट-60, इरीडियम-192 एवं गोल्ड-199 विकिरण स्रोतों ने विभिन्न प्रकार के कैंसर रोगों का उपचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक तकनीक में कम सक्रियता वाले स्रोत, सुई अथवा नलियों के रूप में, रोगी के कैंसरग्रस्त अवयव के अन्दर प्रविष्ट कर एक निश्चित अवधि के लिए विकिरण की आवश्यक मात्रा देने के लिए रख दी जाती हैं। इनकी किरणों से कैंसरग्रस्त कोशिकाएं मर जाती हैं। बाहरी उपचार विधि में, कोबाल्ट - 60 स्रोत से निकलने वाली शक्तिशाली किरणों के पुंज को शरीर के कैंसरग्रस्त हिस्से पर डालकर रोग का इलाज किया जाता है। आज हमारे देश में कोबाल्ट - 60 युक्त 150 टैली उपचार मशीनें विभिन्न चिकित्सालयों में कार्यरत हैं, जिनसे 75,000 रोगियों का इलाज हर साल किया जाता है। इनके लिए कोबाल्ट-60 की आपूर्ति ट्रॉम्बे से की जाती है। देश में टैली उपचार मशीनों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए परमाणु ऊर्जा संस्थान स्वदेशी उत्पादनकर्ताओं को टैली - मशीनों के उत्पादन के लिए तकनीकी सहायता प्रदान कर रहा है।

चिकित्सीय उत्पादों का विकिरण द्वारा निर्जर्मीकरण

विकिरणों के जीवाणुनाशक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए इनका उपयोग व्यापारिक - स्तर पर चिकित्सीय उत्पादों के निर्जर्मीकरण हेतु हो रहा है। अत्यधिक पारशक्ति गुण के कारण गामा किरणें बाहरी बक्से को भेदकर उसमें रखे पदार्थों के हर भाग में समान रूप से पहुँचकर उन्हें जीवाणु मुक्त कर देती है। इस विधि में ताप उत्पन्न नहीं होता। इस कारण से निम्न - द्रवांक वाले प्लास्टिक उत्पादों के निर्जर्मीकरण हेतु यह बहुत ही उत्तम है। अन्य विधियों की तुलना में विकिरण - विधि द्वारा ज्यादातर जीवाणुओं के लिए अत्यधिक नाशनांक प्राप्त होता है और इस कारण निर्जर्मीकृत उत्पादों में अत्यधिक सुरक्षा-गुणक का लाभ मिलता है। इन विकिरण निर्जर्मीकृत पैकेटों की निधानी-अवधि व्यवहारत: अन्तहीन है। इस विधि का सबसे बड़ा फायदा यह है कि चिकित्सा उत्पादों व औषाधियों के अंतिम रूप से बंद पैकेट, बक्सों में बंद करके बगैर खोले, निर्जर्मीकृत किये जा सकते हैं। ट्रॉम्बे स्थित आइसोमेड विकिरण संयंत्र 1974 से देश के 150 चिकित्सकीय-उत्पाद बनाने वालों को यह सुविधा प्रदान कर रहा है। दो ऐसे संयंत्र बंगलौर एवं दिल्ली में स्वदेशी तकनीकी और उपस्करों का उपयोग कर लगाये गये हैं। यह आशा की जाती है कि देश के दूसरे स्थानों पर भी ऐसे संयंत्र जल्दी ही लगाये जायेंगे।

मलमूत्र कीच का विकिरण उपचार

नगर निगमों की अपशिष्ट जलधारा में मलमूत्र कीच का विकिरण एक नवीन एवं आशापूर्ण अनुप्रयोग है। विकिरण विधि ही कीच प्रबन्ध की जटिल समस्याओं के समाधान की पूर्णता का प्रयास है। इसमें विकिरण स्वास्थ्यीकरण के बाद वातावरण की सुरक्षा एवं जन स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के अनुरूप मलमूत्र कीच के पुनः संचारण में है। मलमूत्र कीच में अत्यधिक मात्रा में रोगजनक जीवाणु होते हैं जो कि मनुष्यों में आन्त्रज्वर, हैजा, यकृत रोग आदि के लिए जिम्मेदार हैं। संक्रमित कीच का वातावरण में निस्तारण जन स्वास्थ्य के लिए खतरा है।

कीच - उपचार की रीतिगत विधियों में उदाहरणतः वातजीवी तथा वातनिरपेक्षी उपचार विधियों में, लक्ष्य मूलतः कीच को स्थिर करने का होता है, अर्थात इसे सिर्फ अस्थिर जैव पदार्थों तथा गंधों से मुक्त करना होता है। इन विधियों में रोग जनकों का संकेन्द्रण कीच में सुरक्षित सीमा तक कम नहीं हो पाता है। दूसरी ओर, विकिरण स्वास्थ्यीकरण एक सुरक्षित उत्पाद देता है जिसे विकिरण की 3 से 10 कि. ग्रे मात्रा देकर आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

बड़ौदा में वहाँ के नगर निगम के लिए प्रदर्शन संयंत्र स्थापित किया गया है। जहाँ एक अभिक्रियक पात्र में मलमूत्र कीच रखा जाता है और उसे कोबाल्ट - 60 की गामा -

किरणों से निश्चित अवधि के लिए किरणित किया जाता है। साथ में, एक संयंत्र इसे लगातार मथता रहता है ताकि ठोस पदार्थ तल में न बैठें और द्रव के हर अंश को बराबर विकिरण मिले। इस प्रदर्शन संयंत्र की कुल क्षमता 5 लाख क्यूरी (कोबाल्ट - 60) है तथा यह नगर - निगम के 50 लाख गैलन कीच का प्रतिदिन उपचार कर सकने में सक्षम है। इस संदर्भ में अनुपचारित कीच में पाये जाने वाले जीवाणु संबंधित आँकड़ों की जानकारी और उनकी विकिरण संवेदना का अनुमान लगाया जा चुका है।

कृषि क्षेत्र में अनुप्रयोग

(1) आजकल विकिरण समस्थानिकों का उपयोग कृषि अनुसंधान में व्यापक रूप से हो रहा है। विकिरण सक्रिय अनुसारकों ने कृषि क्षेत्र में उन्नत विधि से खेती करने एवं मिट्टी - प्रबंध में नई दिशा दिखाई है। विकिरण समस्थानिक चिन्हित उर्वरकों का उपयोग अत्यावश्यक पोषक तत्वों, जैसे फास्फोरस, कैलशियम, सल्फर आदि की खेती में भूमिका का अध्ययन और उनसे मिलने वाले आंकड़ों से विभिन्न प्रकार की मिट्टी और जलवायु वाले प्रदेशों में इनकी उचित मात्रा का निर्धारण करने में सहायता मिलती है। सूक्ष्म मात्रा में पाये जाने वाले तत्व, जैसे जिंक, मैंगनीज, मोलीब्डीनम आदि की आवश्यकता एवं भूमिका को समझने और दर्शाने में विभिन्न चिन्हित रसायनों ने विकिरण - अनुसारक के रूप में कृषि जगत में बड़ी मदद की है। विभिन्न कीटनाशक दवाईयों के विषैलेपन का अध्ययन विकिरण समस्थानिकों से चिन्हित कीटनाशकों के उपयोग द्वारा सफलतापूर्वक किया गया है। कीटों में होने वाली शरीर क्रियात्मक और जीव रासायनिक क्रियाओं को अच्छी प्रकार समझने के पश्चात, ऐसी उत्तम प्रकार की कीटनाशक दवाईयों का विकास संभव हुआ जिनके प्रति कीटों की प्रतिरोधक शक्ति बहुत कम पाई गई। कीटनाशकों और उनके मध्यवर्ती यौगिकों को चिन्हित कर कृषि उपयोग में लाने से ऐसे बहुमूल्य आंकड़े उपलब्ध हुए जिनके द्वारा फसलों में उनके तथा उनसे बनने वाले दूसरे यौगिकों (अवशेषों) के प्रकार, मात्रा एवं संचित होने के स्थान का पता लगता है।

(2) आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विभिन्न फसलों की नई किस्मों के विकास के लिए पौधों में अनुवांशिक परिवर्तन लाने के लिए भी विकिरण समस्थानिक स्रोतों का उपयोग किया गया है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में अधिक उपज देनेवाली चावल, राई, मूंगफली एवं दालों की विभिन्न किस्मों का विकास किया गया है। आज देश के कई प्रान्तों में इनकी फसल उगाई जा रही है।

(3) **विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण :** विकिरण खाद्य पदार्थों के सड़ने गलने में सहायक जैव क्रियात्मक प्रतिक्रियाओं को नियन्त्रित कर उन्हें संरक्षण प्रदान करता है। यह एक प्रभावी साधन है। इस विषय पर विश्वभर में हुए अनुसंधान एवं विकास कार्यों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यह एक कारगर व्यवहारिक तरीका है एवं किरणित खाद्य पदार्थ मनुष्यों के लिए निरापद हैं। विकिरण की जरा सी मात्रा आलू एवं प्याज के अंकुरण को रोकने और फसल काटने के बाद, उन्हें अधिक समय तक सुरक्षित रखने में सहायक है। इसी प्रकार, यदि खाद्यान्नों (अनाज) को फसल की कटाई के बाद भंडारों में रखने से पूर्व किरणित कर लिया जाय, तो खाद्यान्न कीटों से नष्ट होने से बचकर, अधिक समय तक सुरक्षित रह सकते हैं। विश्व के कई देशों ने खाद्य पदार्थों को विकिरण द्वारा सुरक्षित रखने के लिए मंजूरी दे दी है और यह आशा की जाती है कि यह तकनीक भविष्य में खाद्य पदार्थों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। ■

प्रतिरक्षा प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम

ले. जनरल (डा) वी. जे. सुंदरम्, निदेशक,
प्रतिरक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला एवं
आर. सी. आई, हैदराबाद, 500 258.

इस लेख में भारतीय प्रक्षेपास्त्र तकनीक की वर्तमान स्थिति पर चर्चा की जाएगी । तकनीक से सम्बन्धित प्रणाली संरचना (डिजाइन) वातुरतिकी, आकार, रचना, प्रणोदन, मार्गदर्शन एवं नियंत्रण शासन विधियां अनुसरण तथा परीक्षण संकेत प्रारूपण (टेलीमेटरी एवं सिमुलेशन) आदि क्षेत्रों की जानकारी प्रस्तुत की जायेगी । इसके साथ ही पृथ्वी, त्रिशूल व नाग प्रक्षेपास्त्र प्रणालियों तथा तकनीकी दिग्दर्शक अग्नि के मुख्य विवरण संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किये जायेंगे ।

आज से 200 वर्ष पूर्व, टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपने राकेट प्रयोग किये थे । आयुद्ध कला में यह अग्रणी प्रयास था । टीपू सुल्तान की श्रीरंगपट्टनम् की हार के बाद भारतीय राकेट को लोग प्रायः भूल गये थे । गत वर्ष दूरदर्शन पर इन राकेटों को देखकर हम में से कई लोगों को आश्चर्य हुआ ।

हैदराबाद स्थित डी. आर. डी. एल. एवं आर. सी. आई. ने उपरोक्त परम्परा को आधुनिक संदर्भ में फिर से जीवित किया है । मार्गनिर्देशित प्रक्षेपास्त्रों के क्षेत्र में भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए रत डी. आर. डी. एल. एवं आर. सी. आई. प्रयोगशालाएं प्रक्षेपास्त्रों के अनुसंधान परिकल्पना, विकास तथा तकनीकी हस्तांतरण में पिछले कई दशकों से व्यस्त है । भारतीय थल सेना. नौसेना और वायुसेना की आवश्यकताओं के अनुरूप, स्वदेशी विशेषज्ञों तथा अधिक स्वदेशी सामग्री से निर्मित प्रक्षेपास्त्रों के उत्पादन के लिये, डी. आर. डी. एल. उत्तरदायी है ।

इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिये सबसे पहले डी. आर. डी. एल. ने उपभोक्ताओं के साथ बैठक की । इस गतिविधि का उद्देश्य था सेना की आवश्यकताओं का अध्ययन करना, प्रक्षेपास्त्रों की वर्तमान विशिष्टताओं का निर्धारण करना तथा भविष्य में प्रयोग के समय विश्व स्तरीय समकालीन निष्पाद का निर्धारण करना । इस नीति के अन्तर्गत 1983 में एक योजना बनाई गई जिसे नाम दिया गया आइ. जी. एम. डी. पी. अर्थात संघटित मार्गनिर्देशित प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम। इस विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत चार प्रक्षेपास्त्रों तकनीकी विकास प्रदर्शक का समावेश किया गया। यह प्रक्षेपास्त्र निम्नलिखित है :-

(क) पृथ्वी : जमीन से जमीन पर, 150 किलो मीटर दूरी तक मार करने की क्षमता रखता है। यह मार्गदर्शित प्रक्षेपास्त्र अति विस्फोटक वारहेड से लैस हैं ।

(ख) त्रिशूल : जमीन से हवा में सीमित दूरी तक मारने के लिए इसका प्रयोग होता है । यह प्रक्षेपास्त्र राडार आधारित है तथा ई. सी. एम. विरोधी क्षमता लिये हुए कमान्ड गाईडेन्स शैली पर आधारित है ।

(ग) आकाश: जमीन से हवा में मध्यम दूरी तक बहुलक्ष्यीय मार की क्षमता लिये यह प्रक्षेपास्त्र फेज्ड-ऐरे राडार शैली को प्रयुक्त करता है ।

(ध) नाग : यह टैक-विरोधी प्रक्षेपास्त्र मिलीमीट्रिक तथा प्रतिबिम्बित अवरक्त (इनफ्रा-रेड) शैलियों पर आधारित है ।

(घ) अग्नि: वायुमंडल में पुन: प्रवेश तकनीक पर अध्ययन, अनुसंधान और विकास करने के लिये इसका प्रयोग किया जा रहा है ।

प्रक्षेपास्त्रों की विविधता को परिलक्षित कर डी. आर. डी. एल की दूसरी गतिविधि का लक्ष्य था आवश्यकताओं, तकनीकी, तकनीकी मानवशक्ति तथा अन्य संसाधनों का एकीकृत रूप में युक्तिसंगत अध्ययन करना । जहाँ तक हो सके आधारभूत वैज्ञानिक उपलब्धियों और प्रमापिय पद्धति का प्रयोग इस गतिविधि की विशेषता थी ।

विकसित देशों द्वारा भारत पर संभावित प्रतिबन्धों को परिलक्षित कर, अगली गतिविधि का उद्देश्य था क्रान्तिक सामग्री एवं तकनॉलाजी तथा उपलब्ध संसाधनों का अभिज्ञान करना । अपेक्षानुसार सात विकसित देशों ने प्रक्षेपास्त्र तकनीक नियंत्रण की नीति की वजह से कार्यक्रम को सुचारू रूप से चलाया जा सका ।

सहयोग और भागीदारी के लिये उन 60 संस्थानों को चुना गया जहां पर विशेषज्ञ उपलब्ध थे । इसलिए डी. आर. डी. एल एवं आर. सी. आई. के साथ इन संस्थानों की गतिविधियों का यहॉ उल्लेख किया जाएगा । इस प्रबंधकीय नीति का प्रारूप इस प्रकार किया गया कि सहयोग बढ़े और विलम्ब न हो ।

सहयोगी संस्थानों में कई शिक्षासंस्थान, सी. एस. आई. आर., आइ. एस. आर. ओ. प्रयोगशालाएँ, सार्वजनिक व निजी कारखाने, सरकारी विभाग, निरीक्षण संस्थान और गुणवक्त आश्वासन संस्थान सम्मिलित हैं।

इष्टतम विन्यास पर पहुँचने के लिये डी. आर.डी. एल में नाना प्रकार की गतिविधियों का विकास किया गया। इनमें से प्रमुख है प्रणाली विश्लेषण, वायुगतिकी प्रणाली और संरचना प्रारूपण। इस दिशा में भारतीय विज्ञान संस्थान (आई. आई. एस सी.), भारतीय तकनीकी संस्थान (आइ. आइ. टी.), जाधवपुर विद्यालय, राष्ट्रीय वातुगतिकी प्रयोगशाला (एन. ए. एल.) तथा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (आइ. एस. आर. ओ.) का योगदान रहा।

प्रारूपण सुनिश्चित करने के लिये कई पद्धतियों का विकास किया गया और अपनाया गया । इनमें से प्रमुख हैं 6 अवस्थाओं के स्वातनत्र्य आंगुलिक अनुरूपण (6 डिग्री ऑफ फ्रीडम डिजिटल सिम्युलेशन) पद्धति जिसमें लचीलेपन (फ्लेक्सिबिलीटी) तथा छलकाव (स्लॉश) का अध्ययन सम्मिलित था । प्रक्षेपास्त्र वायुगतिकी के लिये संगणकीय तरल गतिकी (कम्प्युटेशनल फ्लुइड डायनॉमिक्स) की नियमावली (कोड) का विकास भारतीय विज्ञान संस्थान और डी. आर. डी.एल.ने संयुक्त रूप से किया । इस पद्धति में डी. आर. डी. एल. में उपलब्ध अपेक्षाकृत धीमे संगणकों का उपयोग इस पद्धति के लिये नहीं किया जा सकता। यह गतिशील एलगॉरिथम के विकास के कारण ही यह संभव हो सका ।

प्रक्षेपास्त्रों का प्रारूपण से यह निष्कर्ष निकला कि प्रक्षेपास्त्रों की संरचना के लिये एक विशेष प्रकार का इस्पात जिसे मॉरजिंग इस्पात कहा जाता है, तथा एल्युमिनियम, मैग्नेशियम एवं टाइटेनियम धातुओं की आवश्यकता है । वैमानिक मानकता प्रदान इन मिश्र धातुओं की उपलब्धि प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के आरंभ के समय नहीं थी । इस चुनौती को रक्षा धातुकी अनुसंधान प्रयोगशाला (डी. एम. आर. एल.) सी. आर. ई. (मिधानी) जैसी अनुसंधान तथा विकास प्रयोगशालाओं ने तथा बाल्कों, मिधानी और एच. ए. एल. जैसी औद्योगिक संस्थानों ने स्वीकार किया । आज इन मिश्र धातुओं को आयात करने के स्थान पर हम निर्यात करने की स्थिति में हैं । प्रक्षेपास्त्रों के ढाँचों की संरचना का विकास डी. आर. डी. एल. में किया गया तथा आज यह ढाँचें एंच. ए. एल. तथा बी. डी. एल. में निर्मित किये जाते है ।

प्रणोदन के क्षेत्र में कई संस्थानों का योगदान रहा है। डिफेन्स साइंस सेन्टर (डी. एस. सी.) द्वारा विकसित द्रव नोदकों को आयुध कारखानों (आर्डीनेन्स फैक्टरियों) द्वारा उत्पादन किया जाता है । द्रव नोदक चलित रॉकेट, इंजन

14 F

को डी. आर. डी. एल. ने विकसित किया तथा तकनॉलॉजी को एच. ए. एल. को हस्तांतरित किया गया । भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा विकसित एस. एल. वी-3 के पहले चरण का ठोस नोदक रॉकेट अग्नि के पहले चरण में प्रयुक्त किया गया । प्रचुर ईंधन लिये हुए ठोस नोदक करते हुए एकीकृत रॉकेट (रैमजेट) का विकास डी. आर. डी. एल. में हो रहा है । टाइटेनियम तथा मॉरजिंग इस्पात का प्रयोग करते हुए, डी. आर. डी. एल. द्वारा प्रारूपित मोटर आवरण का वालचंदनगर उद्योग तथा लारसन एण्ड टुबरो, सफलतापूर्वक उत्पादन कर रहा हैं । सम्पूर्ण रॉकेट का परीक्षण किया जाता है, एक विशेष सुसाध्यता द्वारा जो डी. आर. डी. एल. के पराध्वनिक पवन सुरंग (सुपर सानिक विन्ड टनेल) से जुडी हुई है ।

जड़त्वीय विमान-चालक पद्धति (इनरशियल नेवीगेशन सिस्टम), सूक्ष्म प्रक्रमक (माइक्रोप्रोसेसर) आधारित उड़ान संगणक (फ्लाइट कम्प्यूटर) तथा आंगुलिक स्वचालक (डिजिटल आटोपाइलट)का विकास एक बहुत बड़ी चुनौती थी। सम्पूर्ण जड़त्वीय पथ निर्देशक का परीक्षण किये जाते हैं ।

सूक्ष्मतरंग (माइक्रोवेव) तकनीक के क्षेत्र में डी. आर. डी. एल. और आर. सी. आई. ने कई उपकरणों का विकास किया है जिनमें राडार द्वारा अनुमान और सवारी पथ निर्देशक यंत्र प्रमुख है। कई यंत्रों का विकास समीर (बम्बई) तथा यू. एस. ई.(होसूर) द्वारा किया गया है । यह सभी उपकरणों को डी. आर. डी. एल. तथा एल. आर. डी. ई. द्वारा विकसित थल तंत्र से जोडा गया है । प्रावस्थाबध्द राडार में उपयुक्त होने वाले दशा-स्थानांतरित यंत्र (फेज शिफटर) का दिल्ली स्वदेशी विकास तथा सी. इ. एल. द्वारा उत्पादन एक विशेष उपलब्धि रही है । अब इनका उत्पादन बी. ई. एल. और एच. ए. एल. हैदराबाद में होगा ।

संयुक्त पदार्थोंको विकसित करने के लिये विशेषतया आई. पी. सी. एल. की क्षमताओं का प्रयोग कर कार्बन के रेशों के उत्पादन करने की दिशा में विशेष बढ़ावा दिया गया। प्रक्रिया की एकरूपता तथा उत्पादन में गुणवत्ता की समस्यायों को लक्ष कर संयुक्त पदार्थों के लिये एक उत्पादन संस्थान, कॉम्पोजिट प्रॉडक्शन सेंटर, (काम्प्राक) की स्थापना की गई। भविष्य में काम्प्राक को सरकारी व निजी क्षेत्र में संयुक्त संस्था बनाया जाएगा ताकि देश की आवश्यकता को पूरा किया जा सके ।

उच्च तापमान का सामना करने के लिये पुन: प्रवेश वाहन संरचना में प्रयुक्त कॉर्बन-कॉर्बन तकनीक को विकसित करना राष्ट्रीय क्षमता में एक महत्वपूर्ण योगदान है ।

सिल्वर ऑक्साईड-जिंक तथा ऊष्मीय बैटरियों जैसे स्रोतों को भी विकसित तथा प्रमाणित किया गया।

सुदूर मापक यंत्र प्रक्षेपास्त्रों के निष्पादन को मापने के लिये आंकडे इकट्ठा करता है । विश्वसनीय संवेदक (सेंसर) तथा सुदूर मापक प्रणालियों को परीक्षण उड़ानों में, दबाव, त्वरण, कंपन, तथा विद्युतीय प्राचलों के विषय में, आंकडे इकट्ठे करने के लिये विकसित तथा प्रयुक्त किया गया है ।

इन सभी गतिविधियों में गुणवत्ता आश्वासन आवश्यक है । इसलिये कार्यक्रम के आरंभ से डी. टी. डी एण्ड पी. (एअर), डी. जी. क्यू. ए. ए. जो कि प्रक्षेपास्त्रों के गुणवत्ता का आश्वासन देगा । यांत्रिकीय प्रणालियों में लगभग शतप्रतिशत भारतीय घटकों का प्रयोग करते हुए गुणवत्ता आश्वासन प्राप्त हुआ है । विद्युकीय प्रणालियों में स्वनिर्मित घटकों के प्रयोग मे अभी कुछ कमी है । फिर भी हमें यह विश्वास है की भारतीय विद्युकीय उद्योग गुणवत्ता की कसौटी पर खरे उतरेंगे तथा प्रक्षेपास्त्र के क्षेत्र में योगदान करेंगे ।

समर्पित परियोजना दल तथा उड़ान परीक्षण दलों द्वारा संपूर्ण प्रणालियों तथा उप-प्रणालियों को प्रमाणित करने के लिये, आई. टी. आर. (बालासोर) की सहायता से कई परीक्षण उड़ाने की गयीं हैं । आज पृथ्वी तथा त्रिशूल उत्पादन के चरण में पहुंच गये हैं । विकास के साथ साथ उत्पादन तथा निरीक्षण संस्थानों को समवर्ती हस्तांतरण की नीति प्रारंभ से ही अपनाई गई, जिसके कारण उत्पादन के लक्ष्य में कम से कम तीन वर्ष बचाये गये ।

इन गतिविधियों को श्रृंखलाबद्ध करने और कार्यान्वित करने का लिये एक तरफ थे योजना तथा विश्लेषण दल और दूसरी ओर परियोजना, कार्यक्रम,

उत्पादन और उच्च समीक्षा दल जिनमें विकास संस्थान, उपभोक्ता, उत्पादन संस्थान तथा सरकार शामिल थे । कई तकनीकों को गर्भस्थ कर लिया गया है तथा कई समस्याओं को सुलझाया जा रहा है । भविष्य की गतिविधियों की योजना बनाई गयी है । भविष्यकालिक योजना हाइपर प्लेन की परिकल्पना डी. आर. डी. एल. तथा बी डी. एल. ने की है । इनमें कई नई तकनीकों का समावेश किया गया है । जैसे कि स्क्रैप जेट, पराध्वनिक दहन तथा उड़ाने के समय गलन प्रणाली द्वारा ऑक्सीजन की प्राप्ति। संगणक नियंत्रित परिरूपण तथा उत्पादन कला (किज-कैम) प्रणाली जैसी कठिन संकल्पना के प्रयोग के विषय में न केवल डी. आर. डी. एल. के वैज्ञानिक परन्तु सभी वैज्ञानिक संस्थान आशान्वित हैं ।

पृथ्वी और त्रिशूल 1993 में सेना में प्रयुक्त किये जाएंगे तथा आकाश और नाग कुछ वर्ष पश्चात प्रवेश करेंगे। संभवत: हाइपर प्लेन भी । आई. जी. एम. डी. पी. ने यह दर्शा दिया है कि यदि हम हम में निरंतर संघर्ष करने का निश्चय करें तथा हम सभी राष्ट्रीय संसाधनों को योजना बद्ध रूप से एकीकृत करें तो एक निश्चित समय में गुणवत्ता तथा आत्मनिर्भरता संभव है । हमारा ध्येय है साझेदारी, संकल्प द्वारा गुणवत्ता एवं आत्म निर्भरता । ■

(पृष्ठ 38 का शेष भाग)

बनाये गये यंत्र और औजार होने जरूर हैं। चूंकि पानी की कमी है इसलिए कैचटमेंट क्षेत्र की स्थल आकृति (बनानट) के मुताबिक जांच किया जाना जरूरी हैं, इससे बहुत कम (यानी ज्यादा से ज्यादा एक या दो बार) सिंचाई के लिए और जमींदोज पानी के लिए बारिश के पानी का पूरा इस्तेमाल किया जा सके। कहा जाता है कि अकेले तामिलनाडु में 30,000 पानी इकट्ठा करने के तालाब (केचमेंट) हैं जिन्हें राई कहा जाता है, जिसके परिमाप (पेरिमीटर) से 30 गुना धरती को पानी मिल सकेगा। सदियों से चले आ रहे इस विचार को फिर से अमल में लाना होगा। निकासी कार्यों का नियोजन और अमल का काम अन्य सिंचाई कार्यों के साथ - साथ किया जाना चाहिए। खास तौर से खारे पानी वाले और जल - मग्न (पानी भरे) क्षेत्रों में इस पर ध्यान देना होगा।

आने वाले समय में अतिरिक्त अनाज पैदा करने की कोशिशों की वजह से कई समस्याएं सामने आएंगी जिनका हल खोजना होगा। ये समस्याएं माल की खरीद फरोख्त, परिवहन (माल को लाना ले जाना) भण्डारण, प्रोसेसिंग, रखरखाव और डिब्बाबंदी आदि से ताल्लुक रखती हैं। ये दोनों घरेलू उपयोग और निर्यात के लिए जरूरी हैं। गुलदस्ते, बुके आदि में इस्तेमाल किए जाने वाले फूलों (कट फूलावर), फूलों, सब्जियों अन्य कृषि और मछली उत्पादों के लिए बड़े अंतर्राष्ट्रीय बाजार के दरवाजे खुले हैं। मिसाल के तौर पर इस समय अकेले फूलों के व्यापार से 16 अरब अमेरिका डालर मिलने की संभावना है। यह हर साल 15 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। इस बढ़ते हुए निर्यात में जो रुकावट आ रही है वह है माल तैयार करने की जगह, अंतर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुंचने के लिए डिब्बाबंदी , प्रशीतन, भण्डारण और तुरंत परिवहन के सही बुनियादी ढांचे का न हो पाना। पिछले छ:सालों में खास - खास कृषि उत्पादों के निर्यात में तीन गुना बढ़ोतरी हुई है। यह निर्यात 1985-86 में सिर्फ 1,908 करोड़ रु. से बढ़ कर 1991-92 में 6, 195 करोड़ रुपये हो गया। सन 2,000 के लिए 17,700 करोड़ रुपये का लक्ष्य रखा गया है जो कि बड़ी बात नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय शांति और खाद्य मिशन के अनुसार सन् 2,000 तक 40,000 करोड रु. सालाना की निर्यात क्षमता का लक्ष्य पूरा किया जा सकता है। इससे 10 करोड़ लोगों को रोजगार मिलेगा। अब जरूरत है कि सभी सरकारी एजेंसियां निजी क्षेत्र और स्वयं सेवी संगठन इसके लिए मिल - जुल कर भरपूर कोशिश करें। ■

अन्तरिक्ष उपयोग कार्यक्रम

प्रमोद काले
निदेशक, अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र
भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन
अहमदाबाद

कृत्रिम उपग्रहों का उपयोग मुख्यतः मौसम की जानकारी और प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण हेतु पृथ्वी के निरीक्षण में तथा टेलिविजन प्रसारण और नेटवर्क कार्यों के लिए किया जाता है। प्रत्येक उपयोग के लिए एक विशिष्ट उपग्रह को निर्धारित कक्षा में छोड़ा जाता है। इन उपयोगों के लिए अपने देश में इन्सैट और आइ. आर. एस, दो उपग्रह प्रणालियाँ स्थापित की गयी हैं। प्रस्तुत वार्ता में उपग्रहों के उपयोग की विस्तार से चर्चा की गयी है।

आज से करीब पैंतीस साल पहले, वर्ष 1975 में मानव निर्मित पृथ्वी के पहले उपग्रह, "स्पूतनिक" का प्रमोचन सोवियत यूनियन ने किया था। आज हम यह कह सकते हैं कि आज के अन्तरिक्ष युग का प्रारंभ उसी के साथ हुआ। इन पैंतीस सालों में 1000 से भी ज्यादा उपग्रहों का प्रमोचन हो चुका है। इन उपग्रहों में से ज्यादात्तर उपग्रह मानव समाज के शांतिपूर्ण प्रगति और उन्नति के कार्य में लाये जाते हैं। इन उपग्रहों का उपयोग सिर्फ विकसित देशों में ही नहीं, बल्कि विकासशील देशों में भी विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है। अपने देश में भी उपग्रहों का उपयोग अत्यंत प्रभावशाली व सक्रिय रूप से किया जाता है।

अन्तरिक्ष अनुसंधान के लिए भारतीय राष्ट्रीय समिति की स्थापना वर्ष 1962 में की गयी थी और इस कार्य की जिम्मेदारी अहमदाबाद स्थित भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला और ऊर्जा विभाग को दी गयी थी। वर्ष 1972 में भारत सरकार ने यह सब जिम्मेदारी भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन और अन्तरिक्ष विभाग को दे दी। तबसे अन्तरिक्ष अनुसंधान, अन्तरिक्ष उपयोग और अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी कार्य में प्रगति करने का कार्यभार वहाँ कार्य करने वाले सब लोगों ने सँभाला है। इस कार्य में अनेक प्रयोगशालाओं में, अनेक उद्योगों में कार्य करनेवाले लोग हाथ बँटाते हैं और उन्ही के सहकार्य से अपने देश के विकास कार्य में अन्तरिक्ष उपयोग कार्यक्रम अत्यंत उपयुक्त हो गया है।

अन्तरिक्ष उपयोग

उपग्रहों के अनेक उपयोग किये जा सकते हैं। हर एक विशिष्ट उपयोग के लिए उपग्रहों को विशिष्ट और निर्धारित कक्षाओं में छोड़ा जाता है और विशिष्ट कार्यों के लिए अलग-अलग उपग्रह बनाने पड़ते हैं।

उपग्रहों के अनेक उपयोग किये जाते हैं और इनमें से मुख्य उपयोग हैं:-

उपग्रह संचार,

टेलीविजन प्रसारण और नेटवर्क कार्य,

मौसम की जानकारी के लिए पृथ्वी का निरीक्षण,

प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण के लिए पृथ्वी का निरीक्षण

उपग्रहों के विभिन्न उपयोगों में से इन मुख्य उपयोगों के लिए अपने देश में एक सूक्ष्म और सक्रिय कार्यक्रम गत बीस सालों से चलता आया है और अब प्रचलनात्मक दो प्रणालियों का स्थापन हो चुका है। ये प्रचलनात्मक प्रणालियाँ हैं:- इन्सैट (INSAT) और आई. आर. एस. (IRS) उपग्रह प्रणालियाँ। ऐसे उपग्रहों का प्रमोचन करने के काम में आनेवाले प्रमोचन यान अपने ही देश में तैयार करने का कार्य भी बहुत तेजी से चल रहा है।

उपग्रहों के भारत में होने वाले उपयोग

जैसे ही यह ज्ञात हुआ कि भूस्थिर उपग्रहों का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय दूरसंचार के लिए हो सकेगा, तब से सभी

देशों ने मिलकर इन्टैलसैट (INTELSAT) नामक एक संस्था स्थापित की थी। भारत इस संस्था में सबसे पहले शामिल होने वाले देशों में से एक है और इन्टैलसैट उपग्रहों का उपयोग करना वर्ष 1972 से अपने देश में चालू हो गया था। इन उपग्रहों का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय संचार, टेलेक्स, फेसिमिल, टेलिविजन इत्यादि के लिए किया जा रहा है। आज इस काम के लिए अपने देश में बनाये हुए दो भू-केन्द्र कार्यरत हैं। पहला भू-केन्द्र पुणे के नजदीक, आरवी में है जिसका नाम विक्रम है और दूसरा भू-केन्द्र देहरादून के नजदीक है जिसका नाम अहमद है।

अन्य देशों में होनेवाले महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का टेलिविजन द्वारा सीधा प्रसारण अपने देश में करने के लिए इन्टैलसैट उपग्रहों को उपयोग में लाकर हमें टेलिविजन के कार्यक्रम प्राप्त होते हैं। ऑलम्पिक खेल, एशियाई खेल, क्रिकेट प्रतिस्पर्धा, समाचार लायक कार्यक्रम इत्यादि का टेलिविजन से सीधा प्रसारण करने के लिए हमें इन्टेलसैट और इन्सैट उपग्रहों का उपयोग करना पड़ता है।

समुद्र में व्यवहार के लिए जाने वाले जहाजों के साथ संपर्क कायम रखने के लिए अब उपग्रह संचार का उपयोग ज्यादा से ज्यादा होता है और इस कार्य के लिए स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय संस्था INMARSAT का भी भारत एक सदस्य है। आज समुद्र में दूर देशों तक जाने वाले हमारे अनेक जहाजों में उपग्रह संचार के उपकरण लगे हुए हैं और संचार का पूरा उपयोग हो रहा है।

उपग्रह संचार का उपयोग अपने देश में किस प्रकार किया जाए, इस विषय का अध्ययन एवं विचारविमर्श करने के लिए 1968 से 1973 तक वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने अनेक बार चर्चा की थी। इन चर्चाओं एवं अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला कि भारत जैसे व्यापक और विकासशील देश में उपग्रह संचार का उपयोग शैक्षिक टेलिविजन के प्रसार के लिए और नेटवर्क के लिए किया जाए। इस विषय में बड़े पैमाने पर प्रयोग करने के लिए अमरीकी उपग्रह ATS - 6 का उपयोग करके एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयोग, सैटेलाइट शैक्षिक दूरदर्शन प्रयोग (Satellite Instructional Television Experiment) करने का निश्चय किया था और यह प्रयोग 1975 में किया गया था। एक साल तक यह महत्वपूर्ण प्रयोग चलता रहा था और शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण 2400 गाँवों के लिए किया गया था। शिक्षकों के लिए भी एक महत्वपूर्ण प्रयोग इसी में किया गया था जिससे 25000 से अधिक शिक्षकों को इससे लाभ हुआ था।

इस महत्वपूर्ण प्रयोग से हमें जो अनुभव हुए,जो जानकारी मिली, उसका उपयोग करके अपने देश के लिए भारतीय राष्ट्रीय सैटेलाइट इन्सैट परियोजना चालू करने का निर्णय लिया गया था।

भूस्थिर उपग्रहों का उपयोग संचार, टेलिविजन प्रसारण के अलावा, मौसम की जानकारी के लिए तथा पृथ्वी का निरीक्षण करने के लिए भी हो सकता है। इन सब को ध्यान में रखते हुए इन्सैट उपग्रहों को बहु-उद्देशीय बनाना जरूरी था और इसी दिशा में इन्सैट प्रणाली की स्थापना की गयी थी।

इन्सैट उपग्रहों की पहली प्रणाली में चार उपग्रह थे जो एक अमरीकी कंपनी, फोर्ड ऐरोस्पेस से खरीदे थे। आज उनमें से चौथे इन्सैट - 1 D उपग्रह का उपयोग हम कर रहे हैं। इन्सैट उपग्रहों की दूसरी प्रणाली में पाँच उपग्रह होंगे जो अपने देश में बनाये जाएंगे। इस प्रणाली का पहला उपग्रह, इन्सैट - 2 A जुलाई 1992 में अन्तरिक्ष में छोड़ा था और वह अब पूरी तरह से कार्यान्वित हो गया है।

इन्सैट - 1 D और इन्सैट - 2 A उपग्रह अभी निम्नलिखित काम में लाये जाते हैं -

- टेलीविजन का सीधा प्रसारण
- टेलीविजन का राष्ट्रीय नेटवर्क
- टेलीविजन के राज्य स्तरों पर चलने वाले नेटवर्क
- रेडियो के लिए राष्ट्रीय नेटवर्क
- मुख्य शहरों के लिए संचार
- द्वीपों के लिए संचार
- गाँवों के लिए टेलिग्राफ नेटवर्क
- मौसम की जानकारी के लिए पृथ्वी का निरीक्षण
- मौसम की जानकारी के लिए आँकड़ों का संग्रहण

- नैसर्गिक आपत्ति की चेतावनी देने के लिए तंत्र।

संचार के लिए जब उत्कृष्ट प्रकार के साधन उपलब्ध हो जाते हैं, तब इन साधनों का भी अनेक तरीकों से उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि दूरभाष, टेलेक्स, फेसिमिल, गणकयंत्रों से संपर्क इत्यादि।

पिछले दस वर्षों में उपग्रह संचार के उपयोग के लिए अनेक स्थानों पर उपकरण लगाये गये हैं। संक्षिप्त रूप से हम कह सकते हैं कि अब निम्नलिखित उपकरण काम से लाये जाते हैं।

- टेलीविजन के 532 ट्रान्समीटर जो उपग्रह के माध्यम से नेटवर्क में जुड़े हैं,
- रेडियो के सौ से भी अधिक ट्रान्समीटर जो उपग्रह के माध्यम से नेटवर्क में जुड़े हैं,
- संचार के लिए लगाये हुए 100 से अधिक भूकेन्द्र,
- आपत्ति की पूर्व चेतावनी देने के लिए 100 केन्द्र।

इन आँकड़ों से हम यह कह सकते हैं कि अपने देश में अब उपग्रहों का उपयोग संचार के लिए बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। उपग्रह संचार के उपयोग से आज देश के कोने-कोने तक टेलिविजन के कार्यक्रम पहुँच सकते हैं। उपग्रह संचार के भूकेन्द्र अपने सभी द्वीपों में, पहाडी इलाकों में, सीमावर्ती इलाकों में लगाये गये हैं और इससे वहाँ के लोगों को एक महत्वपूर्ण सुविधा प्राप्त हो गयी है। तेल और प्राकृतिक गैस आयोग के अप तट (OFFSHORE) प्लेटफॉर्मों पर भी उपग्रह संचार के केन्द्र लगाये जा चुके हैं। योजना आयोग के राष्ट्रीय सूचना - विज्ञान केन्द्र ने हर एक जिले में मुख्य शहरों को सूचना - विज्ञान संबंधी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए एक बहुत - ही बड़ा नेटवर्क (NICNET) बनाया है और इसके लिए उपग्रह संचार का उपयोग किया जाता है।

उपग्रह संचार से पहले उपग्रहों का उपयोग मौसम की जानकारी के लिए किया जाने लगा था। पृथ्वी के वायुमण्डल की सघनता और वायु का दबाव ऊंचाई पर जाने से कम होता जाता है और पृथ्वी की सतह से 200 या 300 किलोमीटर की ऊंचाई पर यह बहुत ही कम रहता है। पृथ्वी की सतह से 300 या 400 किलोमीटर की ऊंचाई पर छोड़े जानेवाले उपग्रह महीनों तक अंतरिक्ष में रह सकते हैं और 900 या 1000 किलोमीटर की ऊंचाई पर छोडे जाने वाले उपग्रह अनेक वर्षों तक अंतरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में कार्यरत रह सकते हैं। ऐसे उपग्रहों में लगे टेलीविजन कैमरा जैसे उपकरणों से पृथ्वी का निरीक्षण किया जा सकता है। रेडियो तरंगों से इस निरीक्षण के आँकडे या तस्वीरें उपग्रहों से पृथ्वी पर भेजी जा सकती हैं। इतनी दूरी से ली गयी ये तस्वीरें मौसम की जानकारी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हुई हैं। इन तस्वीरों में एक ही समय 1000 कि.मी. लंबी और उतनी ही चौडी जगह दीख सकती है। समुद्र में आनेवाले भयंकर विनाशक तूफान ऐसी तस्वीरों में दिखायी देते हैं। कोई भी पदार्थ जिसका तापमान शून्य अंश केल्विन से ज्यादा हो, वह अन्तरिक्ष में किरणें फैलाता है। पृथ्वी का पृष्ठभाग तो करीबन 290 - 310 अंश केल्विन के तापमान पर है और इस तापमान को उपग्रहों मे लगे हुए उपकरणों से मापा जा सकता है। समुद्र के तापमान मापन से यह जानकारी मिल सकती है कि मछलियाँ अपना भोजन ढूंढने के लिए कहाँ जायेंगी, यह जानकारी हम अपने मछुवारों को देते हैं। इस जानकारी के आधार पर मछुवारे वहाँ जाकर अधिक मछलियाँ पकड़ सकते हैं और उन्हें आर्थिक लाभ भी होता है। अवरक्त किरणों का उपयोग करने से रात को भी तस्वीरें ली जा सकती हैं और इनका उपयोग मौसम की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण है। पृथ्वी के नजदीक, यानि कि 1000 कि.मी. की ऊंचाई की कक्षा में घूमनेवाले उपग्रह दिन में दो बार ऐसी तस्वीरें ले सकते हैं, लेकिन भूस्थिर उपग्रह ऐसी तस्वीरें दिन में 48 बार ले सकते हैं। इन तस्वीरों के उपयोग से चक्रवर्ती तूफानों से कहाँ खतरा पैदा होता है, इसकी जानकारी हासिल होती है और वहाँ के लोगों को आपत्ति की सूचना दी जा सकती है। अपने इन्सैट उपग्रहों द्वारा ली गयी तस्वीरों का विश्लेषण मौसम विभाग में किया जाता है और इनमें से चुनी हुई तस्वीरें टेलीविजन के माध्यम से देश भर के लोगों को दिखायी जाती हैं।

गत 20 सालों से मौसम विभाग अमरीकी टिरोस, निम्बस, नोआ उपग्रहों से मौसम की जानकारी के लिए उपयुक्त आँकडे और तस्वीरें ग्रहण कर रहा है। अब गत 10 सालों से अपने इन्सैट उपग्रहों से आँकड़े और तस्वीरें प्राप्त होने लगी हैं। मौसम की पूरी जानकारी मिलाने के लिए इन आँकड़ों

का बहुत उपयोग हो रहा है। इन सब आँकड़ों का उपयोग मौसम की आगाही के अनुमान लगाने में किया जाता है। सभी आँकडे मौसम विभाग के दिल्ली मुख्य केन्द्र में ग्रहण किये जाते हैं और फिर वहाँ से इन्सैट उपग्रह का उपयोग करके देश भर फैली हुई अनेक वेधशालाओं को भेजे जाते हैं। ये आंकडे वहाँ स्थानीय मौसम के बारे में चेतावनी देने के लिए अत्यंत उपयुक्त होते हैं।

सूर्य की जो किरणें पृथ्वी के वायुमण्डल के बाहर तक आती हैं, वे सब पृथ्वी की सतह तक नहीं पहुँचती हैं। जो किरणें पहुँचती हैं उनमें से अवरक्त किरणें हम देख नहीं सकते, लेकिन विशिष्ट उपकरणों से उनका मापन किया जा सकता है। अवरक्त किरणों के लिए संवेदनशील फोटोग्राफी के काम में आनेवाली फिल्म का उपयोग करके छायाचित्र भी बनाये जा सकते हैं। सूर्य से आनेवाली अवरक्त किरणों का पानी बहुत अच्छी तरह से अवशोषण करता है और सजीव वनस्पति के हरे पत्ते उनका बहुत ही अच्छा परावर्तन करते हैं। इस प्राकृतिक गुणधर्म का उपयोग करने से सुदूर संवेदन का कार्य आसान हो जाता है और गत बीस सालों में इस विज्ञान में बहुत - ही प्रगति हुई है।

सुदूर संवेदन का कार्य देश में बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय सुदूर संवेदन अभिकरण (National Remote Sensing Agency) की स्थापना की गयी है और वह भी अन्तरिक्ष विभाग का एक भाग है। हैदराबाद स्थित यह संस्था अमरीकी लैंडसैट और नोआ उपग्रह, फ्रान्सीसी स्पॉट उपग्रह, यूरोपियन ERS - 1 उपग्रह और अपने IRS-1 A और IRS - 1B उपग्रहों से आँकड़े और तस्वीरें प्राप्त करती है और इन तस्वीरों को सर्व प्रकार के उपयोग के लिए उपलब्ध करती है। इन तस्वीरों का उपयोग करने के लिए हर एक राज्य में अब सुदूर संवेदन केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

इन उपग्रहों से मिले आँकड़ो का और तस्वीरों का उपयोग सिर्फ अनुसंधान के लिए ही नहीं, बल्कि अब अपने दैनिक जीवन में भी होने लगा है। निम्नलिखित विषय तो सिर्फ इन उपयोगों की एक झलक हैं। इन तस्वीरों का यह एक अत्यंत विशेष गुणधर्म है कि हम एक साथ 100 कि.मी. लंबे और 100 कि.मी. चौड़े क्षेत्र को देख सकते हैं। ये तस्वीरें फिल्टर लगे कैमरों से ली जाती हैं और इनमें अवरक्त किरणों से ली हुई तस्वीरें भी शामिल होती हैं।

उपग्रह सुदूर संवेदन के कुछ उपयोग

- जमीन का किस तरह से उपयोग हो रहा है, उसकी जानकारी
- वन संपत्ति कहाँ है, उसकी क्या परिस्थिति है, इसकी जानकारी
- वन संपत्ति का नाश कहाँ हो रहा है, उसकी जानकारी
- जमीन के नीचे पानी कहाँ मिल सकता है, उसकी जानकारी
- समुद्र के किनारे की जगह में कहाँ भूक्षरण हो रहा है, उसकी जानकारी
- हवा और पानी में हो रहे प्रदूषण की जानकारी
- कौन सी फसल किस जगह किस क्षेत्रफल में हो रही है, उसकी जानकारी
- शहरों का होनेवाला अस्तव्यस्त विकास और उसके दुष्परिणामों की जानकारी
- हिमालय में कितनी बर्फ गिरी और उससे कितना पानी हमें मिलेगा, इसका अनुमान
- अच्छी जमीन कहाँ खराब हो रही है और क्यों हो रही है, इसका अनुमान और रेगिस्तान किस तरह बढ़ रहा है, इसका अनुसंधान

सुदूर संवेदन के लिए अन्तरिक्ष में छोड़े जानेवाले उपग्रहों से जो सूचना हमें मिलती है, उसका उपयोग अब बहुत ही तेजी से किया जाता है। जमीन के नीचे पानी कहाँ मिलेगा, यह खोजने के लिए अनेक तरीके होते हैं। आज इस काम के लिए उपग्रहों से ली हुई तस्वीरों का उपयोग करने से जमीन के नीचे का पानी खोजने का काम आसान हो गया है। वर्षा से मिलने वाला पानी ऐसा ही बह जाता है। कभी - कभी तो इतनी जल्दी वह जाता है कि वह जमीन के नीचे के स्तर तक पहुंच भी नहीं पाता। ऐसे पानी को कहाँ और किस तरह से रोकें कि जिससे जमीन के अंदर के पानी

का स्तर बढ़े, इसकी जानकारी के लिए भी इन तस्वीरों का उपयोग हो सकता है और इसके लिए हम कार्यरत हैं।

सुदूर संवेदन के कार्य से जो जानकारी हमें मिलती है, उसका उपयोग करने के लिए हर एक राज्य मे सुदूर संवेदन उपयोग केन्द्र स्थापित किये जा चुके हैं और वहाँ बड़े पैमाने पर कार्य हो रहा है। इस कार्य में राज्यों के अनेक विभागों में कार्य करने वाले लोग जुटे हुए हैं और इस जानकारी का उपयोग अपने देश के विकास और प्रगति के लिए किया जा रहा है।

उपग्रह उपयोग कार्यक्रम में अब हमें सिर्फ जानकारी ही प्राप्त नहीं करनी है बल्कि यह जानकारी, यह ज्ञान हमें सब लोगों तक पहुँचाना भी है। उपग्रहों के उपयोग से हमें जो जानकारी मिलती है, उसका उपयोग तालुका और जिला स्तर पर बनायी जानेवाली योजनाओं में हो, इस उद्देश्य से हम सब काम कर रहे हैं।

अपने देश का उपग्रह उपयोग कार्यक्रम बहुत ही व्यापक है और इसमें अन्तरिक्ष विभाग में कार्य करने वाले लोगों के अलावा और अनेक लोग भी सहायता देते आ रहे हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन का ध्येय यह रहा है कि हम स्वावलंबी बनें और अपने देश की उन्नति और प्रगति के लिए सक्रिय और कार्यशील परियोजनाएं बनायें और इस काम में ज्यादा से ज्यादा अपने देश के उद्योगों, अपने देश में कार्य करने वाली सब संस्थाओं से मिल-जुल कर कार्य करें। उपग्रह उपयोग कार्यक्रम एक ऐसा कार्यक्रम है कि जिसमें सब भाग ले सकते हैं।

अन्तरिक्ष विभाग / भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन में जो भी प्रौद्योगिकी विकसित होती है, उसका उपयोग ज्यादा से ज्यादा हो, उसका लाभ सबको मिले, इसलिए हमारा प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और प्रौद्योगिकी उपयोग कार्यक्रम अत्यंत सक्रिय रहा है।

अन्तरिक्ष विभाग में विकसित प्रौद्योगिकी अब अपने उद्योगों को भी दी जाती है और इस प्रौद्योगिकी का उपयोग करके अपने उद्योगों ने अन्य सभी लोगों के लिए उपकरण बनाये हैं जो आज दैनिक कार्य में उपलब्ध हैं।

अपने देश के इस अन्तरिक्ष उपयोग कार्यक्रम को और भी स्वावलंबी बनाने के लिए हमारे उद्योगों को और तेजी से कार्य करने की जरूरत है। उपग्रहों के काम में आनेवाले सभी घटक यदि अपने देश में बन सकें, तो इससे और भी ज्यादा काम करना आसान होगा। आज के उपग्रहों के लिए आज नहीं तो कल, आनेवाले उपग्रहों के काम आयें, ऐसे घटक, ऐसे पदार्थ हमें अपने उद्योगों में बनाने होंगे और यह उम्मीद रखते हुए हमें और काम करना होगा।

अन्तरिक्ष उपयोग एक ऐसा विषय है कि जिसमें ज्यादा से ज्यादा लोग कार्य कर सकते हैं। इस कार्य के लिए हमें सिर्फ वैज्ञानिक और इंजीनियरों की ही नहीं,बल्कि सब कार्यों में भाग ले सकें, ऐसे लोगों की जरूरत है। कोई भी कल्पना, कोई भी प्रस्ताव जब हमें मिलता है, तब उस पर पूरे विचार विमर्श के बाद कार्य करने के लिए हम हमेशा तैयार रहते हैं।

■

(पृष्ठ 34 का शेष भाग)

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, देश में विभिन्न आधुनिक प्रौद्योगिकियों के विकास का एक प्रमुख स्रोत है । इन तकनीकियों के देश में शीघ्र प्रसार के लिए हम हर संभव प्रयास करते हैं। प्रगत प्रौद्योगिकी के कई ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनके व्यवसायिक दोहन के लिए हमारे निजी उद्योग अभी भी सक्षम नहीं हैं । इसके साथ ही कई ऐसी गैर नाभिकीय तकनीकियां हैं जिनका विकास प्रयोगशाला स्तर पर हो चुका है । हमारा यह निरंतर प्रयास रहा है कि केंद्र के अनुसंधान और विकास आधार को कायम रखते हुए, ऐसी तकनीकियों को औद्योगिक स्तर पर लाया जाए और आज भी हम इस दिशा में प्रयत्नशील हैं ।

न्यूक्लियर विद्युत परियोजनाओं का समाकलित प्रबन्धन

कृष्ण स्वरूप चोपड़ा
परियोजना निदेशक, रापवित 3-8
न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन, बंबई -400 094

इस तथ्य के बावजूद कि एक विकासशील देश के लिए बिजली के उत्पादन में लगातार वृद्धि करना आवश्यक होता है , हमने यह अनुभव किया है कि भारत में बढ़ती हुई बिजली की मांग को पूरा करने में हम किसी हद तक असमर्थ रहे हैं । ऊर्जा के पारंपरिक स्रातों के अलावा हमारे देश के पास न्यूक्लियर ऊर्जा का भी विकल्प है जो एक जटिल तकनीक है और इसमें कई विरोधी दृष्टिकोणों का समावेश भी हैं । इन पर जब तक एकीकृत प्रबन्धन द्वारा सफलता प्राप्त नहीं कर ली जाती तब तक इस कार्यक्रम को सही रूप देना और इसका सफल कार्यान्वयन संभव नहीं है । दुर्भाग्य से नाभिकीय ऊर्जा को जनता प्रायः हिरोशिमा व नागासाकी के विध्वंसकारी परिप्रेक्ष्य में ही देखती है जिसका डर आज भी हमारे दिलों में जिन्दा है । विद्युत न्यूक्लियर पावर कार्यक्रम को विद्युत उत्पादन की अन्य तकनीकियों से भिन्न कई कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है यथा न्यूक्लियर विरोधी दल के प्रचार, अन्य देशों द्वारा उपकरणों तथा वस्तुओंके आयात पर लगाए गए प्रतिबंध, लगातार परिवर्तित होती कठोर नियामक आवश्यकताएं, तथा विद्युत उत्पादन की अन्य तकनीकियों के साथ कड़ी प्रतियोगिता, जहां ऐसी नियामक आवश्यकताएं नहीं हैं ।

अपेक्षाकृत नई व जटिल तकनीकी तथा अपर्याप्त जानकारी के साथ-साथ जिसका आरंभ ही विनाशकारी रहा है, जनता तथा विशेषतः नीति निर्माताओं के मन में न्यूक्लियर टेक्नोलॉजी की उपलब्धियों की छवि, विशेष रूप से बिजली उत्पादन की धुंधली रह जाती है । उपरोक्त कारणों से परमाणु ऊर्जा उत्पादन एक कठिन कार्य है परन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है । कार्य के लिए एक सार्थक प्रणाली आवश्यक है जो प्रभावी रूप में विभिन्न प्रबन्धकीय तथा टेकनोलॉजी के मुद्दों के साथ-साथ मानवीय मुद्दों पर भी नजर रखे । इन मुद्दों का समन्वय इस प्रकार किया जाना चाहिए कि दीर्घकालीन सुरक्षा, विश्वसनीयता व आर्थिक आधारों पर परियोजनाओंका संतोषजनक कार्यान्वयन किया जा सके तथा संगठन, जनता व अधिकारियों के मन में विश्वास पैदा किया जा सके ।

नाभिकीय विद्युत उत्पादन से जुड़े इन विविध मुद्दों को सुलझाने के लिए ही समाकलित परियोजना प्रबन्धन का विकास हुआ। उपरोक्त मुद्दों के प्रभावी निदान के साथ ही साधनों के सर्वोत्तम उपयोग तथा विभिन्न साधनों में सामन्जस्य स्थापित करना ही समाकलित परियोजना प्रबंन्धन कहलाता है । प्रस्तुत लेख में इन दृष्टिकोणों का विश्लेषण किया गया है ।

समाकलित परियोजना प्रबन्धन के उद्देश्यः

इसके निम्नलिखित उद्देश्य है :

1. जिम्मेदारी, अधिकारों तथा जवाबदेही को निर्दिष्ट करने के लिए संगठन तथा व्यक्तियों (कार्मिकों) के लक्ष्यों की सही परिभाषा ।

2. विभिन्न विभागों के बीच तथा दूसरे संगठनों के साथ मेल / इन्टरफेस की स्पष्ट परिभाषा ।

3. वर्तमान स्थिति तथा भविष्य में संगठन की कार्यनिष्पादन माप दंड के लिए सूचकों की परिभाषा।

4 प्रणाली को मॉनीटरिंग तथा पुनर्निवेशन के योग्य बनाना तथा समय रहते गलतियों या कमियों को पहचानना तथा उसमें सुधार ला सकना ।

5. साधनों के इष्टतम उपयोग का ध्येय ।

6. चूंकि केवल मानव (कार्मिक) ही एक मात्र सक्रिय व सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन हैं इसलिए हर कर्मचारी को दूसरे के सापेक्ष अपनी कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन करने की स्थिति में इस प्रकार रखना जिस से उसे सुरक्षा, सफलता तथा प्राकृतिक न्याय की अनुभूति रहे ।

7. प्रणाली को संगठन में विश्वास पैदा करने के योग्य बनाना ताकि सही जिम्मेंदारियां (कमिटमेंन्टस) दी जासकें। उन्हें कार्यान्वित करने को उपरांत उचित रूप में संबंधित लोगों को बतलाना ताकि संगठन की छबि, सम्मान और विश्वसनीयता को सुधारा जा सके ।

8. प्रणाली को इस योग्य बनाना कि वह दीर्ध काल तक श्रेष्ठ ढंग से कार्यकुशल रहे।

आम प्रबन्धकीय तत्व तथा उन के गुण :

एक प्रभावशाली प्रबन्धन प्रणाली की संरचना के लिए आम प्रबन्धकीय तत्वों तथा उन के गुणों को समझना आवश्यक है । ये निम्नलिखित हैं;

(अ) लक्ष्य, जिम्मेदारी व अधिका रों का मनोनयन :
न्यूक्लियर पावर तकनीकी के सन्दर्भ में, संगठन के सही ध्येयों को सुनिश्चित करने के लिए कारपोरेट प्लान में आवश्यक निवेश जैसे भारी पानी, ईंधन, देश में उपलब्ध इन्फ्रास्ट्रक्चर, उत्पादन में लम्बा समय लेने वाले क्रांतिक (क्रिटिकल) उपकरण , अन्दरुनी सक्षमताएं, निधि स्रोत्र तथा इन की आर्थिकता के आधार पर विकसित होना आवश्यक है ।

(ब) कारपोरेट प्लान से यह भी सुनिश्चित हो जायेगा कि परियोजना में किन किन बाह्य संगठनो को सम्मिलित करना है तथा उनके साथ संगठन का प्रभावशाली ढांचा बनाया जा सके तथा श्रेष्ठ परस्पर समन्वय स्थापित किए जासके ।

(स) कारपोरेट प्लान तथा लेवल -1 से लेवल -3 तक के सूचीगत (शैड्यूल्ड) नेटवर्कों की रचना आवश्यक है । इन की सहायता से संगठन तथा व्यक्ति विशेष दोनो को लक्ष्य निर्धारित किए जा सकते हैं तथा साथ ही संगठन का एक प्रभावशाली ढांचा भी बनाया जा सकता है । इस के अतिरिक्त इस योजना तथा नेटवर्क से उन लोगों के लिए जो प्रबन्धन कार्य की पर्याप्तता तथा कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन का कार्य कर रहे हैं, जिम्मेदारियों, अधिकारों के बारे में एक स्पष्ट मार्ग दर्शिका मिल जाती है ।

(द) इस प्रकार विशिष्ट परियोजना का, जो जैसी कारपोरेट प्लान में निहित हो, लेवल -1 से लेवल -3 के शेड्यूल्ड नेटवर्कों में विस्तार किया जाता है ताकि विभिन्न विभागों व व्यक्तियों के अपने अपने सही उद्देश्य निर्दिष्ट किए जा सकें। सही उद्देश्यों के निर्धारण करने के लिए नेटवर्क बनाने में पहले अनुभवों से प्राप्त आंकडों का ही प्रयोग करना चाहिए ।

(क) जिम्मेदारी, अधिकार तथा जवाबदेही को अलग नहीं किया जा सकता। इन को विविध श्रेणियों के अनुसार लेबल -1 लेबल -3 में रखा जाना चाहिए। कारपो रे ट प्लान से लेबल -1 से लेबल -3 के नेटवर्कों में गतिविधियों का वर्गीकरण निम्न मुद्दों को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

(i) जिम्मेदारी तथा अधिकारों के र्निर्धारण के लिए एकल बिन्दु उत्तरदायित्वता (सिंगल प्वांइट रेस्पांसिबिलिटी)

(ii) सुविज्ञता के आधार पर सही कार्य तथा सही विभाग कार्मिक को एकल बिन्दु उत्तरदायित्वता पर दिया जाना।

(iii) उपरोक्त आधार पर प्रत्येक गतिविधि का निम्न स्तर के नेटवर्क में विभाजन की क्षमता ।

(iv) जवाब देही के लिए सही मानीटरिंग के योग्य होना ।

(v) सब से बेहतर क्रम का चयन।

(ख) प्रत्येक गतिविधि पर एजेन्सी तथा कार्मिक का निर्धारण सभी साधनों सहित जैसे समय, लागत, माल , मशीनरी तथा मानवशक्ति इत्यादि कर दिया जाता है। जिस से वह लक्ष्य प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प रहता है तथा साथ ही उत्तर दायी भी ।

(ग) ये नेटर्वक , संगठन के ढांचे की संरचना में, कार्यात्मक जिम्मेदारियों / अधिकारों की श्रेणी के निर्धारण में तथा जो

प्रबन्धन कर रहे हैं या कार्य कर रहे हैं, अथवा कार्य की पर्याप्तता का मूल्यांकन कर रहे है, सभी के मध्य सही सामन्जस्य स्थापित करने में भी सहायक हैं।

समस्याओं का पूर्वानुमान, पहचान व निवारण के योग्य प्रबन्धन प्रणाली

किसी भी प्रबन्धन प्रणाली को पूर्वक्रियात्मक होने तथा उभरती समस्याओं को नियंत्रण में रखने के लिए इसे हर समय कार्य की प्रगति तथा अपनी जड़ें जमाती समस्याओं के प्रति जागरूक रहना पडेगा । इसलिए प्रणाली में स्वयं अपना मूल्यांकन लगातार करते रहने की क्षमता होनी चाहिए। समस्याओं का केवल जान लेना ही पर्याप्त नही बल्कि उन का विश्लेषण भी अनिर्वाय है ताकि इन की जड़ तक पहुँचा जा सके। और इनका समाधान समय रहते किया जा सके अन्यथा यह समस्याएं एक नाजुक स्थिति मे पहुँच जाती है और कार्मिकों में एक दूसरे पर कीचड़ उछालने के लक्षण उभरते हैं। उनका मनोबल गिरता है और एक बार फिर पुरानी गलतियां दोहराई जाने लगती हैं ।

सर्वोत्तम कार्य निष्पादन की प्राप्ति तथा उसे बनाए रखनाः

प्रणाली ऐसे उपाय प्रदान करे जिससे वास्तविक लक्ष्य व हर स्तर पर गुणता के मानक निर्धारित किए जासकें। इनकी तुलना में कार्य निष्पादन का मूल्यांकन कर व सही तरीका निकाला जासके । यह लक्ष्य सभी सम्बन्धित व्यक्तियों व एजेंसियों की संयुक्त सहमति से तय होने चाहिए । इनका स्पष्ट व परिभाषित इकाइयों में प्रकट होना आवश्यक है ताकि

(i) कार्यकुशलता के मानकों का निर्धारित किया जासके।

(ii) सफलता, लक्ष्य के लिए सांमजस्य तथा सामूहिक कार्य पर गौरव का अहसास किया जा सके ।

(iii) हर व्यक्ति के लगातार सुधार के नए तरीकों की खोज के लिए प्रेरित किया जा सके ।

(iv) प्राप्त परिणाम सब को प्रत्यक्ष होने के कारण प्राकृतिक न्याय भाव सहित पुरस्कार प्रणाली को विकसित किया जासकें जो उच्च स्तर प्राप्त करने की प्रेरणा पैदा करेगी, श्रेष्ठ कार्यकुशलता भी।

(v) जवाब देही निधारण होसके । हालांकि प्रबंन्धन को लगातार कार्य के लिए उपयुक्त वातावरण बनाए रखने के लिए प्रयत्न करना होगा । और स्वस्थ स्पर्धा का माहौल तैयार किया जा सके ।

साधनों का इष्टतम उपयोग

यह परियोजना प्रबन्धन का सब से महत्वपूर्ण पहलू है। संगठन कमिटमेन्ट्स का आवंटन व प्रबन्ध करती है, विभिन्न गतिविधियों को प्रथमिकता देती है, सही व्यक्तियों/कर्मचारियों का निर्धारण, आदि करती है। साधनों का श्रेष्ठ संतोलन करते हुए कार्य निष्पादन करती है । साथ ही समय रहते इन की उपलब्धि सुनिश्चित करती है । साधनों में समय, कर्मचारी, पूंजी, मशीनरी, माल तथा सूचना सम्मिलित हैं। यह जानना आवश्यक है कि साधन सीमित हैं तथा संगठन इसका इष्टतम उपयोग करके ही लाभान्वित हो सकता है ।

साधनों के सही उपयोग के लिए उत्पादक्ता तथा साधनों के परस्पर सम्बंध के विषय में विगत आंकडों का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि इस तरह के सम्पूर्ण आंक्ड़े उपलब्ध न हों तब उपलब्ध सूचना के आधार पर एक ऐसी प्रणाली निश्चित करानी चाहिए जो कार्यनिष्पादन के समय आंक्ड़े एकत्र कर सके, उनका पुनरावलोकन कर सके मध्यावधि सुधार कर सके। इसी प्रकार का अभ्यास वहां भी आवश्यक है जहां साधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्पूर्णतः विगत आकड़ों के उपयोग पर किया गया हो। यह इसलिए अनिर्वाय है ताकि यह देखा जा सके कि क्या कार्य निष्पादन में कोई बदलाव आया है। हालांकि प्रायः यह पाया गया है कि या तो विगत आंकड़े उपलब्ध ही नहीं हैं या फिर वे संगठित रुप में नहीं है। इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि प्रणाली लगातार पुनरावलोकन व मध्यावधि सुधार करती रहे।

कार्मिक नीतियां:

मनुष्य सभी उपलब्ध साधनों में सब से जटिल, महत्वपूर्ण व सक्रिय साधन है, इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य के

गुणों को भलिभांति समझा जाए। यह एक प्रमाणित सत्य है कि मनुष्य उस समय सब से अधिक प्रेरित होता है जब उसे यह आश्वासन हो कि उसे हर परिस्थिति में प्राकृतिक न्याय मिलेगा। इस तथ्य से यह बात अपने आप साफ हो जाती है कि कार्मिक नीतियां प्राकृतिक - न्याय पर आधारित होनी चाहिए, तथा पूर्णतया पारदर्शी हों।

प्रत्येक मनुष्य अपने सामर्थ्य, प्रवृत्तियों तथा आकांक्षाओं में भिन्न है। सही मनुष्य को सही कार्य सौपने के लिए यह आवश्यक है कि वह उपरोक्त तथ्यों के आधार पर एक ऐसी प्रणाली की स्थापना की जाय जिस में कार्मिक न केवल अपनी बल्कि दूसरों की योग्यता को भी आंक सके। फिर अपनी अभिलाषाओं की सीमा कर अपनी प्रवृत्तियों की स्थापना भी करे।

साधारण तया देखी गई प्रवृत्तियां :

(i) कुछ नया कर दिखाने की इच्छा। कई व्यक्ति ऐसा कुछ कर दिखाना चाहते हैं जिससे कि उनकी पहचान कृति (कार्य) के रूप में हो भले ही उन्हे आर्थिक लाभ कम हो।

(ii) कुछ तकनीकी कुशल लोग विशेषज्ञ बना रहना चाहते हैं न कि महाप्रबन्धक

(iii) प्रबन्धन योग्यता वाले लोग अधिक जिम्मेदारी लेने की क्षमता, दूसरे को प्रभावित एवं नियंत्रण करने की क्षमता तथा समस्याओं को सुलझाने की निपुणता, आदि रखते हैं।

(iv) सुरक्षा से जुड़े रहने की प्रवृत्ति वाले व्यक्ति कार्य से अधिक सुरक्षा को महत्व देते हैं। प्रबन्धन को इनको केवल अपने स्थान पर बने रहने की कीमत चुकानी पड़ती है।

(v) स्वतंत्रता प्रेमी लोग अपनी गति से अपने चुने कार्य ही करना चाहता हैं। ये लोग किसी भी ऐसे सगंठन के लिए जहां संयुक्त / सामुहिक प्रयास आवश्यक हो, उपयुक्त नहीं।

प्रबन्धन प्रणाली को ऐसी योजना बनानी चाहिए जिस से व्यक्ति विशेष तथा संगठन आप सी लाभों और प्रवृत्तियों का निर्णय कर सकें ताकि व्यक्ति विशेष की जीवन प्रगति की योजना की जा सके।

पेशेगत जीवन की योजना :

इसके निम्न लिखित चार पहलू हैः-

पहला पहलू अन्वेशषण पक्ष से संबंधित है। इस में संगठन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि (क) व्यक्ति विशेष कहां उपयुक्त रहेगा, तथा (ख) क्या व्यक्ति संगठन को पसन्द करता है।

दूसरे पहलू में व्यक्ति की विशेषज्ञता तथा अभिरूचि स्थापित की जाती है। कार्मिक को हर दो से तीन वर्ष के लिए तीन चार विभिन्न विभागों में रखकर उसकी प्रवृत्ति तथा विशेषज्ञता जानी जा सकती।

एक ऐसी प्रणाली आवश्यक है जो व्यक्ति विशेष को उस केकार्य निष्पादन का पुनर्निवेशन दे सकेतथा इस प्रणाली की सहायता से सगंठन भी व्यक्ति विशेष की उपियोगिता का ज्ञान भी दे सके।

इस प्रकार प्रवृत्ति के आधार पर विकसित व्यक्तिगत अनुभव को अगले आठ से दस वर्ष तक उपयोग में लाया जाना चाहिए तथा व्यक्ति विशेष की व्यवस्थापन में निपुणता का निश्चय भी करना चाहिए। यह तृतीय पहलू है जब कि चौथे पक्ष में व्यवस्थापन में निपुण कार्मिको / व्यवस्थापन पदों का देना है। अन्य कार्मिकों की उन्नति के लिए अपनी सुविज्ञानुसार आयाम ढूंडने चाहिए।

पदोन्नति नीतियां :

हमारे देश में सामान्यत: निम्नलिखित पदोन्नति नीतियां है:

(i) उपयुक्ता व वरिष्ठता के आधार पर रिक्त स्थान के लिए पदोन्नति।

(ii) योग्याता के आधार पर पदोन्नति - इस के निर्यण के मानक पारदर्शी होने चाहिए ।

(iii) पुरस्कार एवं दण्ड प्रणाली

जहां एक ओर श्रेष्ठतम कार्य निष्पादन के लिए शीघ्र पदोन्नति तथा यदा कदा अच्छे कार्य के लिए विशेष पुरस्कार की व्यवस्था होनी चाहिए वहीं दूसरी ओर निष्क्रिय एवं गैर जिम्मेदार कार्मिकों के दण्ड का भी प्रावधान होना चाहिए।

मानीटरिंग प्रणाली :

मानीटरिंग प्रणाली द्वारा निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति की जायगी।

(i) परियोजना में विभिन्न स्तरों पर अर्थात लेवल - 1 से लेवल - 3 के सापेक्ष मानीटरिंग विधि में समानता लाना।

(ii) फॉरमेटों का मानकीकरण तथा उसकी उत्पत्ति की आवृत्ति तथा सूचना के प्रवाह का निर्धारण करना।

(iii) लक्ष्यों / शेड्यूल्स के सापेक्ष में कार्य निष्पादन की समीक्षा के लिए समय पर पर्याप्त पुनर्निवेशन की उपलब्धि सुनिश्चित करना।

(iv) शेड्यूल्स तथा कार्य निष्पादन के बीच यदि अन्तर हो तो, उसे कम करने के लिए समय पर सुधार कार्यवाही आरम्भ करना।

(v) बार बार कमिटमेन्टस् को दोहराए जाने से बचने के लिए विशेषत: समय व लागत के विषय में सही प्रक्षेपण करना ताकि विश्वसनीयता बढ़ाई जा सके।

(vi) समय, लागत तथा मानव शक्ति को परस्पर सूत्रबद्ध करना।

vii) योजना से संबंधित आर्थिक खतरों से बचने के लिए मध्यावधि सुधार करना।

(viii) सूचना इस प्रकार एकत्र करना जिस से परियोजना के अन्त में भविष्य के लिए एक विस्तृत डाटा बैंक का संकलन हो सके

(ix) कार्मिकों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करना।

विश्वास तथा मान्याताएं:

मान्यताएं जिन्हें व्यक्ति आदर करता है वे विश्वासों से पैदा होती हैं। ये व्यक्ति की परिस्थितियों या सांस्कृति पर निर्भर होते हैं। यह संगठन का उत्तरदायित्व है कि वह अपने कर्मचारियों के तर्क तथा कुर्तक विश्वासों को पहचाने। कार्यनिष्पादन में सुधार के लिए अवास्तविक (Unrealistic) विश्वासों को वास्तविक (Realistic) विश्वासों में बदले। हालांकि उन विश्वासों को जो व्यक्तिगत अथवा परिस्थितियों पर निर्भर हैं बदलना सहज है परन्तु उन विश्वासों की जो व्यक्ति की सांस्कृतिक धरोहर (Cultural Heritage) से पैदा होते है, बदलने में अधिक समय लगता है। इसलिए प्रबन्धन प्रणाली को कुर्तक विश्वासों का लगातार सुधार करना चाहिए, परन्तु उसे सांस्कृतिक धरोहर से उभरनेवाले विश्वासों पर ही आधारित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में भले ही टेक्नोलॉजी का आयात सम्भव हो परन्तु प्रबन्धन प्रणाली का नहीं जिसे स्थानीय मान्यताओं पर आधारित होना आवश्यक है तथा जिसको टेक्नोलोजी की आवश्यकताओं व लक्ष्यों के प्रति अनुकूल होना चाहिए।

संगठन में उदासीन कार्मिक

मानव स्वभाव से रचनात्मक जीव है हालांकि क्षमताएं भिन्न हो सकती हैं। कार्मिक उस समय उदासीन होने लगते हैं जब वे संगठन की प्राकृतिक न्याय प्रदान करने की क्षमता में विश्वास खो देते हैं। इसलिए प्रबन्धन प्रणाली को अवश्य ही ऐसी स्थिति से बचना चाहिए।

एक नई परिकल्पना की आवश्यकता :

विद्युत उत्पादन की अन्य तकनीकियों की अपेक्षा, नाभकीय ऊर्जा जटिल तथा गहन पूंजी युक्त तकनीक है जिसमें कई परस्पर विरोधी पहलूभि हैं। अत: इस तकनीक से मेल खाती प्रभावशाली प्रबन्धन प्रणाली को विकसित करने की स्वभाविक आवश्यकता महसूस हुई। कार्मिकों द्वारा इसे सहज ही ग्रहण करने को सुनिश्चित करने के लिए यह देखा गया कि यह प्रणाली प्रबन्धन के विभिन्न पहलुओं को समाकलित करते हुए प्रयोग की जा रही प्रणाली को बढ़ाते हुए ही बनाई जाए। पर्ट नेटवर्क्स नाभिकीय ऊर्जा के प्रारम्भ से ही उपयोग में लाए जा रहे हैं।

साधनों पर आधारित नेटवर्क :

परियोजना प्रबन्धन व मुख्य ठेकेदारों द्वारा जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा उनमें से कुछ इस प्रकार है;

(i) पर्ट के उपयोग के बावजूद विभिन्न स्तरों पर दिए गए कमिट मेन्टस् को बार बार बदलना , (ii) आर्थिक तथा अन्य साधनों का बार बार अभाव होना, तथा (iii) श्रमिकों में अशान्ति तथा श्रम - विवाद।

फूहड़ प्रबन्धन में देखे गए लक्षण

प्रबन्धन के तत्वों के गलत उपयोग से उत्पन्न होने वाले कुछ लक्षण यहां दिए जा रहे है; (i) कार्य समय पर न होना, अवास्तविक योजना, समन्वयन अथवा व्यक्तिगत कारणों से काफी विलम्ब (ii) कार्य का इस कारण न होना क्योंकि किसी ने भी जिम्मेदारी का निर्धारण न किया, न ही कार्यभार को समझा तथा स्वीकार किया। (iii) कुछ कार्मिकों पर लगातार कार्य का अधिक दबाब। (iv) दूसरों पर दोषारोप करने की प्रवृत्ति। (v) कार्मिकों तथा प्रबन्धन के बीच संचार का टूट जाना। (vi) कुण्ठा तथा मनमुटाव अप्रासंगिक विवादों की ओर ध्यानाकर्षण होना। (vii) कई संस्थाओं द्वारा एक ही कार्य को लगभग स्वतंत्र रूप से करना। (viii) 'प्रबन्धन का लम्बे समय से प्रतिक्रियाशील ढंग से कार्य करना। (ix) एक संकट से दूसरे सकंट पर अग्रसित होना तथा प्रत्येक दिन नई प्राथमित्ताएं निर्धारित करना। (x) मूल कार्मिकों का उपलब्ध न होना जिस से निर्णय लेने में अवरोध होना। (xi) कार्य को अग्रसर कराने के लिए जरूरत से ज्यादा वरिष्ठ प्रबन्धकों का शामिल होना। (xii) समय पर सूचना के अभाव में महत्वपूर्ण निर्णय न ले पाना। (xiii) साइट अधिकारियों के कार्य में अनुमोदन के स्तर को लेकर विध्न। (xiv) उपयुक्त साधनों का अभाव तथा अन्य ऐजेन्सियों द्वारा प्रदाय निवेश जैसे निपुण कार्मिक, माल, अभिकल्पन व सेवाएं आदि की कमी। (xv) इन्टर लिंक गतिविधियों के बीच परस्पर तालमेल न होना। (xvi) कारपोरेट सपोर्ट ग्रुप द्वारा परियोजनाओं की प्राथमित्ताओं के लिए साधन व कार्य पर अनावश्यक नियंत्रण तथा परियोजना प्रबन्धन ग्रुप को रिर्पोट आदि के कार्य पर अत्याधिक व्यस्त रखना जिस से वे अपने पूर्व सक्रिय स्वः अवलोकन से दूर रह जाते हैं। (xvii) साइट से प्राप्त होनेवाली समस्याओं पर ध्यान न देना जिस से कर्मचरियों का मनोबल गिरना तथा कार्य में भाग लेने की इच्छा न होना। (xviii)अधिक महत्वपूर्ण गतिविधियां बजट के अभाव में केवल इसलिए टाल दिया जाना क्योंकि धन अन्य अनावश्यक कार्यों पर व्यय कर दिया गया है। (xix) प्रबन्धन की नए विचारों व सुझावों केप्रतिउदासीनता (xx)निर्माण के दौरान अभिकल्पन में अनेक परिवर्तन। (xxi)एक ऐसी प्रणाली का अभाव जो सही आंकड़ो को एकत्र कर उन्हें आधुनिक बना सके ताकि वे सम्बन्धित प्रयोक्ताओं को समय पर आसानी से उपलब्ध हो सके। तथा परियोजना प्रबन्धन ग्रुप को रिर्पोट आदि के कार्य पर वे अत्याधिक व्यस्त रखना जिस से वे अपने पूर्व सक्रिय स्वः अवलोकन से दूर रह जाते हैं।

एक विगत परियोजना का अनुभव :

एक विगत परियोजना स्थल पर एमबेडेड् पार्टस, बड़े व्यास की पाइपें तथा विभिन्न प्रकार के संरचनाएं तथा सर्पोट के उत्पादन की जिम्मेदारी एक अकेली संस्था को दी गई थी। इन का निर्माण, संस्था को कांक्रीटिंग शेड्यूल के अनुसार करना था। कुछ समय तक कार्यप्रणाली सुचारू रुप से चलती रही परन्तु शीध्र ही इपीस में देरी के कारण कांक्रीटिंग पोरिंग रुकने से कठिनाई उत्पन्न होने लगी। क्राइसेस मैनेजमेन्ट के तहत संस्था ने अधिक ओवर टाईम देकर उत्पादन बढ़ाना चाहा ताकि शेड्यूल्स का पालन हो सके परन्तु फिर भी शेड्यूल खिसकता गया। इस के कारण मूल पोरिंग शेड्यूल को त्यागना पड़ा। ईपीस की अनियमित आपूर्ति के कारण प्राथमिकताएं बार बार बदलनी पड़ी तथा साथ ही उन ईपीस को जो उत्पादन लाइन में लगे थे हटाना पडा तथा नए इपीस को उत्पादन लाइन में लेना पड़ा।

इन सब अनियमित्ताओं के कारण कार्य-योजना में काफी उलझने पैदा हो गई तथा साथ ही उत्पादन मूल्य में बहुत वृद्धि हो गई। संस्था आर्थिक संकट के किनारे पहुंच गई। परिस्थितियों को और अधिक कठिन बनाने के लिए कमर्चारी संघ और अधिक परेशानियां उत्पन्न करने लगी जिस से उन्हे और अधिक ओवर-टाईम मिल सके।

यह समस्या एक लेखक को सौंप दी गई। उस संस्था के प्रबन्धन में निम्न कमियां देखी गई।

(i) स्वयं अपने उत्पादन मानको का न होना।

(ii) कार्य आवंटन का विशिष्ट न होना।

(iii) ओवर टाइम का उत्पादकता से मेल न खाना।

(iv) मानीटरिंग प्रणाली का पूर्णतया अभाव।

(v) कार्य योजना का सक्षमताओं के अनुकूल न होना।

(vi) कार्मिकों की विभिन्न श्रेणियों के बीच कोई निश्चित अनुपात बनाने का प्रयत्न न करना।

(vii) अस्पष्ट कार्मिक नीतियां।

(viii) विभिन्न अधिकारियों द्वारा अलग अलग कथन देना।

विश्लेषण : लेखक ने विगत चार मास के आंकडों का विश्लेषण किया।

(क) उत्पादन का मानकीकरण : पहला कार्य उत्पादन की मानक इकाइयों को निश्चित करना था क्योंकि फेब्रीकेशन के ठंग में बहुत अधिक विसंगतियां थी, जैसा कि बड़े व्यास के एक टन निर्माण में लगने वाला समय, एक टन के लिए उपकरण रैकों में लगने वाले समय के अनुपात में काफी कम था।

(ख) हेवी फेब्रीकेशन को मानक इकाई के रुप में अपनाया गया और उसी के आधार पर उत्पादन समतुल्य इकाई (प्रोडेक्शन इक्विवेलेन्ट यूनिट - पीईयू) निर्धारित किए गए जिस में तालिकानुसार वेटेज फेक्टर लिए गए हैं।

(ग) विभिन्न श्रेणियों में कर्मचारियों के अनुपात का लेखा जोखा भी बनाया गया जिससे भविष्य में तुलनात्मक अध्यन किया जा सके।

समाकलित परियोजना प्रबन्धन का प्रयोग

उत्पादकता को बढाने तथा कार्यविधि को कारगर बनाने के लिए निम्नलिखित परिवर्तन लाए गए :

(i) एकल बिन्दु उत्तर दायित्वता - हर एक ग्रुप को जिसका मुखिया फोरमेन को बनाया गया, सौंप दी गई। प्रत्येक ग्रुप भण्डार से माल लाने से लेकर उत्पादन की स्वीकृति तक उत्तरदायी बनाया गया।

(ii) (क) वर्तमान उत्पादकता की गणना के लिए प्रत्येक ग्रुप के मुखिया को सम्मलित किया गया।

(ख) कार्य योजना स्थापित करने के लिए सभी सुपरवाइज़रों को सम्मिलित किया गया।

(iii) हर ग्रुप की उत्पादकता को उपरोक्त मानक इकाईयों में मापा गया तथा कार्यशाला के श्याम पट पर सुस्पष्ट ठंग से दर्शाया गया जिस से कि सारे ग्रुप अपनी तथा अपने सापेक्ष अन्य ग्रुपों की कार्य निष्पादन क्षमता को आंक सके। इस से कार्मिकों के बीच स्वस्थ स्पर्धा उत्पन्न हुई।

(iv) हर ग्रुप को सभी प्रकार के फेब्रीकेशन का मिला जुला कार्य (विशिष्ट फेब्रीकेशन छोड़ कर) आंवटित किया गया तथा इसी आधार पर तीन महीने में मानव - शक्ति को व्यवस्थित कर दी जाती थी।

(v) उपरोक्त प्रणाली पर सभी कार्मिकों के साथ बहुत गहराई में विचार विमर्श किया गया और उनकी सहमति प्राप्त की गई। सैद्धान्तिक रुप से यह सहमति हुई कि कार्य कुशलता में सुधार आवश्यक है तथा उत्पादकता के मूल्य में गिरावट के बाद ही ओवर टाइम दिया जाए। ओवर टाइम महीनों के लिए रोक दिया गया ताकि कार्मिकों के स्वभाव में बदलाव आए तथा वे इस बात को भली भांति समझ जांए कि प्रबन्धन उपरोक्त सिद्धान्त पर हर स्थिति में अडिग रहेगा। उपरोक्त संशोधन से उत्पादकता में हुआ सुधार चित्र - 1 में दिखाया गया है।

उपलब्धियां

(i) उत्पादकता में मानव इकाई को अपनाने से तथा कार्य योजना को उपस्थित उत्पादकता स्तर पर आधारित करने से, सही कमिटमेन्टस दिए जा सके तथा उन्हें प्राप्त किया जा सका

(ii) चूंकि वेटेज विभिन्न प्रकार के फेब्रीकेशन में प्रयुक्त मानव शक्ति के आधार पर बनाए गए थे अत : विभिन्न ग्रुपों में शेष कार्य का आवंटन

(distribution) तथा मैनपावर को व्यवस्थित करना सम्भव हो सका।

(iii) पी इ यू को अपना कर मानीटरिंग प्रणाली लागू की जा सकी तथा प्रत्येक ग्रुप की दूसरे ग्रुपों के सापेक्ष कार्य कुशलता मापी जा सकी।

(iv) ओवर टाइम को उत्पादकता से जोड़ा जा सका।

(v) प्राकृतिक न्याय तथा निष्पक्षता की भावना पैदा की जा सकी।

(vi) कार्य कुशलता में सुधार भी आंका जा सका।

उपरोक्त प्रणाली अगली परियोजनाओं में न केवल एंमबैडेड् पार्टस के फेब्रीकेशन में बल्कि परियोजना के सारे स्ट्रकचरल स्टील फेब्रीकेशन में जो लगभग 8000 मेट्रिक टन है प्रभावशाली ढंग से लागू की गई तथा सभी सम्बंधित कार्य शेड्यूल्ड समय से लगभग आठ प्रतिशत विचरण के साथ सम्पूर्ण किए गए।

यही प्रणाली अन्य क्षेत्रा में भी जैसे कि पाईपिंग, एक्टिंग में यथोचित सफलता के साथ लागू की गई। इस उपार्जित सफलता से मिले प्रोत्साहन ने न्यूक्लियर पावर परियोजना में लागू करने योग्य समाकलित परियोजना प्रबन्ध प्रणाली के वर्तमान रुप विकसित करने में बड़ा योगदान दिया।

रिर्सोस बेस्ड नेटवर्क पर आधारित समाकलित परियोजना प्रबन्धन प्रणाली की नवीन संकल्पना

सूक्ष्म स्तर पर प्राप्त अनुभवों ने इस प्रणाली के विकास को प्रेरित किया। यह संकल्पना परियोजना प्रबन्धन के पहले

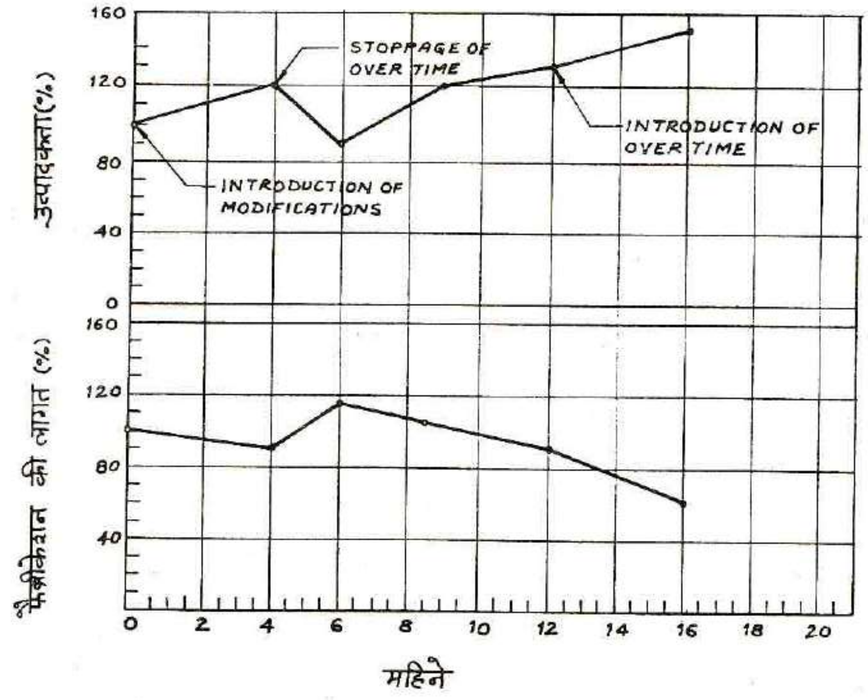

स्थापित किए गए उद्देश्यों की परिपूर्णता को सुनिश्चित करती है तथा प्रबन्धन के गुणों को प्रभावशाली ढंग से प्रयोग में लाती है। प्रणाली की रचना इस प्रकार है कि यह स्वयं ही चालू परियोजना में बचे कार्य के समय व लागत का सही प्रक्षेपण करती है तथा नई परियोजनाओं के लिए उनका सही सही आकलन करती हैं।

साधनों पर आधारित नेटवर्क

साधनों पर आधारित नेटवर्कों की रचना के लिए आंकडे प्राय: निम्न तीन में से किसी एक ढंग में उपलब्ध होते हैं:

(i) लेवल - 3 के आधार पर विस्तृत आंकडे।

(ii) लेवल - 1 पर आधारित मोटे तौर पर आंकडे।

(iii) लेवल - 1 पर आधारित समय के विस्तृत आंकड़े तथा लागत पर मोटे तौर पर आंकडे।

सामान्यत: यह देखा गया है कि हमारे देश में आंकड़े विकल्प (ii) के आधार पर उपलब्ध हैं। अत: प्रणाली को लेवल - 2 तथा -3 पर भी आंकड़े एकत्र करने चाहिए। यह भी देखा गया है कि केवल समय सम्बन्धित आंकड़े ही विश्वसनीय हैं।

लेवल - 1 से लेवल - 3 के साधनों पर आधारित नेट वर्कों की सरंचना के चरण

यदि लेवल - 3 पर विस्तृत आंकड़े उपलब्ध हैं तो इन आंकड़ो के आधार पर लेवल - 3 नेटवर्क सभी साधनो सहित बनाए जाते हैं। तत्पश्चात, कार्यकुशलता में थोड़ी वृद्धि मानते हुए लेवल - 2 तथा तत्पश्चात लेवल - 1 के नेटवर्कों की संरचना की जाती है।

लेवल - 1 नेटवर्क

पहला चरण: विगत अनुभवों पर आधारित गति विधियों की सूची तैयार करना, उन की सटीक परिभाषा देना तथा क्रांतिक पथ पर सही परस्पर सम्बन्धों को निर्धारित करना।

दूसरा चरण: सूची में दी गई गतिविधियों के लिए जो कार्यावधि अपनाई जायगी उस का निर्धारण करना।

तीसरा चरण: कारपोरेट योजना से आवश्यक निवेश जैसे भारी पानी तथा ईंधन की उपलब्धता की तिथि के अनुसार क्रिटिकल पथ खींचना चाहिए। इस में परियोजना रिर्पोट से प्रथम इकाई के व्यापारिक प्रचलन तक होना चाहिए। लम्बा समय लेनेवाले उपकरणों के लिए अग्रिम प्रबन्ध क्रिया स्थापित करनी चाहिए। साथ ही परियोजना स्थल पर कार्य के आरम्भ के समय आवश्यक संविरचना (इन्क्रास्ट्रक्चर) की आवश्यकताओं को निर्धारित करना चाहिए। ब्याज भार को न्यूनतम सुनिश्चित करने के लिए परियोजना कार्यान्वियन के प्रारम्भिक चरण में व्यय को न्यूनतम रखना आवश्यक है।

चौथा चरण : परियोजना की सभी गतिविधियों के लिए शेष नेटवर्क बातें ध्यान में रखकर पूर्ण करना चाहिए।

(i) सम्पूर्ण परियोजना गतिविधियों में इस प्रकार विभाजित कर दी जाए कि हर गति विधि एक विशेषता रहे ताकि उसे एक बिन्दु उत्तरदायित्वता के आधार पर किसी एक व्यक्ति विशेष अथवा ऐजेंसी को सौंपा जा सके तथा पी ई यू (उत्पादन समतुल्य इकाई) के आधार पर उसे मापा जा सके। लेवल - 1 में गतिविधियों की संख्या कंप्यूटर पर उपलब्ध सोफ्टवेयर के अनुसार होनी चाहिए। (न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन में सोफ्टवेयर के अनुसार यह संख्या 1300 है।)

(ii) अनुकूलतम अवधियां अपनानी चाहिए ताकि लागत न्यूनतम रहे। अर्थात नान - क्रिटिकल गतिविधियों का क्रिटिकल पथ पर आने की शंका निम्नतम रहे।

(iii) समानान्तर गतिविधियों को इस प्रकार नियोजित करना चाहिए कि परियोजना के प्रथम चरण में व्यय निम्नतम रहे तथा साथ ही साधनो की मांग को सम्पूर्ण परियोजना में बराबरी से एस चाप (एस - कर्व) में संतुलित कर दिया जाए।

पांचवा चरण:- प्रत्येक गतिविधि पर कुल लागत, मोटे तौर पर उपलब्ध पूर्व आंकड़ो के आधार पर निर्धारित कर देनी चाहिए।

छठा चरण: गतिविधियों के वर्ग की पहचान तथा स्थापना करना जिन्हें सुविज्ञता, कुल लागत तथा श्रम लागत के आधार पर व्यक्तियों अथवा ऐजेसियों को सोंपा जाना है।

सातवां चरणः लेवल - 1 नेटवर्क कार्यान्वयन दल को लेवल - 2 तथा लेवल - 3 के नेटवर्क बनाने के लिए सौंप दिया जाता है। सभी साधनो के विनियोजन सहित लेवल -1 नेटवर्क का समय बनाए रखा जाता है तथा लागत मार्ग-दर्शन के लिए ध्यान में रखी जाती है। लेवल - 1 की गतिविधियों के लेवल - 3 में विभाजन की संकल्पना चित्र - 2 में दर्शाई गई है। कार्यान्वयन दल लेवल - 3 पर प्रत्येक गतिविधि की साधनो का निर्धारण करने के लिए निम्न चरणों में अभ्यास करता है।

(i) श्रमिक लागत की गणना। मात्राओं की गणना पी ई यू में, मैन मंथ प्रति पी ई यू में तथा उत्पादकता स्तर प्रत्येक गतिविधि की श्रम लागत देते हैं। यह विगत अथवा मूल्यांकित आंकड़ों पर आधारित होता है। भविष्य में मानीटरिंग तथा पुनरावलोकन के लिए उपरोक्त आंकड़ों का, विभिन्न आवश्यक श्रमिकों के अनुपात सहित एक परफोरमा में अभिलेख कर दिया जाता है। प्रत्येक गतिविधि की श्रमिक लागत को अनुकूलतम बनाने के लिए श्रमिक लागत में मानव शक्ति, मशीनरी शुल्क तथा उपभोज्य की लागत सम्मिलित है।

(ii) शापिंग लिस्ट तथा अभिलेखित मात्राओं तथा मूल्य दर के आधार पर प्रत्येक गतिविधि के लिए माल की लागत निकाली जाती है।

(iii) लेवल - 2 तथा लेवल - 1 पर साधनों की गणना कर दी जाती है। नान क्रिटिकल गतिविधियों को समायोजित कर दिया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि (क) साधनो का लेवल - 1 पर बराबर सतुंलन हो गया है।, (ख) क्रिटिकल पथ प्रभावित नहीं हुआ है तथा, (ग) परियोजना के पहले चरण में व्यय निम्नतम् है।

आठवां चरणः परियोजना की कुल लागत लेवल-1 पर सभी गतिविधियों का कुल योग तथा ऊपरी व्यय है।

नवा चरणः अब लेवल -1 से लेवल -3 नेटवर्क निम्न सूचनाओं सहित उपलब्ध है; (i) समय (ii) हर स्तर पर गतिविधियों के लिए उत्तर दायी - व्यक्ति विशेष/ऐजेंसी, (iii) कुल लागत, (iv) मशीनरी, तथा (v) माल।

दसवा चरण :

(i) वार्षिक मानव शक्ति तथा रोकड़ प्रवाह की उत्पत्ति की जाती है जिसे कारपोरेट प्लान में समाविष्ट कर दिया जाता है।

(ii) क्रय - आदेश तथा क्रय-आदेश शेड्यूल्स तैयार कर लिए जाते हैं।

(iii) सगंठन के ढ़ांचे का पुनरावलोकन कर से अन्तिम रूप दे दिया जाता है।

मानीटरिंग प्रणालीः

प्रभावशाली मानीटरिंग प्रणाली के गुण :-

(i) भौतिक तथा वाणिज्य प्रगति में सह-सम्बन्ध के सक्षम होना।

(ii) प्रमुख साधनों सहित नेटवर्क में प्रयुक्त आकड़ों के सहसम्बन्ध के सक्षम होना तथा प्रवणता को सुनिश्चित करने के सक्षम होना ताकि मध्यावधि सुधार तथा सही प्रक्षेपण किए जा सकें।

(iii) उपलब्ध सोफ्टवेयर से साथ कंप्यूटर पर प्रयोक्ताओं के लिए आसान होना

(iv) कार्मिकों तथा ऐजेंसियों की कार्य निष्पादन के मूल्यांकन के सक्षम होना।

संकल्पना :

चूंकि श्रम लागत व्यय की दर का मुख्य घटक है जो समय निर्धारित करता है, अतएव भौतिक प्रगति का मूल्यांकन श्रम लागत पर आधारित है। इस के अतिरिक्त मैन मंथ तथा मशीनरी मंथ की तुलना में श्रमिक लागत को भौतिक तथा वित्त प्रगति से सम्बन्धित करना अधिक आसान काम है जैसा कि आगे बताया गया है।

पद्धति

मानीटरिंग प्रणाली को विकसित करने में निम्न मूल चरण हैं(i) नेटवर्क बनाना, (ii) श्रमिक तथा कुल लागत की

गणना, (iii) कार्य घटकों के लिए वेटेज का निर्धारण (iv) प्रबन्धन प्रणाली का अभिकल्पन (v) प्रणाली - अभिकल्पन तथा सोफ्टवेयर का विकास।

(i) तथा (ii) के बारे में पहले जानकारी दी जा चुकी है।

कार्य घटकों के लिए वेटेज का निर्धारण

भौतिक गति को मापने के लिए, लेवल - 1 पर किसी गतिविधि की श्रमिक लागत सभी गतिविधियों की कुल लागत का प्रतिशत, वेटेज होता है। जैसा पहले बताया गया है लेवल-1पर प्रत्येक गतिविधि लेवल -2 की गतिविधियों मे विधटित की जाती है। मूल गति - विधि को अपने आप में एक परियोजना माना जाता है तथा लेवल -2 पर वेटेज मूल गति विधि के अनुसार र्निधारित किया जाता है। इस का समस्त वेटेज मूल गतिविधि के, सम्पूर्ण परियोजना के प्रति, वेटेज से गुणा करने से प्राप्त किया जाता है। यही संकल्पना लेवल-3 पर अग्रसित की जाती है।

प्रबन्धन सूचना प्रणाली की परिकल्पना

पुनरावलोकन को सम्भव बनाने के लिए कार्यान्वयन के समय सूचना ठीक उसी ढ़ंग से एकत्र करनी चाहिए जिस के आधार पर रिर्सोस बेस्ड नेटवर्क बनाते समय साधनों तथा वेटेज का निर्धारण हुआ है।

प्रणाली की परिकल्पना तथा सोफ्टवेयर का विकास

इस का आधार आसानी से उपलब्ध तथा सस्ते पड़ने वाले कम्प्यूटरों के प्रयोग पर होना चाहिए। देश में विकसित सोफ्टवेयर लेवल-2 उप-परियोजनाओं के क्षैतिज पारिस्पारिक क्रियाओं के सक्षम नही है, इसलिए 'परियोजना में परियोजना' की संकल्पना का प्रयोग आवश्यक है।

मूल्यांकन तथा पुनरावलोकन:

भौतिक प्रगति का मापन

एक रिपोर्ट की उत्पत्ति की जाती है जिस में प्रतिदिन प्रयुक्त श्रेणी-अनुसार मानव शक्ति (मैन पावर) तथा साप्ताहिक अथवा गतिविधि समाप्त होने पर कार्य सम्पादन की मात्रा दी जाती है ताकि लेवल-3 पर प्रत्येक गतिविधि की उत्पादकता निश्चित की जा सके। यदि आवश्यक हो तो लेवल- 3 पर उत्पादकता तथा कार्य के दर में सुधार के लिए कार्यावाही भी की जाती है। लेवल -3 पर सम्पादित गतिविधियों के लिए वास्तिविक श्रमिक लागत की गणना करली जाती है। इसके अलावा ग्रुप गति विधियों की वास्तिविक श्रम लागत का योग जो लेवल-2 पर किसी गति विधि का भाग है, उस गतिविधि की श्रम लागत बताते हैं। इसी प्रकार लेवल-2 की गतिविधियों की गणना लेवल-1 पर श्रम लागत बताता है। निर्धारित वेटेज कुल परियोजना की प्रतिशतता के आधार पर गतिविधि की भौतिक प्रगति देते हैं।

कुल लागत का मापन:

विभिन्न ऐजेंसियों से प्राप्त विवरणों के आधार पर लेवल-1 पर गतिविधियों की कुल लागत की अलग से गणना कर ली जाती है। यह देखा गया है कि व्यय को खाते में चढ़ाने में लगभग 2 से 3 मास का अन्तर है अत: इस अन्तर का शेड्यूल्ड लागत की तुलना में वास्तिविक व्यय की गणना के समय ध्यान रखना चाहिए।.

परियोजना में समय तथा लागत का विश्लेषण व नियंत्रण

विश्लेषण की आवृत्ति : लघु- यह त्रैमासिक किया जाना चाहिए ताकि समय का नियंत्रण हो सके तथा विलम्ब के स्रोतों का पता लगाया जा सके कि क्या कोई गतिविधि सकंट में है या कोई विभागीय समस्या बहुत सी गतिविधियों की प्रभावित कर रही है। लॉजिक में तथा कोई भी क्रान्तिकारी परिवर्तन का निर्णय त्रैमासिक पुनरावलोकन में उस समय तक नही लेना चाहिए जब तक प्रवणता बिल्कुल स्पष्ट तथा निश्चित न पायी जाए। समय तथा लागत के नियंत्रण व सुधार कार्यवाही के लिए तथा समय व लागत के फैलाव की प्रवणता स्थापित करने के लिए यह वार्षिक विश्लेषण किया जाना चाहिए। बजट आवश्यकताओं में कोई भी, लॉजिक अथवा क्रान्तिकारी परिवर्तन इसी वार्षिक विश्लेषण व पुनरावलोकन पर आधारित होने चाहिए।

मूल्यांकन तथा विश्लेषण की पद्धति :

इस के निम्न उद्देश्य है:

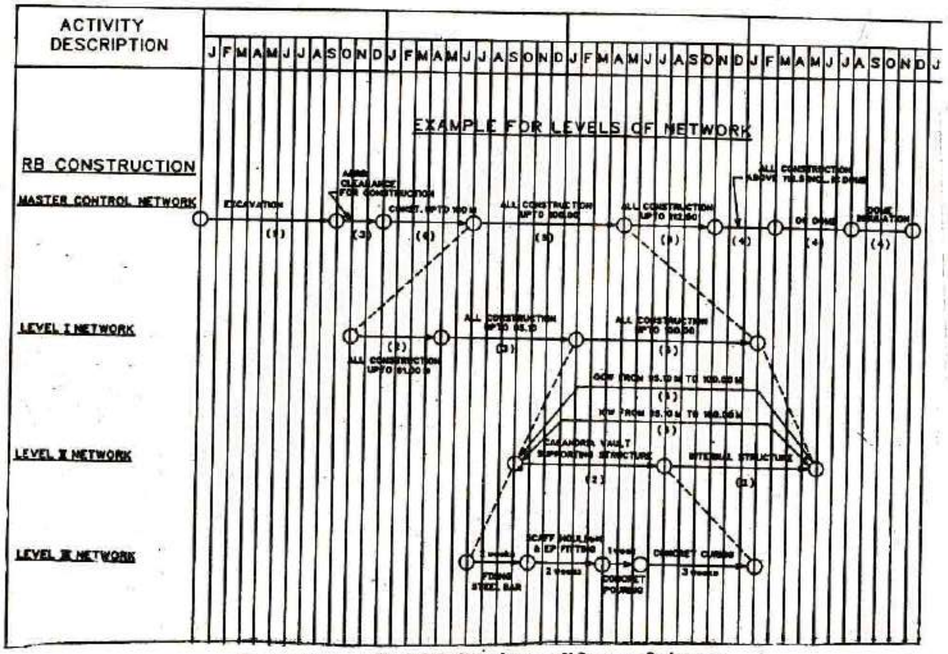

चित्र - 2 लेवल - 1 की गतिविधियों का लेवल -3 में विभाजन की संकल्पना

(i) वास्तविक तथा शेड्यूल्ड समय व लागत की तुलना करना।

(ii) भौतिक तथा वित्तीय प्रगति में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना।

(iii) प्रस्तावित सुधार क्रियाओं के लिए विस्तृत छान बीन की आवश्यकता का निर्धारण करना।

(iv) प्रवणता निर्धारित करना व भविष्य योजना के लिए समय व लागत का पूर्वानुमान करना।

लेखा चित्रीय प्रदर्शन :

समय (श्रमिक लागत) तथा कुल लागत का प्रदर्शन:

चित्र - 3 में शेड्यूल्ड तथा कुल वास्तिविक लागत तथा शेड्यूल्ड व वास्तिविक श्रमिक लागत का प्रतिनिधिक प्रदर्शन दिया है। वास्तिविक भौतिक प्रगति के रेखा चित्र पर किसी दिए गए बिन्दु 'A' से एक क्षैतिज रेखा खींचिए जो शेड्यूल्ड भौतिक प्रगति के रेखा - चित्र के बिन्दु B पर मिलता है। बिन्दु 'B' से एक लम्बवृत रेखा खींचिए जो शेड्यूल्ड व्यय के रेखा चित्र पर 'C' पर मिलता है। तत्पश्चात बिन्दु 'C' से एक क्षैतिज रेखा खींचिए जो बिन्दु 'A' से खींची गई लम्बवृत रेखाओं को बिन्दु 'D' पर काटती है।

भौतिक तथा वित्तीय प्रगति में परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार से देखे जा सकते हैं। यदि बिन्दु 'D' वास्तिविक व्यय रेखा चित्र पर है तब भौतिक तथा वित्तीय प्रगति बिना किसी विचलन के है। यदि बिन्दु 'D' वास्तिविक व्यय रेखा चित्र से ऊपर है तब इन के परस्पर सम्बन्ध अनुकूल हैं अर्थात भौतिक प्रगति उसके निर्धारित बजट से कम व्यय पर प्राप्त कर ली गई है। यदि बिन्दु 'D' वास्तिविक व्यय रेखाचित्र से नीचे है तब यह सम्बन्ध प्रतिकूल हैं अर्थात भौतिक प्रगति को प्राप्त करने के लिए उसके बजट से अधिक व्यय हुआ है। यदि उपरोक्त ढंग से प्राप्त भौतिक व वित्तीय प्रगति के

परस्पर सम्बन्धों में 5 प्रतिशत से अधिक विचलन पाया जाए वो इसकी छान बीन व पुनरावलोकन आवश्यक हैं।

प्रतिशतता समय फैलाव का लेखा चित्रीय प्रदर्शन सम्पूरित परियोजना की प्रक्षेपित लागत की प्रवणता निर्धारित करने के लिए प्रतिशतता लागत फैलाव का चित्रीय प्रदर्शन बनाना चाहिए जिसे चित्र -3 के आधार पर तैयार किया जा सकता है। महीनो में समय फैलाव का लेखा चित्रीय प्रदर्शन परियोजना समापन तिथि के प्रक्षेपण की प्रवणता निर्धारित करने के लिए महीनों में समय फैलाव का ग्राफीय प्रदर्श आवश्यक होता है।

इसी प्रकार का लेवल -2 पर अभ्यास उन अधिकारियों द्वारा भी किया जा सकता जो गतिविधियों के ग्रुप के लिए उत्तरदायी हैं।

कार्य निष्पादन की उत्पत्तित रिर्पोटें सभी सम्बन्धित व्यक्तिओं को दी जाती हैं ताकि वे स्वयं अपनी व दूसरों के सापेक्ष अपनी कार्य निष्पादन क्षमता जान सकें तथा यदि आवश्यक हो तो सुधार के लिए पहल कर सकें।

संक्षेप में समाकलित परियोजना प्रबन्धन को अपना कर निम्नलिखित क्षेत्रों को विशेष बल दिया जा सकता है।

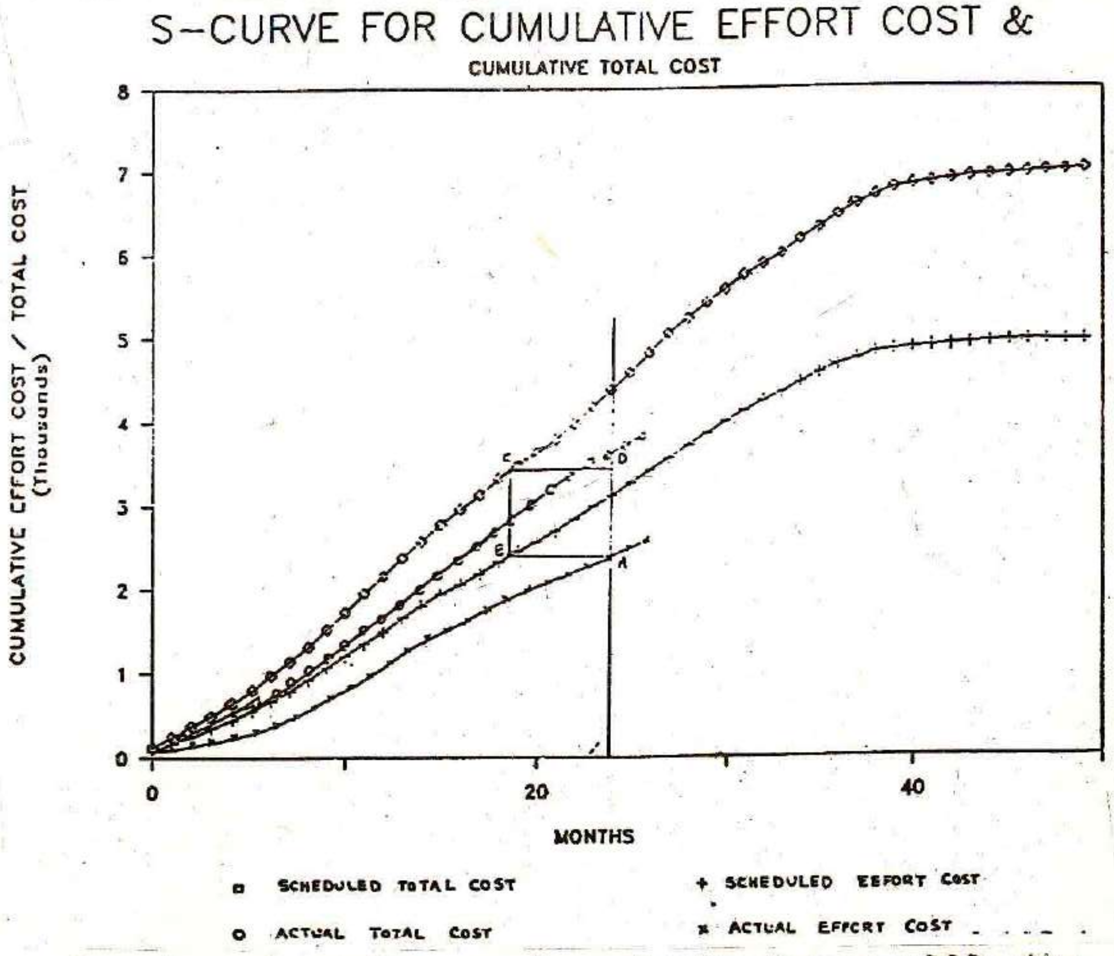

चित्र - 3 शैड्यूल्ड एवं कुल वास्तविक लागत तथा शैड्यूल्ड एवं वास्ताविक श्रमिक लागत का प्रतिनिधिक संबंध

सभी साधनों का इष्टतम उपयोग विशेष कर मानव का जिसमें उपलब्धि की अनुभूति जागृत कर प्रेरित रखा जा सकता है। साथ ही उन में प्राकृतिक न्याय की आशा बनी रहती है क्योंकि सभी की कार्य कुशलता का खुला विवरण सभी के पास रहता है। भौतिक प्रगति को संख्याओं में बांधा जा सकता है क्योंकि प्रत्येक गतिविधि को अब उचित इकाईयों में परिभाषित किया जाना सम्भव है। उचित सूचकों की सहायता से इसे व वित्तीय प्रगति को माप जा सकता है और आपस में सम्बन्धित भी किया जा सकता है। आंकड़े इकट्ठा करने का एक दम सरल ढंग अपनाया जा सकता है। इस के आधार पर अपने आकलन को आधुनिक बनाया जा सकता है तथा सब की कार्य निष्पादन क्षमता को आंका जा सकता है।

सुझाव

भविष्य में इस प्रणाली से प्राप्त अनुभवों के अनुसार कई सुधार भी किए जा सकते हैं। यह देखा गया है कि सांस्कृतिक धरोहर के रुप में जो भी विश्वास हमें मिलते हैं उनमें बदलाव एकदम से नही लाया जा सकता। इस विविधता पूर्ण देश में तकनीकियां तो विदेशों से आयातित की जा सकती है परन्तु जहां तक प्रबन्धन प्रणाली का सवाल है उसे न तो आयात ही किया जा सकता है और न ही उसे जनता पर बाहर से थोपा जा सकता है। मानव मूल्यों जो परम्पराओं पर आधारित होते हैं, ध्यान में रखकर ही प्रणाली को विकसित करना होता है। इस के लिए आवश्यक है कि इस विषय में और अधिक अनुसंधान किया जाए और उसके अनुसार प्रबन्धन प्रणाली में सुधार किए जाएं। विभिन्न तकनीकों के लिए उत्पादकता स्तर का मापदण्ड अलग अलग होती है अत: जब कोई तकनीक अपनाई जाए तब उसके माप दण्ड भी उसी के आधार पर निश्चित किए जाए। साथ ही स्थानीय वातावरण को भी ध्यान में रखा जाए। इस सब के लिए विशेष आंकड़े एकत्र करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

तकनीक का चयन करते समय सामाजिक आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। केवल वही पद्धति व साधन प्रयोग में लाए जाएं जो सार्वजनिक रुप से मान्य हों। मानव शक्ति का चयन व उपयोग इसी आधार पर किया जाए।

■

परमाणु बिजलीघर - पुरानी, वर्तमान और भावी परियोजनाएं

जी. आर. श्रीनिवासन
मुख्य अभियंता (कमीशनिंग)
न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन बम्बई

भारत कुछ ऐसे देशों में से है जिन्होंने नाभिकीय चक्र के विभिन्न पहलुओं में दक्षता प्राप्त कर ली है। इनमें नाभिकीय ईंधन व भारी पानी के उत्पादन से लेकर विद्युत उत्पादन ईंधन पुनर्संसाधन रेडियोधर्मी अपशिष्ट प्रबन्धन व डीकमीशनिंग प्रक्रिया सम्मिलित हैं। इसका सम्पूर्ण श्रेय भारतीय स्वदेशी प्रयत्नों को है। परमाणु बिजलीघरों के अभिकल्पन, कमीशनिंग व संचालन में हमनें दक्षता प्राप्त कर ली सुरक्षा व प्रर्यावरण संरक्षण के पहलुओं पर भी विशेष ध्यान रखा गया है।

विकसित देशों की अपेक्षा भारत जैसे विकासशील देश में ऊर्जा की आवश्यकता तेजी से बढ़ रही है। भारत में विद्युत उत्पादन में वृद्धि होने के बावजूद प्रति व्यक्ति विद्युत खपत बहुत कम है। हमारी जनता को और अधिक मात्रा में बिजली उपलब्ध करायी जानी चाहिए ताकि कृषि क्षेत्र व उत्पादन में वृद्धि व निर्माण तथा खनिज क्षेत्रों में उन्नति हो सके और इस प्रकार उनके रहन सहन के स्तर में उन्नति के द्वार खुले सकें। कोयले के भंडार पूर्व क्षेत्र में ही केन्द्रित हैं। यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत में विभिन्न स्रोतों का संतुलित मिश्रण कार्यान्वित किया जाए। ताप, पन व अन्य गैर परम्परागत स्रोतों के साथ परमाणु ऊर्जा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर सकने में समर्थ व सक्षम है। कोयले व तेल के दहन से ग्रीन हाउस प्रभाव, अम्लीय वर्षा व अन्य हानिकारक गैसों के साथ वातावरण का तापमान बढ़ना पर्यावरण प्रदूषण फैलाने के कारण चिन्ता का विषय हैं। इनकी तुलना में परमाणु बिजलीघर सुरक्षित व प्रदूषण रहित है। विश्व में अनेकों देश परमाणु शक्ति द्वारा विद्युत उत्पादन कर रहे हैं। यह महसूस किया जा रहा है कि भारत को भी परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में अग्रणीय होना चाहिए जो विद्युत उत्पादन के लिए स्वच्छ हानिरहित व सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। यह भी याद रखना चाहिए कि सम्पूर्ण स्वदेशी प्रयत्नों के कारण यह विकसित व अग्रणीय तकनीक है व विकास को बनाए रखने व सफलता प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न, समझ व सहयोग की आवश्यकता है।

डॉ. भाभा ने चार दशक पूर्व तीन चरणों में नाभिकीय कार्यक्रम की योजना बनायी थी। उनका दृष्टिकोण आज भी खरा सत्य है व इसे साकार करने के प्रयत्न चल रहे हैं। भारत भाग्यशाली देश है जिसके पास थोरियम के विशाल भंडार हैं तीन चरणों का कार्यक्रम इसी थोरियम के सदुपयोग करने के लिए बनाया गया है। भारत ने दाबित भारी पानी वाले रिएक्टर इसलिए चुने हैं क्योंकि इनमें यूरेनियम का अधिकतम उपयोग, सुरक्षा व स्वदेशीकरण की क्षमता है। यह प्रथम चरण है व विकसित अवस्था में है। द्वितीय व तृतीय चरणों के लिए भी कार्य प्रारंभ कर दिया गया है। सुरक्षा व पर्यावरण - संरक्षण के पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। नए अनुसंधान व विकास को भी लक्ष्य रखा गया है व इन क्षेत्रों में भी कार्य हो रहा है। अब तक की सफलता के कीर्तिमानों से यह स्पष्ट है कि परमाणु ऊर्जा विभाग ने दक्षता प्राप्त करली है व इक्कीसवीं शताब्दी में परमाणु क्षेत्र में भारत महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम व समर्थ हो सकेगा।

भारत कुछ ऐसे देशों में से है जिसने नाभिकीय चक्र के विभिन्न पहलुओं में दक्षता प्राप्त कर ली है। इनमें नाभिकीय ईंधन व भारी पानी के उत्पादन से लेकर विद्युत उत्पादन तक तथा ईंधन पुनर्संसाधन रेडियोएक्टिव. अपशिष्ट प्रबंधन व डीकमीशनिंग प्रक्रिया के क्षेत्रों तक सम्मिलित है। इसका सम्पूर्ण श्रेय भारतीय स्वदेशी प्रयत्नों को है। परमाणु बिजलीघरों के अभिकल्पन, कमीशनिंग व प्रचालन में हमने दक्षता प्राप्त कर ली है। संरक्षा व पर्यावरण संरक्षण के पहलुओं पर भी विशेष ध्यान रखा गया है।

हमको बिजली की आवश्यकता क्यों होती है?

विकसित देशों की अपेक्षा भारत जैसे विकासशील देश में ऊर्जा की आवश्यकता तेजी से बढ़ रही है। ऐसा विकास की प्रक्रिया में ऊर्जा की आवश्यकता के कारण है। पिछले दशक 1980-89 में वार्षिक चक्रवर्ती बढ़ोत्तरी की दर लगभग 9% रही है और 1980-81 में 12.6% रही जो घटकर 1989 में लगभग 7% रह गई है। प्रभावशाली बढ़ोत्तरी की दर होने के उपरांत भी भारत की प्रति व्यक्ति वार्षिक विद्युत खपत केवल 200 किलोवाट घंटा रही है, जबकि यही खपत अमेरिका में लगभग 10,000 किलोवाट घंटा है तथा अधिकांश यूरोपीय देशों में यह लगभग 5,000 किलोवाट घंटा से अधिक है। वर्ष 1988 के दौरान प्रति व्यक्ति बिजली की खपत तथा वर्ष 2000 में विश्व के विभिन्न भागों में होने वाली इस खपत का ब्यौरा तालिका - 1 मे दिया गया है।

उपर्युक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि हमारी जनता को और अधिक मात्रा में बिजली उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि उनके रहन - सहन का स्तर, कृषि के क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि, निर्माण व खनिज उत्पादन क्षेत्रों में उन्नति हो सके और इस प्रकार उनके रहन - सहन के स्तर में उन्नति के द्वार खुल सकें।

विश्व अभिदृश्य - नाभिकीय बिजली एवं अन्य स्रोत

जून, 1992 तक विश्व के 29 देशों में 421 नाभिकीय विद्युत रिएक्टर प्रचालित हैं जिनकी कुल उत्पादन क्षमता 3,26831 मेगावाट है 76 और रिएक्टर बनाए जा रहे हैं। वर्ष 1991 के दौरान इन रिएक्टरों ने, विश्व की बिजली आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, 17.1% बिजली उपलब्ध कराई। कुछ देशों में वर्ष 1991 के दौरान विद्युत का नाभिकीय योगदान तालिका - 2 मे दिया गया है।

तालिका - 1

प्रति व्यक्ति वार्षिक बिजली की खपत (किलोवाट घंटो में)

देश	खपत (वर्ष 1988)	खपत (वर्ष 2,000)
उत्तरी अमेरिका	11900	14700 से 16500
लेटिन अमेरिका	1300	2100 से 2500
पश्चिमी यूरोपीय देश	5000	6200 से 6700
पूर्वी यूरोपीय देश	5300	7300 से 8000
अफ्रीका	500	700 से 800
मध्य पूर्वी एशिया तथा पेसिफिक	300	600 से 700
दक्षिणी पूर्वी एशिया तथा पेसिफिक	900	1100
दूरस्थ पूर्व	1100	1500 से 1700
विश्व का औसत	2100	2600 से 2900

तालिका - 2

विश्व के देशों में वर्ष 1991 के दौरान नाभिकीय ऊर्जा का योगदान

देश	नाभिकीय विद्युत उत्पादन (%)	देश	नाभिकीय विद्युत उत्पादन (%)
बेल्जियम	60	कोरिया गणराज्य	50
बुल्गारिया	34	स्पेन	38
कनाडा	16	स्वीडन	45
चेकोस्लोवाकिया	28	स्वीट्जरलैंड	40
फिनलैण्ड	33	इंग्लैण्ड	21
फ्रांस	75	अमेरिका	21
जर्मन गणराज्य	34	सोवियत रूस	13
ताइवान	35	अर्जेटिना	20
जापान	27	मेक्सिको	3.6
		भारत	2.5

वर्ष 1991 के दौरान विश्व की कुल बिजली आवश्यकताओं की पूर्ति में पन-बिजली का योगदान 19.77% रहा तथा ठोस जीवाश्नीय ईंधन, द्रव एवं गैसों ने 62.8% का योगदान दिया है।

वर्ष 1991 में उपर्युक्त आंकड़ों की तुलना में भारत में नाभिकीय विद्युत का योगदान लगभग 2.5% रहा जबकि शेष बिजली ताप एवं जल विद्युत स्रोतों के माध्यम से प्राप्त की गई। विश्व के कुछ विकसित देशों में हालांकि न्यूक्लियर विद्युत की उत्पादन दर में कमी आई है परन्तु फिर भी उपर्युक्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नाभिकीय विद्युत का काफी उत्पादन हुआ है। कुछ देशों में नाभिकीय विद्युत की उत्पादन दर में हुई कमी को इस संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए कि उनकी प्रति व्यक्ति विद्युत खपत काफी अधिक है अपनी विद्युत आवश्यकताओं और अधिकांश विकसित देश पूर्ति के लिए आत्मनिर्भर व सुविधाजनक परिस्थितियों में हैं। वस्तुतः ताप तथा जल सहित सभी विद्युत संयंत्रों में कमी आई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा ऐजेन्सी द्वारा विश्व में नाभिकीय विद्युत उत्पादन क्षमता तालिका-३ में दर्शायी गई है जिससे पता चलता है कि सन 2005 से नाभिकीय विद्युत का भाग 17% होगा।

भारत में ऊर्जा

जुलाई 89 में भारत में विद्युत की कुल स्थापित क्षमता लगभग 59150 मेगावाट थी जिसमें लगभग 40240 मेगावाट तापीय विद्युत, 17680 मेगावाट पन बिजली तथा 1230 मेगावाट नाभिकीय विद्युत रही। ताप विद्युत, पन बिजली तथा नाभिकीय बिजली का योगदान क्रमश 68.00%, 29.90%, 2.1% रहा। हालांकि साठ के दशक में पन बिजली का अंश सबसे अधिक (45.7%) रहा परंतु अब ताप विद्युत का योगदान अधिक हो गया है। वर्तमान में कुल स्थापित क्षमता तथा भविष्य के अनुमानित आंकड़े तालिका-4 में दिए गये हैं।

तालिका - 3

अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के अनुसार विश्व में स्थापित विद्युत क्षमता (गीगा वाट में)

वर्ष		कुल स्थापित क्षमता	स्थापित नाभिकीय क्षमता	नाभिकीय क्षमता का %	नाभिकीय विद्युत का %
1988		2626	310.8	11.8	17.1
1995	न्यूनतम	3293	377.0	11.0	17.0
	उच्चतम	3558	383.0	11.0	16.0
2000	न्यूनतम	3812	431.0	11.0	17.0
	उच्चतम	4285	467.0	11.0	17.0
2005	न्यूनतम	4316	488.0	11.0	17.0
	उच्चतम	5040	569.0	11.0	17.0

तालिका - 4

भारत में कुल स्थापित क्षमता (मेगावाट में)

काल	कुल	पन बिजली	तापीय विद्युत	न्यूक्लियर विद्युत
मार्च 1992 तक	66210	18753	45737	1720
8 वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक	98311	25999	70142	2170
9 वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक	162846	52106	101690	9050

हमारे देश में कोयले के लगभग 75% भण्डार पूर्वी राज्यों यथा - बिहार, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा के क्षेत्रों में केंद्रित हैं। इसी प्रकार लगभग 74% पन बिजली के केन्द्र उत्तरी तथा उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में स्थित है जिनकी पुष्टि तालिका-5 से होती है।

बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बिजली विकास की उन्नति में निम्नवत कार्य करना होगा।

1. कोयले से प्राप्त तापीय विद्युत - कोयले की खदानों के पास तथा आवश्यकनुसार उनसे दूर भी।
2. जल विद्युत - वे स्थान जहां पानी उपलब्ध है।
3. नाभिकीय - कोयले की खदानों से दूर
4. गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत - विकेन्द्रीकृत आवश्यकताओं के लिए
5. बिजली की खपत को कम करने के लिए ऊर्जा संरक्षण उपायों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

तालिका - 5

देश के विभिन्न क्षेत्रों में कोयले के भंडार एवं पन बिजली उत्पादन

(1987 का आकलन)

क्षेत्र	कोयले के भंडार (10 लाख टनों में)	पन बिजली मेगावाट (60% लोड पोस्टर पर)
उत्तरी क्षेत्र	--	30155
पश्चिमी क्षेत्र	28932	5679
दक्षिणी क्षेत्र	9462	10763
पूर्वी क्षेत्र	119229	5590
उत्तरी पूर्वी क्षेत्र	841	31857
	158464	84044

तापीय ऊर्जा के विकास के लिए ताप विद्युत घरों को सदैव कोयले की खदानों के पास स्थापित करना संभव नहीं हो सकता है। क्योंकि इसके लिए भूमि तथा जल की उपलब्धता में कठिनाई हो सकती है तथा साथ ही साथ इससे उत्पन्न कार्बन डाईआक्साइड को भी एक निश्चित मात्रा में नहीं रखा जा सकता है। अतः तापीय विद्युत के विकास के लिए कोयले की खदानों से दूर स्थित स्थानों के बारे में भी विचार करना आवश्यक है। हालांकि इसके साथ भी कोयले की खदानों से बिजलीघरों तक कोयले के ढोने की कठिनाइयां आएंगी। भविष्य में बिजली उत्पादन के लिए हमें कार्बन डाईऑक्साइड के विमोचन तथा ग्रीन हाउस के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए कम से कम मात्रा में कोयला जलाने के प्रयत्न करने होंगे। इस संदर्भ में कोयले की खदानों से दूर स्थित स्थानों पर बिजली के उत्पादन के स्रोतों के पूरक के रूप में नाभिकीय ऊर्जा का सहयोग लेना होगा।

इस प्रकार इतने सारे वर्तमान दबावों के बावजूद भी दोनों स्रोत यथा - कोयला तथा पानी, देश में विद्युत उत्पादन क्षमता के बड़े स्रोत बने रहेंगे। सन 1960 के दशक में पन बिजली का योगदान 45.7% था जो अब घटकर 3% रह गया है। पन बिजली की क्षमता में यह गिरावट योजनाओं के देर से क्रियान्वित होने तथा जंगलों के डूब जाने जैसे पर्यावरणीय कारणों से हुई है। जबकि तुलनात्मक रुप से ताप बिजली का विकास तेजी से हुआ है क्योंकि ये परियोजनाएं कम अवधि में पूरी हुई हैं। नाभिकीय स्वदेशी प्रौद्योगिकी के विकास से जुड़ी कठिनाइयों के कारण विद्युत की क्षमता कम रही।

हम भारत में नाभिकीय ऊर्जा का विकास क्यों करना चाहते है?

1. ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण प्रदूषण और व्यापक तापन की समस्याओं ने कोयला और तेल जलाकर विद्युत उत्पादन करने के मामले पर बहुत से सवालों को उठाया है। विश्व के अनेक देश अन्य स्रोतों के दोहन के साथ - साथ विद्युत की पूर्ति करने के लिए न्यूक्लियर ऊर्जा का प्रयोग कर रहे हैं। यह महसूस किया गया कि भारत

को न्यूक्लियर विद्युत को महत्व देना चाहिए जो ऊर्जा का सबसे अधिक निर्मल और उपयोगी स्रोत है। यह उल्लेखनीय है कि बड़े ताप बिजलीघरों की चिमनियों से निकलने वाली रेडियोएक्टिवता न्यूक्लियर बिजलीघरों की तुलना में अधिक होती है।

2. भारत के पास थोरियम के विस्तृत भंडार हैं, जो 300 वर्षों के लिए 300,000 मेगावाट विद्युत उत्पादन करने में सहायक हो सकते हैं।

3. नाभिकीय ऊर्जा आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य है (तालिका-6)

4. ज्ञात ऊर्जा संसाधनों में केवल न्यूक्लियर ईंधन ही हमें अगली कुछ शताब्दियों तक बिजली दे सकता है। (तालिका - 7)

यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह एक अग्रणी टेक्नोलाजी है और विभिन्न कारणों से इसे पूर्णतः देशज प्रयास बनाया गया है। इसलिए इसके विकास को बनाए रखने तथा इसकी सफलता के लिए राष्ट्रीय प्रयास, सोच और प्रोत्साहन की आवश्यकता होगी। मैं यह पूछना चाहूँगा कि कितनी अग्रणीय प्रौद्योगिकियों का 90% तक देशीकरण हो चुका है, जो भारतीय न्यूक्लियर उद्योग ने प्राप्त किया है?

तालिका - 6

1988 में बिजली उत्पादन की की तुलनात्मक लागत	(पैसे प्रति यूनिट)
तापविघ	43.47
रापबिघ	44.48
मपबिघ	50.84
बदरपुर (भार केंद्र)	80.38
सिंगरौली (पिट हैड)	40.46
कोटा ताप	76.05
तूतीकोरिन	61.55
नेवैली (पिट हैड)	53.00
एनमोर	60.03

भारतीय न्यूक्लियर ऊर्जा की योजना, रुपरेखा और विकास

डॉ. भाभा ने करीब चार दशक पूर्व ही तीन चरणीय कार्यक्रम बनाया था (चित्र - 1)। यह उनके दृष्टिकोण का मापदण्ड है जो आज भी सही उतरता है और इसे प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ाया जा रहा है। भारत बहुत सौभाग्यशाली है कि उसके पास थोरियम के विशाल भंडार हैं इसलिए थोरियम को उपयोग में लाने के लिए तीन चरणीय कार्यक्रम तैयार किया गया है। पहले चरण में दाबित भारी पानी रिएक्टरों (पी. एच. डबल्यू. आर.) का विकास आता है जो आजकल प्रगत स्थिति में है। भारत ने यूरेनियम के बेहतर उपयोग सुरक्षा और देशीकरण की क्षमता को ध्यान में रखते हुए दाबित भारी पानी रिएक्टरों को चुना। दूसरे और तीसरे चरण की भी शुरुआत कर दी गई है।

वर्तमान अनुमान के अनुसार भारत में नाभिकीय ईंधन अर्थात यूरेनियम के भंडार लगभग 70,000 टन उपलब्ध हैं। ये भंडार दाबित भारी पानी रिएक्टरों के प्रथम चरण में 10,000 मेगावाट की स्थापित क्षमता के लिए सहारा दे सकते हैं। भारत थोरियम के भंडारों से सम्पन्न है, जिनकी क्षमता लगभग 3,60,000 टन है। हमारा उद्देश्य इसी थोरियम को ब्रीडर रिएक्टर में U-233 में बदलकर उसे अथवा तापीय रिएक्टरों में प्रयुक्त करके बिजली उत्पादन करने का है। भारत में नाभिकीय ऊर्जा की क्षमता को अधिक समय तक उपयोग में लाना थोरियम के विशाल भंडारों पर निर्भर करता है। हमारा 10,000 मेगावाट के प्रथम चरण का कार्यक्रम दाबित भारी पानी रिएक्टरों पर आधारित होगा, जिसमें ईंधन के रुप में प्राकृतिक यूरेनियम का प्रयोग किया जाएगा। पहले चरण में प्रयुक्त ईंधन के पुर्नसंसाधन से प्लूटोनियम प्राप्त किया जाएगा। जिसे क्षीण यूरेनियम के साथ बिजली उत्पादन के लिए दूसरे चरण में फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों में प्रयोग में लाया जायेगा, थोरियम को भी प्लूटोनियम के साथ फास्ट रिएक्टरों में प्रयोग करके थोरियम को U-233 में परिवर्तित करना भी प्रस्तावित है दूसरे चरण में कुछ समय के पश्चात् थोरियम को U - 233 में परिवर्तित करने के लिए फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों में थोरियम को प्यूटोनियम के साथ प्रयुक्त किया जाएगा। तीसरे चरण में दूसरे चरण से प्राप्त

'परिषद' अध्यक्ष सम्मानित

डॉ. आर. चिदम्बरम्

डा. राजगोपाल चिदम्बरम् को भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग में सचिव तथा परमाणु ऊर्जा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। आपने 31 जनवरी 1993 से अपने नये पद का कार्यभार संभाला।

'हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद' के वर्तमान अध्यक्ष डा. चिदम्बरम् का जन्म 12 नवम्बर 1936 को हुआ था। आपने सन् 1956 में मद्रास विश्वविद्यालय से बी.एससी. (प्रवीण) की उपाधि प्रथम रैंक में तथा 1962 में भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर से भौतिकी में पीएच.डी. की उपाधि हासिल की। आपके कार्य को वर्ष 1961-62 का सर्वोत्तम शोध प्रबंध माना गया तथा इस हेतु आपको "मार्टिन फारस्टर" मेडेल से सम्मानित किया गया था। हाल ही में, आपको पदार्थ विज्ञान एवं क्रिस्टलोग्राफी से संबंधित उल्लेखनीय कार्यों के लिए डी.एससी. की डिग्री भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर, ने प्रदान की।

डा. चिदम्बरम् की सन् 1962 में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में नियुक्ति हुई और तब से आपने भारत के नाभिकीय कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सन् 1990 में आप इस केंद्र के निदेशक नियुक्त हुए।

डा. चिदम्बरम् ने भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में उच्च दाब भौतिकी पर शोध कार्यक्रम की शुरूआत की। आपने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर स्वदेशी तौर पर निर्मित स्टैटिक (डायमण्ड एन्विल सैल) तथा गतिज उच्च-दाब प्रायोगिक सुविधाओं एवं एक दक्ष सैद्धांतिक आधार वाले समूह की सहायता से इस क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय स्तर का कार्य किया। 1974 में भारत के नाभिकीय ऊर्जा के शांति पूर्ण उपयोग से संबंधित पोखरन प्रयोग में आपने मुख्य भूमिका निभाई।

आप एक विश्वविख्यात क्रिस्टलोग्राफर हैं तथा आजकल "अंतरराष्ट्रीय यूनियन ऑफ़ क्रिस्टलोग्राफी" की कार्यकारी समिति के सदस्य भी हैं। भारत में न्यूट्रॉन क्रिस्टलोग्राफी के कार्य की शुरूआत का श्रेय आपको जाता है।

डा. चिदम्बरम् के श्रेष्ठ शोध रिकार्ड से उनकी उत्कृष्ट प्रतिभा पूर्णतःझलकती है। क्रिस्टलोग्राफी, पदार्थ विज्ञान, न्यूट्रॉन भौतिकी तथा प्रगत यंत्रीकरण के क्षेत्र में आपका युवा वैज्ञानिकों के ऊपर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। आपके निर्देशन में 20 से भी अधिक युवा वैज्ञानिकों ने पीएच.डी. की उपाधियां प्राप्त की हैं। आप आजकल जवाहर लाल नेहरू प्रगत वैज्ञानिक शोध केंद्र, बैंगलोर में आनरेरी प्रोफ़ेसर तथा भारतीय विज्ञान अकादमी के उपाध्यक्ष हैं। आप एक माने हुए प्रायोगिक भौतिकविद हैं। आपको कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है जिनमें से 1975 में मिला "पद्म श्री" तथा भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी द्वारा 1992 में प्रदत्त द्वितीय जवाहर लाल नेहरू जन्म शताब्दी पुरस्कार - विजिटिंग फैलोशिप शामिल हैं। इस विजिटिंग फैलोशिप के अंतर्गत आप जर्मनी एवं जापान भी गए।

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं "वैज्ञानिक"परिवार

की ओर से

आपको हार्दिक बधाई एवं शुभ कामनाएं

'रजत-जयंती संगोष्ठी' का उद्घाटन समारोह

मंच पर (बायें से दायें) श्री. जी एल गोस्वामी, प्रो. एम.एम.शर्मा (मुख्य अतिथि), डॉ. आर चिदम्बरम्, (निदेशक भापअ केन्द्र), डॉ. डी डी सूद एवं श्री रामनिवास आर्य, (नीचे) प्रो. शर्मा दीप प्रज्वलित करते हुए।

रजत जयंती समारोह पर लगायी गयी प्रदर्शनी की कुछ झलकियां

स्नेह सम्मेलन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम

स्नेह सम्मेलन में आमन्त्रित कुछ महानुभाव

डा. हर स्वरूप शर्मा को 'स्मृति चिन्ह' भेंट करते हुए
डा. चिदम्बरम् (वायें),

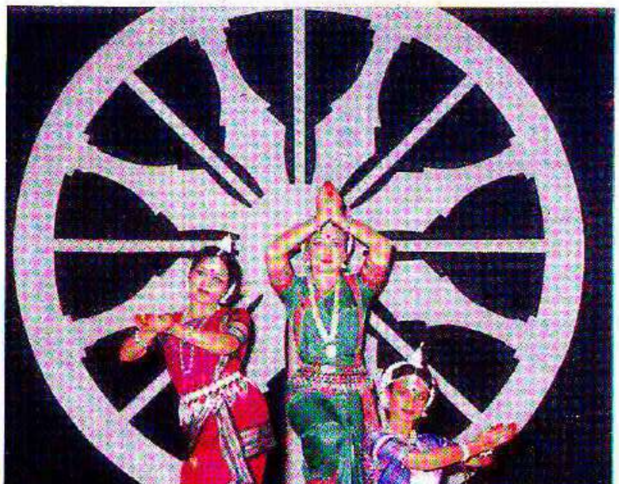

ओडिसी नृत्य की एक मुद्रा
(देवी बसु, बम्बई)

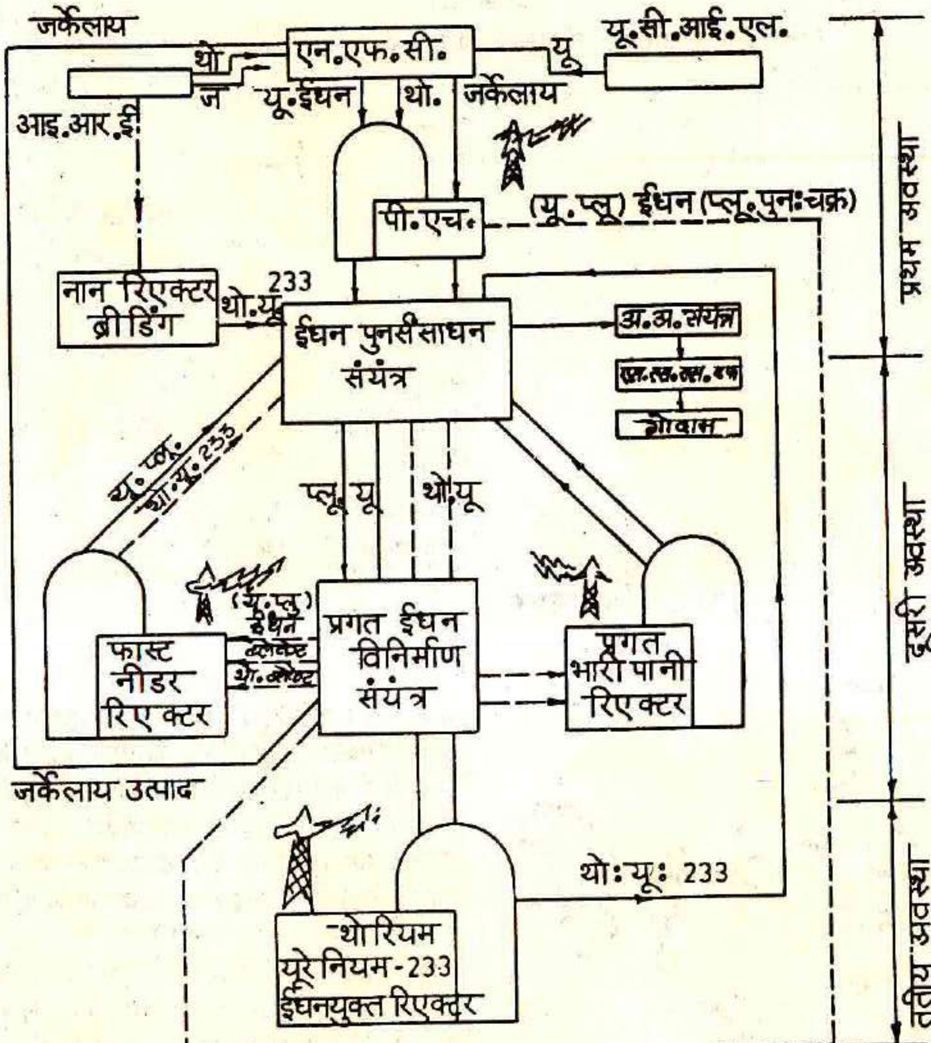

——————— संयंत्र के प्रारंभ करने को प्रदर्शित करते हुए सामग्री प्रवाह

– – – – – – परवर्ती अवस्था का सामग्री प्रवाह

–·–·–·–·– भारी संभावना

चित्र-1. नाभिकीय ईंधन चक्र.

तालिका - 7

(हमारे ऊर्जा के संसाधन विलियन कोयले के समतुल्य या ट्रिलियन वॉर्ट वर्ष)

ऊर्जा स्रोत	क्षमता	टिप्पणी
तेल	0.6	नवीनीकरण योग्य नही
गैस	1.5	"
कोयला	150	"
यूरेनियम	100	"
थोरियम	600	"
हाइड्रो / वर्ष	0.16	नवीनीकरण योग्य
जैवमात्रा / वर्ष	0.0048	"
वायु / वर्ष	0.004	"
सौर	महंगा दैनिक तथा मौसमी	"

परमाणु बिजलीघर

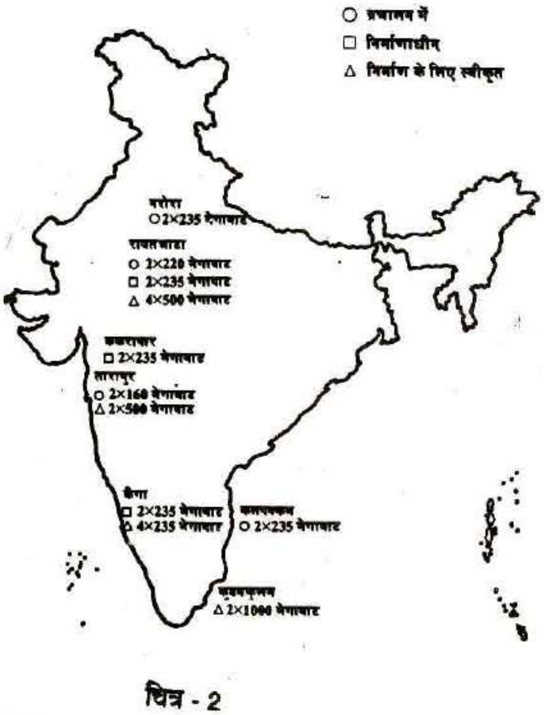

चित्र - 2

U-233 तथा थोरियम को फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों में अथवा तापीय रिएक्टरों में प्रयुक्त किया जाएगा। क्योंकि इन दोनों ही प्रणलियों में ब्रीडिंग की संभावना अधिक है। इस प्रक्रिया में बिजली के उत्पादन के अलावा अधिक U-233 का भी उत्पादन होगा। थोरियम के साथ एक्सीलरेटरों से अथवा फ्यूजन रिएक्टरों से न्यूट्रॉनों के साथ नाभिकीय ईंधन के ब्रीडिंग के विकल्प पर भी विचार किया जा सकता है और इसमें अनुसंधान अथवा विकास के प्रयासों पर काफी ध्यान देना होगा। इन तीन स्तरों को यदि साथ साथ देखें तो ऊर्जा की क्षमता देश में वर्तमान कोयले के भंडारों की चार गुनी होगी। लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों तथा U-233 का प्रयोग करने वाली रिएक्टर प्रणालियों के व्यवसायीकरण के लिए टेक्नोलाजी के विकास करने में निहित होगी। ये जटिल टेक्नोलाजी हैं जिनमें पर्याप्त विकामात्मक प्रयास शामिल हैं।

दाबित भारी पानी रिएक्टरों के प्रथम चरण का कार्यक्रम प्रगति पर है। 15 मेगावाट क्षमता का फास्ट ब्रीडर

टेस्ट रिएक्टर कल्पाक्कम में लगाकर दूसरे चरण का कार्य प्रारंभ कर दिया गया है इस रिएक्टर में स्वदेशी विकसित यूरेनियम प्लूटोनियम कार्बाइड ईंधन भरा गया जो एक उन्नत ईंधन है और पहली बार लगाया गया है। 500 मेगावाट पहले प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रिएक्टर का डिजाइन कार्य पूरा हो गया है। हम थोरियम टेक्नोलाजी को विकसित करने में अन्य किसी देश की मदद पर निर्भर नहीं रह सकते इस बात को महसूस करते हुए भारत ने थोरियम टेक्नोलॉजी को विकसित करने में अग्रता हासिल की है। जबकि 10,000 मे.वा. के दाबित भारी पानी रिएक्टरों (पी. एच. डबल्यू. आर.) के प्रथम चरण का यह कार्यक्रम हमें शताब्दी की मोड़ या उसके कुछ आगे तक ले जाएगा फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों का भी हमारे देश के लिए वाणिज्यिकीकरण आवश्यक समझा गया है। हालांकि विकासशील देशों में फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों के बडे पैमाने पर वाणिज्यिकरण की गति धीमी है, क्योंकि इन देशों में यूरेनियम कम कीमत पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। और इनकी विद्युत उत्पादन की दर एकदम कम है। भारतीय संदर्भ में सामान्य यूरेनियम में भरपूर थोरियम मौजूद होता है और विद्युत की मांग में उच्च उत्पादन की दर के कारण फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों का विकास एक विशेष स्थान रखता है।

थोरियम का प्रयोग हमारे कार्यक्रम के तीसरे चरण का मुख्य विषय है। थोरियम के प्रयोग से संबंधित अध्ययनों के अलावा, विकास के विभिन्न कार्यकलाप जैसे थोरियम या थोरियम पर आधारित ईंधन तत्वों की संरचना, थोरियम का किरणन, किरणित थोरियम का पुनर्संसाधन और यूरेनियम -233 के पृथक्करण के कार्य कई वर्षों से सक्रिय रुप से किए जा रहे हैं। देशज उत्पन्न यूरेनियम - 233 के प्रयोग से क्रांतिक असेंब्लियां जैसे पूर्णिमा 2 व 3 बनाई गई और उन पर प्रयोग किया गया। अब विश्व में पूर्णिमा - 3 ही एक मात्र चालू रिएक्टर है, जिसमें थोरियम को ईंधन के रुप में भरा जाएगा। यूरेनियम - 233 पर आधारित बड़े (30 किवा) कामिनी रिएक्टर को कलपाक्कम में चालू किया गया जो किरणित ईंधन तत्वों के न्यूट्रान रेडियोग्राफी के उपयोग सहित परीक्षण के प्रयोजनों के लिए एक उपयोगी न्यूट्रॉन स्रोत प्रदान करेगा। अभी तक विकसित अनुभवों के आधार पर यह समझा गया है कि अब हम थोरियम पर आधारित विद्युत रिएक्टर के डिजाइन पर काम करना आरंभ कर दें। इस प्रकार के रिएक्टर का प्राथमिक डिजाइन तैयार कर लिया गया है। काकरापार परमाणु विद्युत परियोजना प्रथम विद्युत रिएक्टर है जिसमें आंशिक रुप से थोरियम का प्रयोग होगा। सायरस रिएक्टर में भी आवरण के रूप में थोरियम का प्रयोग होता है।

थोरियम टेक्नोलॉजी के विकास में हम अन्य किसी देश पर निर्भर नहीं रह सकते हैं। इसे साकार करने के लिए भारत थोरियम टेक्नॉलॉजी के विकास का नेतृत्व कर रहा है। 10,000 मेगावाट के दाबित भारी पानी रिएक्टर पहले स्तर का कार्यक्रम है जो शताब्दी की ओर ले जाएगा (चित्र-2) हमारे देश के लिए फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों का वाणिज्यिकीकरण आवश्यक है। जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, कम लागत के यूरेनियम और इन देशों में निम्न दर पर विद्युत - वृध्दि के कारण, विकसित देश में बड़े पैमाने में फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों का वाणिज्यिकीकरण धीमा है। भारतीय संदर्भ में मध्यम यूरेनियम में प्रचुर मात्रा में थोरियम उपलब्ध है, विद्युत मांग में वृद्धि दर उच्च है इसलिए फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों का विकास विशेष रुप से महत्वपूर्ण है। निम्नलिखित अनुसंधान रिएक्टरों का भी निर्माण और प्रचालन भारत द्वारा किया गया।

अप्सरा : सोवियत यूनियन से बाहर अप्सरा एशिया का प्रथम अनुसंधान रिएक्टर है। यह अगस्त 1956 के दौरान क्रांतिक हुआ। यह पूर्णतः देशज प्रयास था। यह स्विमिंग पूल रिएक्टर, प्लेट टाइप समृध्द यूरेनियम का प्रयोग ईंधन के रुप में करता है। इसे 1000 कि. वा. (ताप) पर रेट किया गया, जो कमीशनिंग से ही आइसोटोप उत्पन्न कर रहा है और यह भौतिक, रसायन और अभियांत्रिक परीक्षणों में अत्यंत उपयोगी साधन है।

सायरस : सायरस 40 मेगावाट (ताप) उच्च फ्लक्स का रिएक्टर है जिसे कनाडा की मदद से बनाया गया है। इस रिएक्टर में साधारण जल शीतिलन और भारी पानी विमंदन व ईंधन के रुप में प्राकृतिक यूरेनियम की सुविधा है। देश के विद्युत रिएक्टर कार्यक्रम के लिए यह रिएक्टर मुख्य प्रशिक्षण का आधार रहा है। बड़े पैमाने पर आइसोटोपों के उत्पादन के अलावा, यह रिएक्टर भौतिक, रसायन और

धातुविज्ञान के लिए अनुसंधान का मुख्य साधन है। यह संयंत्र 10 जुलाई 1960 को चालू हुआ और यह रिएक्टर पिछले 33 वर्षों से सफलतापूर्वक चल रहा है।

ध्रुव : प्राकृतिक यूरेनियम से ईंधन युक्त 100 मेगावाट उच्च फ्लक्स वाले इस रिएक्टर को भारी पानी द्वारा मंदित व शीतित किया जाता है। फ्लक्स 10^{14} n/cm^{2}/sec. स्तर तक उपलब्ध है। रिक्टर के 2 मे.वा . पाइल लूप को विद्युत रिएक्टर ईंधन की जांच करने के लिए सम्मिलित किया गया है। उच्च फ्लक्स और बीम होल स्थितियाँ उपलब्ध होने के कारण, जो प्रयोग अप्सरा और सायरस में संभव नहीं थे वे प्रयोग ध्रुव में संभव हैं।

जर्लिना : इस शून्य ऊर्जा रिएक्टर को मुख्यतया ईंधन लेटिस और नई असेंब्लियों के लिए बनाया गया था। यह रिएक्टर जनवरी - 1961 में क्रांतिक हुआ। तथापि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के बाद इसको डिकमीशन कर दिया गया है।

प्रथम चरणीय न्यूक्लियर विद्युत कार्यक्रम - दाबित भारी पानी रिएक्टर (पी. एच. डब्ल्यू. आर.): दाबित भारी पानी रिएक्टरों के (चित्र - 3) को, ईंधन के रुप में प्राकृतिक यूरेनियम, मंदक के रुप में निम्न दाब भारी पानी और शीतलक के रुप में उच्च दाब के भारी पानी का प्रयोग करते हुए लंबी अवधि के न्यूक्लियर विद्युत कार्यक्रम के प्रथम चरण के लिए चुना गया। दाबित भारी पानी रिएक्टर, प्राकृतिक यूरेनियम के अत्यंत सफल प्रयोक्ता हैं, जिसका देश में सामान्य भंडार उपलब्ध है। इन रिएक्टरों का आकार और इनमें अपेक्षित उपस्कर देश में उपलब्ध उद्योगों के विनिर्माण के एकदम उपयुक्त है। दाबित भारी पानी रिएक्टरों के लिए अपेक्षित

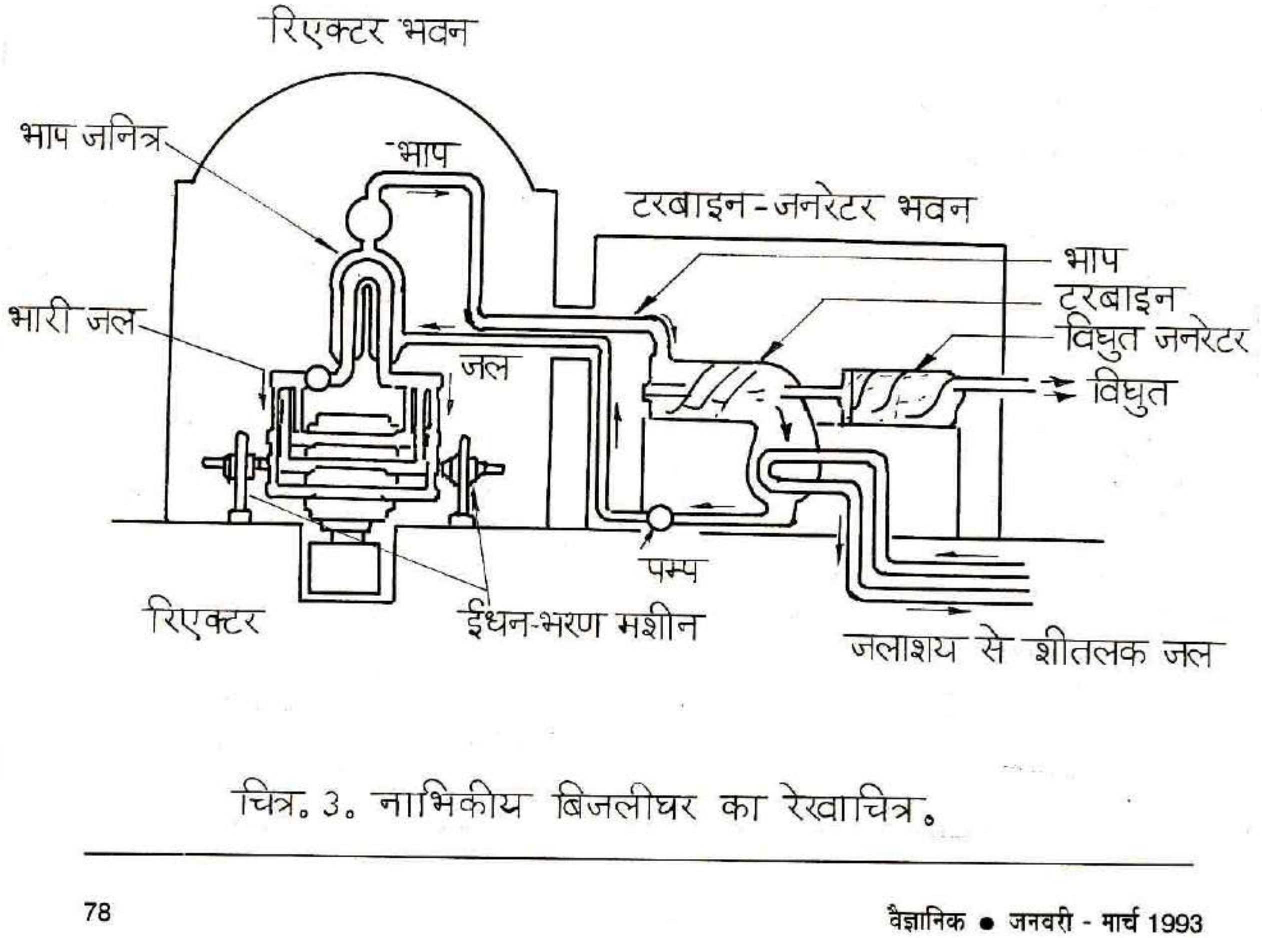

चित्र. 3. नाभिकीय बिजलीघर का रेखाचित्र.

विशेष सामग्रियों - जैसे ईंधन, भारी पानी और जिर्कोनियम अलॉय का परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत उत्पादन कार्यक्रम स्थापित करना भी संभव है। दाबित भारी पानी रिएक्टरों में ईंधन भरने की क्षमता के साथ ही इनमें कार्य निष्पादन के उच्च स्तरों को प्राप्त करने की वैसी क्षमता भी निहित है जैसी कि कनाडा के रिएक्टरों और हमारे रिएक्टर राजस्थान परमाणु बिजलीघर-2 और मद्रास परमाणु बिजलीघर ने भी कुछ अवधि के दौरान साबित की है। अन्य प्रकार के रिएक्टरों की अपेक्षा दाबित भारी पानी रिएक्टरों में अंतर्निहित सुरक्षा अधिक है।

आज की तारीख में पाँच न्यूक्लियर बिजलीघर अर्थात तारापुर परमाणु बिजलीघर (2x160 मेगावाट), राजस्थान परमाणु बिजलीघर (1x100 मेगावाट और 1x200 मेगावाट), मद्रास परमाणु बिजलीघर (2 x 220 मेगावाट), नरोरा परमाणु बिजलीघर (2x220 मेगावाट) और काकरापार परमाणु बिजलीघर की पहली इकाई (220 मेगावाट), कुल 1720 मेगावाट स्थापित क्षमता के साथ चालू हैं। इसके अलावा 220 मेगावाट की क्षमता वाले काकरापार परमाणु बिजलीघर की दूसरी इकाई के इस वर्ष क्रांतिकता प्राप्त कर लेने की उम्मीद है। 220 मेगावाट क्षमता वाले चार और रिएक्टर निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में है। राजस्थान परमाणु विद्युत परियोजना 3 व 4 (2x235 मेगावाट) और कैगा परमाणु विद्युत परियोजना 1 व 2 (2x235 मेगावाट) निम्नलिखित कार्यक्रम के अनुसार क्रांतिकता प्राप्त करेंगे:

राजस्थान परमाणु विद्युत परियोजना	- 3 नवंबर, 1996
राजस्थान परमाणु विद्युत परियोजना	- 4 मई, 1997
कैगा परमाणु विद्युत परियोजना	- 1 जून, 1996
कैगा परमाणु विद्युत परियोजना	- 2 दिसंबर, 1996

उपर्युक्त स्वीकृत योजनाएं जिन पर निर्माण कार्य हो रहा है, के अतिरिक्त 220 मेगावाट की 4 इकायों तथा 500 मेगावाट की 6 इकाइयों के लिए लम्बी अवधि में प्राप्त होने वाले विशिष्ट उपकरणों की खरीद के लिए अग्रिम स्वीकृति प्रदान की जा चुकी है। सरकार ने यह निश्चय किया है कि 225 मेगावाट की चार इकाइयां कैगा में (कैगा 3 से 6), 500 मेगावाट की 2 इकाइयां तारापुर में (3 से 4) तथा 500 मेगावाट की 4 इकायां में (5 से 8) स्थापित करने का निर्णय लिया है। लम्बी अवधि की योजनाओं को ध्यान में रखते हुए 8 वीं पंचवर्षीय योजना में 500 मेगावाट की 6 अन्य इकाइयों पर अब कार्य प्रारंभ किए जाने का विचार है।

उपर्युक्त कार्यक्रम के अतिरिक्त बिजली की आवश्यकताएं और संभावित उत्पादन के बीच की खाई को पूरा करने के लिए 1000 मेगावाट क्षमता दो वीवीईआर इकाइयां तमिलनाडु में स्थित कुडानकुलम में सोवियत संघ के सहयोग से स्थापित किए जाने का निर्णय लिया गया है। वीवीईआर प्रकार के यह रिएक्टर दाबित पानी रिएक्टरों की श्रेणी में आते हैं जो चेरनोबिल स्थित आर. बी. एम. के रिएक्टरों की डिजाइन से पूर्णतया भिन्न है। इन रिएक्टरों को उन स्थापित डिजाइनों के आधार पर बनाया जाएगा जो पहले ही विकसित किए जा चुके हैं तथा सोवियत संघ में आज प्रचालन में है तथा भविष्य में भी रहेंगे।

उपकरणों के निर्माण का अनुभवः हमारे नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ही है कि हम अधिक से अधिक स्वदेशी क्षमता का प्रयोग कर सकें तथा नाभिकीय एवं परम्परागत उपकरणों का निर्माण देश में ही कर सकें और इस प्रकार हमारा अंतिम उद्देश्य इस क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का है। तारापुर परमाणु बिजलीघर प्रायोगिक (टर्नकी) आधार पर बनाया गया था। फलस्वरुप इसके लिए बनाए गए उपकरणों में भारतीय उद्योग का योगदान अत्यन्त सीमित रहा। नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम में भारतीय उद्योग का पदार्पण उस समय हुआ जब राजस्थान परमाणु बिजलीघर बनाने का निर्णय लिया गया। इसी समय देश में बड़े आकार के विद्युत उपकरणों, मशीनी यंत्रों गढ़ाई (फोरजिंग), ढलाई (कास्टिंग) के लिए उन्नत भारी इंजीनियरी उद्योगों तथा औद्योगिक संयंत्रों की स्थापना हो रही थी। भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत नाभिकीय विद्युत संयंत्रों के लिए आवश्यक

उपकरणों के निर्माण के लिए इस स्रोत का प्रयोग करने का निर्णय लिया गया। पिछले दो दशकों में परमाणु ऊर्जा विभाग न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन तथा भारतीय उद्योगों के बीच का संपर्क विशद एवं तीव्र रहा है। उद्योगों के विकास के प्रयासों को सहायता प्रदान की गई। मशीनी टूल्स उन्नत संयंत्र उपकरणों के लिए कार्यशालाओं का विकास तथा स्वच्छ वातावरण उपलब्ध कराया जाना आवश्यक था। कुछ प्रमुख उपकरणों को स्थानीय परिवेश में निर्मित करने हेतु तकनीकी सहायता से समझौते के अन्तर्गत बनाना आरंभ किया गया। जिसका उद्देश्य था कि स्वदेशी तकनीकी का विकास। कार्मिकों / शिक्षा प्रणालियां तथा मशीनी यंत्रों तथा प्रत्येक स्तर पर उन्नत नियन्त्रण जैसी चीजों का प्रारम्भ किया गया। कुछ मामलों में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र की विभागीय कार्यशालाओं में विकास कार्य किए गए। साथ ही साथ कुछ विशिष्ट प्रकार के पुर्जों का निर्माण भी किया गया। वर्तमान इकाइयों में विदेशी मुद्रा का घटक अब लगभग 10% रह गया है।

विशिष्ट नाभिकीय उपकरणों / पुर्जों के निर्माण में भारतीय उद्योग की आत्मनिर्भरता का विकास आशा के अनुरूप नहीं हो सका जिसके कारण नियत कार्यक्रमों में समय का बदलाव आया तथा कीमतों में बढ़ोत्तरी हुई और प्रारंभिक प्रचालन अविश्वसनीय रहे। फिर भी इस प्रकार जो अनुभव प्राप्त हुए थे, उनसे हमारी जानकारी काफी उन्नत हुई है और अब एक ऐसी स्थिति आ गयी है जहां यह कहा जा सकता है कि अब हमारे उद्योग विशिष्ट नाभिकीय घटकों का निर्माण कर सकते हैं तथा उन्हें एक तर्कसंगत समयावधि के अन्तर्गत उपलब्ध करा सकते हैं।

दाबित भारी पानी रिएक्टरों के लिए जिन मुख्य उपकरणों का निर्माण इन उद्योगों द्वारा किया जा सकता है उनमें से प्रमुख हैं कैलेड्रिया, एण्डशील्ड, स्टीम जनरेटर्स, प्राथमिक शीतलन पम्प्स, फिटिंग्स, रोधक प्लग, रिएक्टीविटी मैकेनिज्म, ईंधन भरण मशीन तथा टरबाईन जनरेटर। भारतीय उद्योगों ने इस प्रकार के नाभिकीय घटकों तथा उपकरणों के निर्माण में परिपक्वता की स्थिति प्राप्त कर ली है। इन विशेष प्रयासों के कारण हम वर्तमान में चालू इकाइयों के प्रचालन को बिना किसी विदेशी मदद के बनाए रख सकते हैं।

तालिका - 8

विभिन्न कार्यों में दुर्घटनाओं से मृत्यु संभावना

उद्योग	मृत्यु - हजार में
कपड़ा	1
रसायन संयंत्र	2
समस्त उद्योग	2.7
जहाज निर्माण	4
कोयला खनन	10
निर्माण प्रक्रियाऐं	30
समुद्र से मछली - उत्पादन	
परमाणु उद्योग में कैंसर ग्रस्त होने की संभावना	2 (प्रति हजार)

सुरक्षा : तालिक-8 में न्यूक्लियर विद्युत उद्योग सहित विभिन्न उद्योगों की जोखिमों और मानवीय कार्यकलापों का वर्णन है। यह अच्छी तरह से स्पष्ट करता है कि न्यूक्लियर विद्युत उद्योग में कुल मिलाकर कम से कम जोखिम है। नाभिकीय ऊर्जा की सुरक्षा पर किए जाने वाले अधिकतर विचार विमर्श भयंकर नाभिकीय दुर्घटनाओं की संभावनाओं पर केन्द्रित होते हैं। 3 माइल आइलैण्ड (टी. एम. आई. 2) एक ऐसी दुर्घटना थी जिससे जन सामान्य की सुरक्षा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसमें कोई संशय नहीं है कि चेरनोबिल दुर्घटना से जन सामान्य के मन में भय उत्पन्न हुआ है। इस दुर्घटना में 31 लोग हताहत हुए जिसमें से मुख्यतया प्रचालन तथा अग्निशमन कार्मिक थे। चेरनोबिल बिजलीघर के आर. बी. एम. रिएक्टरों में डिजाइन की मूलभूत कमियां रही हैं, जिनका कारण निम्न ऊर्जा स्तरीय प्रचालन का अस्थिर क्षेत्र है। चेरनोबिल रिएक्टर सामान्य ग्रेफाइटयुक्त हैं जिनका कोर में काफी मात्रा में ग्रेफाइट पदार्थ का प्रयोग किया गया है। परिणाम स्वरुप दुर्घटना के बाद लगने वाली आग ने तेजी

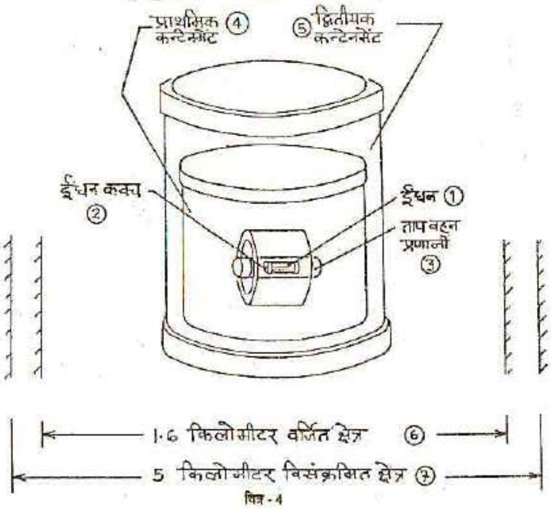

चित्र - 4
रिएक्टर अभिकल्पन में प्रयुक्त सात अवरोधक

पकड़ ली क्योंकि ग्रेफाइट एक ज्वलनशील पदार्थ है जिसने गर्म पानी, जो शीतलक का कार्य करता है, के साथ प्रतिक्रिया की। भारत में चेरनोबिल दुर्घटना के ऊपर विशद रुप से विचार किया गया तथा यह निष्कर्ष निकाला कि जिस प्रकार की दुर्घटना चेरनोबिल में हुई वैसी दुर्घटना भारतीय परिप्रेक्ष्य में कोई स्थान नहीं रखती तथा भारतीय दाबित भारी पानी रिएक्टरों की विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनमें इस प्रकानर की दुर्घटना संभव नहीं है।

भारतीय दाबित भारी पानी रिएक्टरों के दुर्घटना विश्लेषण में एक तथा दो विफलताओं पर अलग - अलग विचार किया गया है। इन रिएक्टरों में डिजाइन की भूलों के आधार पर कोई दुर्घटना होना संभव नहीं हैं। रिएक्टर के कन्टेनमेंट को बक्से के रुप में तैयार करके इसे पर्यावरण के संपर्क में नहीं आने दिया गया है। हालांकि उसमें तीव्र क्षमता वाले पार्टिकूलेट फिल्टरों के माध्यम से कन्टेनमेंट के नियोजित शुद्धिकरण का प्रावधान है और अंततः अनुमेय स्तर पर उनका प्रयोग एक लम्बी चिमनी में होता है। नरोरा संयंत्र तथा उनके बाद आने वाले संयंत्रों में दोहरी कन्टेनमेंट प्रणाली उपलब्ध कराई गई है। रेडियो एक्टिवता को पर्यावरण में छोड़ने से पूर्व कई अवरोध पार करने होते हैं (चित्र - 4)

पर्यावरणीय प्रभाव : कोयला जलाकर उत्पादित की गई बिजली की भांति नाभिकीय बिजलीघरों से कार्बन डाईआक्साइड गैस जैसे रासायनिक संदूषण प्रभावहीन मात्रा में निकलते हैं। अतः सामान्य प्रचालन की अवस्था में पर्यावरण में अत्यन्त निम्न स्तरीय रेडियो एक्टिवता का रिसाव होता है। रेडियो एक्टिव अपशिष्टों के प्रबंध एवं निस्तारण के लिए एक नीति बनाई गई है जिसमें आवश्यक रुप से स्रोत पर ही छटाई, संसाधन, सान्द्रीकरण और उनमें से अधिकतर अपशिष्टों का कन्टेमेंट तथा इस पूर्ण प्रक्रिया की निगरानी आवश्यक रुप से की जाती है। इस प्रकार संयंत्र उत्पन्न रेडियो एक्टिवता का एक बहुत छोटा सा भाग वायुमंडल में छोड़ा जाता है। इस विकिरण की मात्रा अनुमत मात्रा से कम होती है और परमाणु ऊर्जा नियामक बोर्ड द्वारा निर्देशित सीमाओं के भीतर ही है। इन सीमाओं को विकिरण से बचाव के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग जैसी अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संस्थाओं (आई. सी. आर. पी.) द्वारा दिए गए मार्गदर्शी सिद्धान्तों के आधार पर निर्धारित किया गया है। हम चाहेंगे कि सभी उद्योगों का विकास हो और वे देश की समग्र उन्नति के लिए फूलें - फलें। आप जानते ही होंगे कि तारापुर में रासायनिक संयंत्रों के प्रदूषण के कारण कई रोग उत्पन्न हुए लेकिन समीपवर्ती रिएक्टरों से नही। हमें पक्का विश्वास है कि इसी प्रकार की स्थिति अन्य रिएक्टर स्थलों पर भी बनी रहेगी।

नाभिकीय स्थापनाओं के सामान्य प्रचालनों के लिए आई. सी. आर. पी. इन सुविधाओं के आसपास जन साधारण के लिए विकिरण की मात्रा एक मिली. सीवर्ट प्रति वर्ष निर्धारित करती है। यह सीमा एक्सक्लूजन जोन की बाउण्ड्री पर लागू होती है तथा इस बाउण्ड्री के आगे जन साधारण का निवास संभव है एक स्थल पर सभी स्रोतों से मिलने वाली मात्रा के आधार पर इस मात्रा का निर्धारण किया जाता है। एक मिली सीवर्ट प्रति वर्ष की इस मात्रा में कुछ भाग भविष्य में होने वाले विस्तारों के लिए भी आरक्षित रखा जाता है। चूंकि मात्राओं का निर्धारत स्थल पर उपलब्ध सभी सुविधाओं के आधार पर किया जाता है। अतः विचारणीय स्थल पर वायु तथा पानी के मार्गों जैसी प्रत्येक सुविधा से मिलने वाली मात्रा की गणना भी की जाती है। इस कारण संयंत्र से दूरी पर स्थित जगहों पर मिलने वाली विकिरण की मात्रा कम होती चली जाती है। फलतः जन साधारण को मिलने वाली मात्रा अत्यन्त कम होती है (तालिका - 9)। चिमनी के माध्यम से निकलने वाली वायु अत्यन्त क्षमतायुक्त फिल्टरों के माध्यम से निकलती है और उसका लगातार मॉनीटर किया जाता है। दाबित भारी पानी रिएक्टरों के प्रचालन का अनुभव यह बताता है कि विभिन्न स्थलों के लिए प्राधिकृत मात्राओं की सीमा जो कि ट्रीशियम, आर्गन-41 तथा आयोडीन - 131 से संबंधित है, का बहुत थोड़ा सा प्रतिशत उन्मोचित होता है। नरोरा संयंत्र तथा इससे आगे आने वाले संयंत्रों के डिजाइन कुछ इस प्रकार के हैं कि आर्गन-41 जो वायु उन्मोचनों में सबसे अधिक होती है, को निर्धारित सीमा से भी कम प्रतिशत में होने के कारण स्वयं ही विलुप्त हो जाएगी। निःसारित द्रव की संसाधन-छटाई, एकत्रीकरण, सांद्रीकरण एवं कन्टेनमेंट के दर्शन पर आधारित हैं। इस प्रकार जलाशयों में ऐसी निर्मुक्ति की बहुत कम प्रतिशत जाती है। दाबित भारी पानी रिएक्टरों के प्रचालन के अनुभवों ने भी इस बात को सिद्ध किया है। शीतलक जल प्रणाली बहुत लूपों का प्रावधान डिजाइन में ही किया गया जिससे दुर्घटना से होने वाले स्रावों को जलाशयों में जाने से रोका जा सके।

ठोस अपशिष्टों को गतिहीन करने के पश्चात, संयंत्र स्थलों पर ही, जमीन के भीतर दबा दिया जाता है। जैविक तथा भू-जलीय परिस्थितियां जो स्थूल से संबद्ध रखती है, का मूल्यांकन किया जाता है। कन्टेनमेंट जैसे कि आर. सी. सी. खाईयां, आर. सी. सी. वाल्ट तथा टाइल होल इस तरह बनाए जाते हैं कि वे लीकप्रूफ रहें। जहाँ इस प्रकार के ठोस अपशिष्ट गाड़े जाते हैं उस क्षेत्र में प्रतिक्रिया संबंधी विचलनों को मानीटर करने के लिए उपयुक्त बोरवेल सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं।

तालिका - 9
आपकी विकिरण - मात्रा

स्रोत		मात्रा मिलीरेम
• सूर्य व वायुमण्डल की ब्रह्मांड किरणें	-	28
• ईंट या कंकरीट का मकान	-	70
• भूमि स्थल	-	26
• पानी, भोजन व वायु	-	28
• वायुमण्डल में परमाणु हथियारों का परीक्षण	-	4
• दातों का एक्सरे	-	14
• 1500 मील की हवाई जहाज की यात्रा	-	1
• परमाणु या ताप बिजलीघर से 5 किलोमीटर सीमा तक रहने पर	-	0.3
• परमाणु या ताप बिजलीघर से 5 किमी. सीमा से बाहर रहने पर	-	0
कुल मात्रा		171.3

प्रत्येक संयंत्र स्थल पर एक पर्यावरणीय सर्वेक्षण तथा माइक्रोमेटेरियोलोजिक प्रयोगशालाएं स्थापित की जाती हैं। इस प्रयोगशाला का उद्देश्य प्रचालन से पूर्व सर्वे करना होता है तथा साथ ही साथ नाभिकीय विद्युत संयंत्र के प्रचालन के दौरान वह निगरानी भी रखती है। प्रचालन से पूर्व किए गए

सर्वे का उद्देश्य यह जानना होता है कि स्थान विशेष पर कितना प्राकृतिक विकिरण विद्यमान है तथा स्थल पर रेडियो एक्टिवता का क्या स्तर है। इसके अतिरिक्त जन सांख्यकीय आंकड़े किस प्रकार के हैं एवं आसपास रहने वाली जनता का रहन - सहन किस प्रकार है। यह भी पता किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय पर्यावरण में विकिरण प्राप्त करने की कितनी क्षमता है इसका भी मूल्यांकन किया जाता है। परिस्थिति प्रणाली तथा उसकी विशेषताओं पर भी विचार किया जाता है और इन सबके आधार पर ऐसे मॉडलों का विकास किया जाता है जो संभावित विकिरण की मात्राओं संबंधी भविष्य की सूचना दे सके। प्रचालन की अवधि में मॉनीटरन का कार्यक्रम लगातार संयंत्र के जीवन समय तक चलता रहता है। संयंत्र स्थल से 30.किमी. अर्ध व्यास का क्षेत्र सामान्यतया इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लिया जाता है।

पर्यावरणीय प्रभाव जो कि भू-अधिग्रहण से पड़ता है वह जल विद्युत संयंत्रों की अपेक्षा बहुत कम तथा ताप बिजलीघरों के लगभग बराबर होता है क्योंकि नाभिकीय बिजली संयंत्रों के लिए बहुत कम भूमि की आवश्यकता होती है। 2000 मेगावाट (4 x 500 मेगावाट) के संयंत्र के लिए लगभग 1000 से 500 हेक्टर क्षेत्र की आवश्यकता होती है जिसमें एक्सक्लूजन जोन भी सम्मिलित होता है। इसमें से 200 हेक्टर भूमि की आवश्यकता संयंत्र के भवन तथा ढांचे को बनाने के लिए पर्याप्त होती है। अधिग्रहित किया गया बाकी क्षेत्र एक्सक्लूजन जोन में वृक्षारोपण के काम आता है जिससे न केवल पर्यावरण की सुन्दरता बढ़ती है वरन् पर्यावरण पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों पर भी कमी आती है। समुद्र के किनारे स्थलों में संयंत्र के टरसरी सर्किटों को ठंडा करने के लिए समुद्री पानी का प्रयोग किया जाता है और उसमें हुई कमी की आपूर्ति के लिए बहुत थोड़े साफ पानी की आवश्यकता होती है। देश के भीतरी हिस्सों में स्थित स्थलों पर कूलिंग टावरों के लगाने कें कारण सादे पानी की अधिक आवश्यकता होती है। नाभिकीय बिजली संयंत्रों में सादे पानी की आवश्यकता लगभग तापीय विद्युत संयंत्रों की ही तरह होती है। विद्युत विकास में संतुलन बनाए रखने के लिए देश के भीतरी भागों एवं समुद्र के किनारे, दोनों ही स्थानों पर बिजलीघर बनाए जाने की आवश्यकता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ - साथ, स्वच्छ पानी की आवश्यकताएं कृषि एवं पीने के क्षेत्रों में बढ़ रही है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि विद्युत उत्पादन के लिए स्वच्छ पानी की आवश्यकता के लिए प्रतिस्पर्धात्मक दावे किए जाएंगे। संदर्भ में नदियों के किनारे स्थापित किए जाने वाले नाभिकीय विद्युत संयंत्रों तथा तापीय विद्युत संयंत्रों में स्वच्छ पानी के कम से कम उपयोग को ध्यान में रखते हुए कूलिंग टावरों की आवश्यकता पर ध्यान देना होगा। सूखे कूलिंग टावरों तथा कूलिंग टावरों में पानी के उपयोग को घटाने के संबंध में हमें विचार करना होगा। परिणामस्वरुप चाहे हमें सम्पूर्ण प्रणाली की क्षमता में नुकसान ही क्यों न उठाना पड़े। हालांकि पहले विचार के अनुसार यह एक आर्थिक दण्ड होगा परन्तु भविष्य में जन साधारण के विभिन्न उपयोगों एवं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें स्वच्छ पानी बचाना ही होगा इस प्रकार थर्मल बिजलीघरों में पानी के संदूषण का ध्यान रखा जाता है उसी प्रकार नाभिकीय बिजलीघरों में भी इस बात का ध्यान रखा जाता है। ऐसे स्थलों पर जहां कूलिंग टावर लगाए गए हैं। इस तरह का कोई खतरा नहीं है। पानी को बाहर छोड़ने के लिए जलाशय का तापमान यथा अन्य मानदण्डों का ध्यान रखा जाता है। जिससे इस बात को सुनिश्चित किया जाता है कि छोड़े गए पानी की बृहद जलाशय में मिलने पर उस क्षेत्र का तापमान पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा विनिर्दिष्ट सीमाओं से अधिक न हो जाए। अब सभी नए संयंत्रों के लिए पर्यावरण प्रभाव निर्धारण रिपोर्ट तैयार की जाती है और निर्माण कार्य प्रारंभ करने से पूर्व करीब 30 एजेन्सियों से स्वीकृति लेनी होती है।

रेडियोएक्टिव अपशिष्ट प्रबन्धन : नाभिकीय ऊर्जा से निकलने वाले रेडियोएक्टिव अपशिष्ट अधिकांशतः निम्न एवं होते हैं। इन अपशिष्टों के संसाधन एवं निरापद ढंग से इनका निपटारा करने की विधि का प्रदर्शन पहले ही किया जा चुका है तथा देश में विभिन्न नाभिकीय प्रतिष्ठानों पर यह सुविधाएं

उपलब्ध है। इसके मार्गदर्शी सिद्धांत के अन्तर्गत इसे एकत्रित करना, गतिहीन करना तथा रेडियोएक्टिव के अधिकतम भाग को रोकना तथा जल प्रवाह में केवल ऐसी मात्रा निःसारित करना जिसमें अभिक्रियात्मक सांद्रण पूर्व विवेषित अनुमेय स्तरों से नीचे हो, सम्मिलित हैं। ईंधन पुनर्संसाधन के दौरान उत्पन्न रेडियोएक्टिव अपशिष्टों की अभिक्रिया ने पर्याप्त रुप से ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण नाभिकीय ईंधन चक्र से उत्पन्न रेजियोएक्टिव का लगभग 11% भाग होता है। विकिरण को गतिहीन करने के लिए डामरीकरण तथा पुनरीक्षण प्रक्रियों तथा उच्च कोटि के अपशिष्ट को कन्टेन करने की प्रणाली को मानकीकृत कर लिया गया है तथा सम्पूर्ण रिमोट प्रचालन तथा अनुरक्षण कार्यों को सम्मिलित करते हुए अपशिष्ट को गतिहीन करने संबंधी पायलट संयंत्र तारापुर में स्थापित किया जा चुका है। इस संयंत्र में कथित अपशिष्ट के अंतरिम भंडारण की सुविधा भी उपलब्ध कराई गई है। कथित अपशिष्टों के अंतिम निपटान के लिए उपयुक्त स्थल के रुप में आग्नेय चट्टानों के निर्माण तथा तलछटीय निक्षेपों का चयन किया गया है। सजातीय एवं प्रायः द्वीपीय नाइसों में भंडार तथा ग्रेनाइट के लिए संभावित स्थलों का पता लगाने हेतु एक कार्यक्रम बनाया गया है। भंडार के लिए इस प्रकार के निर्माण की उपयुक्त निर्धारित करने के लिए अध्ययन जारी है।

भारत में दाबित भारी पानी रिएक्टर का प्रचालनीय अनुभवः
(क) भारत में दाबित भारी पानी रिएक्टर के प्रचालन के बारे में यह कहा जा सकता है कि इसने परिपक्वता की स्थिति प्राप्त कर ली है।

(ख) वर्तमान में न्यूक्लियर बिजली संयंत्रों को सुरक्षित, विश्वसनीय और लाभकारी रुप में लाया जा रहा है। यह बहुपक्षीय प्रयासों का परिणाम है।

(ग) न्यूक्लियर बिजली के उत्पादन के तीनों सुरक्षित, विश्वसनीय और लाभकारी लक्ष्यों को भलीभांति प्राप्त किया जा रहा है तथापि उनमें और सुधार लाने के लिए प्रयास जारी रहेंगे।

भारतीय रिएक्टरों की सुरक्षा का रिकार्ड : भारत में प्रचालन के 100 रिएक्टर वर्षों में, सुरक्षा का रिकार्ड अच्छा रहा है। रिएक्टरों के प्रचालन के कारण संयंत्र के कार्मिकों, जनता के किसी सदस्य या पर्यावरण को विवरण से कोई दुर्घटना नहीं हुई है। प्रचालनीय अनुभव के दृष्टिकोण से वर्तमान बिजलीघरों के सुरक्षा रूपों के साथ अतिरिक्त उपस्कर और घटक जोड़ते हुए उनको और उन्नत किया जा रहा है तथापि थ्री माइल आइलेंड और चेरनोबिल की दुर्घटनाओं से सीखे गए पाठों का ध्यान में रखते हुए प्रचालनीय प्रक्रियाओं को और कठोर बनाया गया है। जहां तक नए दाबित भारी पानी रिएक्टरों के निर्माण का प्रश्न है, वे डिजाइन तथा निर्माण के लिए प्रचलित सुरक्षा मानदण्डों को, अंतर्राष्ट्रीय रूप में स्वीकृत दिशा निर्देश तथा विनियमों के अनुरूप हैं।

व्यावसायिक सुरक्षा : औद्योगिक तथा परंपरागत सुरक्षा के साथ ही साथ न्यूक्लियर सुरक्षा को भी सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई हैं। इसके पीछे यह उद्देश्य है कि अन्य उद्योगों के बीच न्यूक्लियर बिजलीघरों को सबसे अधिक सुरक्षित बनाना और बिजलीघर के कर्मचारियों को बाहरी स्थान की अपेक्षा संयंत्र में अधिक सुरक्षित करना। आवृति तथा गंभीरता की दर अन्य उद्योगों में विद्यमान दरों की तुलना में काफी कम हैं। प्रत्येक बिजलीघर पर कार्यरत विशिष्ट प्रकोष्ठ यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकारी विधानों, परमाणु ऊर्जा कारखाना अधिनियम, भारतीय बायलर विनियम, भारतीय विद्युत अधिनियम आदि का अनुपालन हो और इस मामले में एक भी उल्लंघन नहीं हुआ है। आई. सी. आर. पी. द्वारा निर्धारित गई निम्नसीमाओं तक व्यक्ति के विकिरण उद्भासन के स्तर को कम करने के लिए सभी बिजलीघर तालिका के अनुरूप कार्य कर रहे हैं। "अलारा" की अवधारणा का अनुपालन किया जा रहा है और मैनरैम को घटाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं जबकि वर्तमान विकिरण उद्भासन भी पूर्ण रुप से सुरक्षित हैं।

जन - सुरक्षा तथा पर्यावरणीय प्रभाव : सभी रिएक्टरों से निकलने वाले तरल तथा गैसीय पदार्थ तकनीकी विनिर्देशन

सीमाओं के अंदर रहे। इन रिएक्टरों की विमनियों से निकलने वाली रेडियोएक्टिवता समीपवर्ती ताप बिजलीघरों से निकलने वाली रेडियोएक्टिवता का केवल मात्र भाग थी। (तालिका-10) जनता को लगी विकिरण की डोज को 1 से 3 मिलीरैम वार्षिक के बीच मापी गई जो उस प्राकृतिक पृष्ठभूमिक विकिरण से कम प्रतिशत में है जिसे जनता बिजलीघरों के निर्माण से पूर्व भी प्राप्त कर रहे थे। और सुविधा के कारण राजस्थान परमाणु बिजलीघर शून्य सक्रिय तरल निस्सारी रिलीज की स्थिति को बनाए रखता है। सभी बिजलीघर संबंधित प्रदूषण नियंत्रण बोर्डो तथा परमाणु ऊर्जा नियामक बोर्ड की शर्तों का सख्ती से पालन कर रहे हैं।

तालिका - 10

अपशिष्ट राख में प्राकृतिक रेडियो - धर्मी तत्व

(सक्रियता - बैक्वैरेल प्रतिकिलोग्राम)

ताप - बिजलीघर	रेडियम 226	रेडियम 228	पोटेशियम 40
बन्डेल	110	173.9	521.7
बोकारो	70.3	118.4	251.6
दुर्गापुर	92.5	129.5	325.6
पलरातू	81.4	177.6	444
पलचर	81.4	155.7	181.3
परमाणु बिजलीघर	उपरोक्त सक्रियता का 20 प्रतिशत		

चालू दाबित भारी पानी रिएक्टरों के आसपास पेड, पौधों और जीव - जंतुओं को न केवल सुरक्षित रखा जा रहा है वरन वस्तुतः वे बढ़ भी रहे हैं, प्रत्येक अपने आसपास हरित पेटी तैयार कर रहा है और वन लगाने में भी सक्रिय है। राजस्थान परमाणु बिजलीघर के आसपास राणा प्रताप सागर झील में वर्ष 1971 (जब कोई इकाई बिजली पैदा नहीं कर रही थी) से लेकर 1991 तक मछलियों की पकड़ 50 टन प्रतिवर्ष से 19 गुना बढकर 500 टन प्रति वर्ष हो गई।

प्रचालनीय विश्वसनीयता : दाबित भारी पानी रिएक्टरों को आज की स्थाई तथा विश्वसनीय स्थति तक लाने के लिए कई चुनौतियों का सामना और उनका निराकरण करना पड़ा है। इस प्रकार दूसरा उद्देश्य प्राप्त किया गया।

राजस्थान परमाणु बिजलीघर की पहली इकाई कनाडा के डग्लस पाइंट यूनिट की तुलना में थोडी देर से बनी। उन्हें वस्तुतः संसार के दाबित भारी पानी रिएक्टरों के एडम तथा ऐव के नाम से पुकारा जा सकता है। प्रारंभिक अवस्थाओं में इनको संतोषजनक रुप से चलाना एक श्रमसाध्य कार्य था। डाग्लास पाइंट यूनिट को शट डाउन कर दिया गया है और उसे डिकमीशन किया जा रहा है। राजस्थान परमाणु बिजलीघर - 1 और उसके बाद की इकाइयों को विश्वसनीय तरीके से प्रचलित करने के लिए राजस्थान परमाणु बिजलीघर-2 में 800 से अधिक परिबर्तन किए गए हैं । इस विषय पर यह महसूस किया जाता है कि राजस्थान परमाणु बिजलीघर-1 ने अपने कार्य को पूरा कर लिया है।

भारतीय दाबित भारी पानी रिएक्टरोंकी व्यवहार्यता : व्यवहार्यता के तीसरे उद्देश्य को भी प्राप्त कर लिया गया है। चालू इकाइयों में बिजली उत्पादन की न केवल लागत को घटाने के लगातार प्रयास किए जा रहे हैं बल्कि भावी इकाइयों की कुल लागत को भी घटाने के प्रयास किए जा रहे हैं। तालिका-6 भारतीय दाबित भारी पानी रिएक्टरों और भारतीय ताप बिजली संयंत्रों में बिजली उत्पादन की लागत की तुलना करती है।

कोबाल्ट तथा आइसोटोप का उत्पादन : अनुसंधान और विद्युत रिएक्टरों का एक महत्वपूर्ण उपोत्पाद आइसोटोपों तथा कोबाल्ट का उत्पादन है। इस विषय पर इस संगोष्ठी में एक विशिष्ट लेख प्रस्तुत किया जा रहा है। आइसोटोप कृषि, उद्योग और अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त होता है। इनका चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोगँ होता है। इनका कुछ जीवन रक्षण कार्यकलापों में भी प्रयोग होता है। उदाहरण के तौर पर शिकागो, अमेरिका, में न्यूक्लियर चिकित्सा के माध्यम से 50% निदान और इलाज किए जाते हैं।

भावी योजनाएं : कुछ भावी परियोजनाओं और योजनाओं को मोटे रूप में नीचे वर्णित किया जाता है:

(1) फास्ट ब्रीडर रिएक्टरों सहित थोरियम टेक्नोलॉजी को और विकसित करना।

(2) प्रथम चरण के कार्यक्रम को जारी रखकर सन 2005 तक 10000 मेगावाट की क्षमता को प्राप्त करना।

(3) सुरक्षा में अधिक सुधार लाना तथा सुरक्षित रिएक्टरों को सहज रुप से विकसित करना।

(4) वर्तमान तथा नए संयंत्रों की विश्वसनीयता को और अधिक उन्नत करना। क्षमता गुणता में सुधार लाना।

(5) एक सीमांत टेक्नोलॉजी होने के कारण जीवन बढ़ाने और सुरक्षित व विश्वसनीय प्रचालन को सुनिश्चित करने के लिए नीचे दी गई सूची के अनुसार कुछ विशेष क्षेत्रों में कार्य करना अपेक्षित होगा।

   (ए) सभी इकाइयों में शीतलक ट्यूबों के स्थान पर जिर्कोनियम नायोबियम शीतलक ट्यूबें लगाना। यद्यापि यूनिटों को दो वर्ष के लिए शट डाउन करना है, यह जीवन, उच्चतर क्षमता गुणक तथा सुरक्षा को बढ़ाने के रुप में हमें लाभ देंगी.

   (बी) विसंदूषण, ट्रीशियम को हटाने, नवीनतम निरीक्षण तकनीक, कला की अद्यतन अवस्था का लाभ लेने के लिए अपरेटिंग आदि पूरी प्रणालियों में विकास करना।

(6) इकाइयों को अधिक शीघ्र तथा कम लागत में बनाना। प्रचालन की लागत को घटाना।

(7) गलनांक (फ्यूजन) टेक्नोलॉजी में अनुसंधान जारी रखना।

(8) तीन चरणीय कार्यक्रम की बाकी गतिविधियों पर जोर देते रहना।

भारतीय न्यूक्लियर विद्युत कार्यक्रम ने यूरेनियम तथा भारी पानी विनिर्माण, विद्युत उत्पादन तथा अंततोगत्वा भुक्तशेष ईंधन के पुनर्संसाधन में परिपक्वता हासिल कर स्वदेशी बनाया है। विद्युत संयंत्रों की डिजाइन, निर्माण, कमीशनिंग और प्रचालन में सक्षमता प्राप्त कर ली गई है। उदाहरण के तौर पर काकरापार परमाणु विद्युत परियोजना की पहली इकाई 7 वर्षों से थोड़े अधिक समय में पूरी हुई। जो विकसित देशों द्वारा प्राप्त अंतर्राष्ट्रीय मानकों के द्वारा भी अच्छी है। सुरक्षा तथथा पर्यावरणीय पहलुओं पर पर्याप्त बल दिया गया है। वह महसूस किया गया कि भारत को न्यूक्लियर विद्युत को महत्व देना चाहिए जो ऊर्जा का सबसे अधिक साफ तथा हितकर स्रोत है। आज तक की उपलब्धियां बताती हैं कि परमाणु ऊर्जा विभाग परिपक्वता की स्थिति तक पहुंच गया है जिसके फलस्वरूप 21 वीं सदी के पूर्वाध में भारत न्यूक्लियर के क्षेत्र में नेतृत्व करने में समर्थ होगा।

■

नाभिकीय ऊर्जा और लोक जानकारी

बी. एल. जयराम
निदेशक (पर्यावरण एवं लोक जानकारी)
एवं
एन. के. अग्रवाल
अपर मुख्य अभियंता (यांत्रिकी प्राणाली)
न्यूक्लियर पावर कार्पोरेशन, बम्बई

भूमंडल, इस पर बसे जीव - जंतु, और मानव से संबंधित पर्यावरणीय झुकाव चर्चा का विषय बन गया है। प्रत्येक उद्यम का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव के मूल्यांकन के लिए वैज्ञानिक तरीके उपलब्ध हैं। इन प्रभावों को कम करने के लिए पर्यावरण प्रबंधन योजनाएं बनाई जाती हैं। केन्द्रीय सरकार का पर्यावरण एवं वन मंत्रालय और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड आदि नियामक निकाय इन पर्यावरणीय प्रभावों की समीक्षा करते हैं और परियोजनाओं से संबंधित (विभिन्न न्यूक्लियर पावर परियोजनाओं सहित) पर्यावरणीय मंजूरी प्रदान करते हैं। अन्य नियामक निकाय विकिरण चिकित्सात्मक (रेडियोलॉजिकल) सुरक्षा के मामलों पर चर्चा करते हैं और उपस्कर प्रणालियों और ढाँचों से संबंधित डिजाइन व्यवस्था की समीक्षा करते हैं। परमाणु बिजलीघरों का प्रचालन अच्छी तरह से प्रशिक्षण प्राप्त प्रचालकों द्वारा किया जाता है। ये प्रचालक नियामक प्राधिकरणों द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं। सक्षम डिजाइन और प्रचालन गुणवत्ता सुनिश्चित करने के बावजूद भी यदि सार्वजनिक क्षेत्र में रेडियोधर्मिता फैलती है तो ऐसी अवस्था में इस समस्या से बचने और उसकी रोकथाम के लिए स्थल चयन, स्थल मूल्यांकन और संयंत्र प्रचालन तकनीकी विनिर्देशनों को अच्छी तरह से निर्धारित किया जाता है।

लोगों को जानकारी देने और उनकी गलतफहमियों और गलत जानकारियों को दूर करने के लिए विवरणिकाओं और अन्य पुस्तिकाओं के माध्यम से प्रयास किए जा रहे हैं। न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन द्वारा क्षेत्रीय जानकारी केन्द्र खोले गए हैं। ये केन्द्र विवरणिकाएं प्रदान करते हैं और श्रव्य/ दृश्य जानकारी को भी प्रदर्शित करते हैं।

यह आम चर्चा का विषय है कि नब्बे का दशक संसार और इसके निवासियों के लिए एक निर्णयकारी दशक होगा।

पर्यावरणीय विचारधाराएं क्या हैं?

- संरक्षात्मक ओजोन कवच का तेजी से पतला होना
- प्रतिदिन न्यूनतम 140 पौधों और जानवरों की जातियों का समाप्त होना।
- ऊष्मा पाशन कार्बन डाइ-आक्साइड के वायुमंडलीय स्तर काफी ऊंचे हो गए और लगातार ऊपर बढ़ रहे हैं।
- पृथ्वी की सतह गर्म होती जा रही है ।
- जंगल प्रति वर्ष 170 लाख हेक्टेअर की दर से समाप्त हो रहे हैं।
- संसार की जनसंख्या प्रति वर्ष 90 लाख से अधिक बढ़ रही है।
- शहर के पर्यावरण में प्रदूषण के स्तर में वृद्धि।

क्या ये हमारे भविष्य के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं? क्या यह समाज के कई तत्वों को पुनर्निर्माण के लिए पुकार रहे हैं ? कुछ संकेत इस प्रकार हैं :

- जीवाश्म ईंधन से सौर ऊर्जा की ओर बढ़ना।

- मोटर गाड़ियों का प्रयोग कम कर नए परिवहन तंत्रों का विकास करना।
- गरीबों को अवसर दिलाने के लिए अमीरों के उपभोग संसाधनों में कमी करने की मांग करना ?

सिक्के का दूसरा पहलू क्या है?

- क्या हम मनुष्य की अपूर्ण जरूरतों की सूची बनाएं?
- बच्चों में कुपोषण ।
- पीने के लिए सुरक्षित अच्छे पानी का न मिलना।
- बच्चों के लिए अपर्याप्त प्रतिरक्षण कार्यक्रम।
- प्रजनन स्वास्थ्य समस्याओं के कारण महिलाओं की मृत्यु में काफी वृद्धि।
- विकासशील देशों में निरक्षरता का स्तर ऊंचा होना।

पर्यावरण को अधिक हानि पहुंचाने वाले कुछ धनी देश अवश्य पहचाने जा सकते हैं। भारत के कुछ भागों के मौजूदा स्थिति का अवलोकन भी असंगत न होगा।

- किसान रोज का खाना पकाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठा करते रहते हैं।
- चरवाहे पशुओं को सार्वजनिक स्थलों पर भेज रहे है।
- टोकरी बनाने वाले पास के जंगल से बांस - बल्ली इकट्ठा कर रहे हैं।
- कबीले मांस के लिए तीतर का शिकार कर रहे हैं, इत्यादि।

मनुष्य प्राचीन काल से ही जिन प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहा है वे हैं - भूमि, हवा, पानी, आकाश और ऊर्जा। ये एक दूसरे से संबंधित हैं। प्रकृति इन सबमें एक बहुत अच्छा संतुलन बनाए रखती है। मनुष्य औजार, उपकरण, हथियार बनाने की योग्यता के कारण जानवरों से ऊपर उठा और जानवरों की खालों का प्रयोग करते हुए प्रतिकूल जलवायु में रहने में समर्थ हुआ। परिणाम यह हुआ कि भारी संख्या में जानवरों की जातियाँ समाप्त हो गईं।

पर्यावरण जीवित तथा मृत तरीकों का प्रतिनिधित्व करता है। कृषि विकास के माध्यम से हुई मनुष्य की प्रगति ने वनस्पति और प्राणि जगत को प्रभावित किया। कृत्रिम सिंचाई के विकास ने पारिस्थितिक दशाओं में परिवर्तन लाना प्रारंभ किया। यहाँ तक कि पुस्तकों के माध्यम से शिक्षा के प्रसार से अभिप्राय या वनों का कागज के लिये उपयोग।

अब हम ऊर्जा की ओर मुड़ते हैं जो मनुष्य को ऊष्मा और प्रकाश देने के लिए उपयोगी है। प्रेरक शक्ति और विद्युत उत्पादन आधुनिक ऊर्जा के रुप हैं। जैसे जैसे ऊर्जा का विकास किया जा रहा है, पंचभूत तत्वों का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ता जा रहा है। विकास, उद्योग और पारिस्थितिक विज्ञान तीनों साथ - साथ चलने चाहिए। पृथ्वी की क्षमता अनुपोषक और स्वांगीकरक है। यह आर्थिक और पारिस्थितिक विज्ञान संतुलन को स्पष्ट करता है।

सभी राष्ट्र आर्थिक कार्यकलाप के माध्यम से रहन - सहन के उच्च स्तर और बेहतर जीवन के लिए प्रयासरत हैं। अधिकांश मनुष्यों ने प्राकृतिक परिसरों की अपेक्षा कृत्रिम परिसरों में रहना प्रारंभ कर दिया है। विद्युत ने इस मानव - निर्मित परिसर में ऐतिहासिक महत्वपूर्ण रचनात्मक योगदान किया है। इस तथ्य से सभी सहमत होंगे कि ऊर्जा उत्पादन में सुधार होना चाहिए। साथही विद्युत ऊर्जा की मांग बढ़ रही है।

पर्यावरण संबंधित कुछ तथ्य

भूमि	- कम है,
पानी	- पेय जल कम है
	उद्योग और शहरीकरण से जल प्रदूषण निरंतर जारी
हवा	- उद्योग और वाहनों से प्रदूषण बढ़ रहा है
प्रभाव	- जलवायु में परिवर्तन
	- ओजोन कवच का पतला होना
	- ग्रीन हाउस प्रभाव
	- अम्ल वर्षा

भारत की वर्तमान और विशिष्ट परिस्थितियां

कोयला, ऊर्जा उत्पादन का सबसे बड़ा स्रोत है। भारत में इसका पर्याप्त भंडार है, लेकिन यह असमान रुप से

बंटा हुआ और अधिकांशत: देश के पूर्वी और मध्यवर्ती भाग में अवस्थित है। भारतीय कोयले में राख और नमी अधिक मात्रा में होती हैं, इससे कोयला ज्यादा मात्रा में खर्च होता है और इससे ऊर्जा संयंत्र में विशिष्ट डिजाइन/ उपस्करों की आवश्यकता होती है। इसके भारी मात्रा में दूर तक (पूर्व से पश्चिम) लाने-ले जाने से कोयले की लागत बढ़ती है। कोयले पर आधारित ऊर्जा संयंत्रों से व्यापक रुप से निकलने वाली हवा, पानी और ठोस अपशिष्ट पदार्थ इत्यादि के लिए विश्वस्तरीय कड़े विधान और विनियम बनाए गए। इसके अलावा अधिक लागत की टेक्नोलॉजी जैसे कोयला - गैसीयकरण / संयुक्त चक्र और फ्लूडाइज्ड बेड आदि निश्चित रुप से कोयले पर आधारित ऊर्जा उत्पादन की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती हैं।

ऊर्जा उत्पादन के लिए प्राकृतिक गैस का प्रयोग भी सीमित है। यह इसलिए है कि गैस पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है और इसकी लागत भी ज्यादा है। अत: विद्युत उत्पादन में अज्वलनशील ईंधन का उपयोग आकर्षक हो जाता है। नवीनीकरण योग्य स्रोतों के उपयोग का मामला उठ रहा है। इसमें सौर ऊर्जा प्रमुख है। यह बिजली उत्पादन को विकेंद्रीकृत करने और स्थानीय उपयोग के लिए पर्याप्त है। भारत के कुछ तटीय क्षेत्रों में पवन ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार ये स्रोत परंपरागत विशाल स्रोतों के लिए प्रतिपूरक हो सकते हैं।

अज्वलनशील स्रोत के रुप में जल विद्युत उत्पादन एक अच्छा साधन है। इसकी अपनी सीमाएं हैं। भौगोलिक दशाओं, अंतर-राज्य विवाद, सिंचाई और विद्युत ऊर्जा के लिए पानी की मांग पर कलह, वनों और बड़े उपजाऊ भू - भाग के जलमग्न होने की जटिलताएं जैसी कठिनाइयां हैं। इन्हीं कठिनाइयों ने इस महत्वपूर्ण नवीनीकरण योग्य ऊर्जा स्रोत के दोहन में रुकावट खडी कर दी है जबकि इस स्रोत से कोई उत्सर्जन या निकास नहीं है।

नाभिकीय (न्यूक्लियर) ऊर्जा दहन पर आधारित बिजली उत्पादन का एक विकल्प है। 28 देशों में चालू 423 रिएक्टरों ने तकनीकी सामर्थ्य और आर्थिक क्षमता को अनुप्रमाणित किया है। अमरीका में 112 रिएक्टरों और लगभग 1,00,630 मेगावाट के विशालतम कार्यक्रम हैं। फ्रांस की संस्थापित क्षमता 55,776 मेगावाट है जो उसकी कुल बिजली उत्पादन का 74.5% होता है। एशिया क्षेत्र में जापान ने 30,917 मेगावाट क्षमता संस्थापित की है। साउथ कोरिया ने 7,220 मेगावाट और ताइवान ने 4,690 मेगावाट क्षमता संस्थापित की है। सोवियत संघ के पास 34,673 मेगावाट क्षमता के 45रिएक्टर हैं। भारतीय न्यूक्लियर ऊर्जा कार्यक्रम के अंतर्गत वर्तमान में 1,500 मेगावाट के रिएक्टर चालू हैं, 1,320 मेगावाट के निर्माणाधीन हैं, और 1,000 मेगावाट के रिएक्टर की मंजूरी प्राप्त है।

नाभिकीय ऊर्जा के बारे में लोगों के मत भिन्न हैं। कुछ लोग चिकित्सा में विकिरण या कृषि और उद्योग में आइसोटोप के प्रयोग का समर्थन नहीं करते। उनको यह बात स्पष्ट नहीं है कि न्यूक्लियर पावर रिएक्टर का परमाणु बम से कोई संबंध नहीं हैं और इनसे किसी प्रकार का खतरा नहीं है। इस कारण यहां न्यूक्लियर पावर के विकास पर चर्चा आवश्यक है। संचार के साधन और विषय क्या हैं ?

वर्तमान में प्रत्येक परियोजना के प्रस्ताव की नियामक समीक्षा अनिवार्य बन गई है। इसमें स्थल चयन, स्थल निर्धारण, प्रवेश और निर्माण सुविधाएं और विद्युतीय शक्ति निष्क्रमण इत्यादि आते हैं। भूमि की उपलब्धता और भूमि प्रयोग, जल शीतल करने की सुविधा, अच्छी नींव की स्थितियाँ इत्यादि आधारभूत नियामक हैं। अन्य स्थलीय मार्गदर्शनों में प्राकृतिक घटना जैसे भूकंप, बाढ़ और अन्य प्रकार की प्राकृतिक विपदाएं समाविष्ट हैं। मानव - निर्मित दुर्घटनाएं जैसे हवाई दुर्घटना, खदान, विस्फोट, क्षयकारी, रासायनिक और विषैले तत्वों का भंडारण अन्य महत्वपूर्ण पहलू हैं। जनसंख्या - वितरण और मौसम विज्ञान जो आपातकालीन स्थिति से निपटने की तैयारी में सहायक होते है, अन्य महत्वपूर्ण पहलू हैं। स्थल की भौमिकी और भूमिगत जल पट्टी इत्यादि का विस्तृत अध्ययन भी इनमें शामिल है।

न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन के तीन निदेशालय साथ - साथ कार्य करते हैं :-

परियोजना निदेशालय : यह स्थल की प्राप्ति और आधारित संरचना की सुविधाओं के विकास के लिए उत्तरदायी है। परियोजना से प्रभावित व्यक्तियों के पुनर्वास और संबंधित राज्य सरकार से समन्वय स्थापित करते हुए समस्त पहलुओं पर कार्य करता है।

अभियांत्रिकी निदेशालय: यह परमाणु ऊर्जा नियामक बोर्ड द्वारा गठित संरक्षा-समीक्षा समिति के माध्यम से मूलत: प्रणाली तथा उपस्कर डिजाइन प्रक्रिया और विभिन्न डिजाइन दस्तावेजों के अनुमोदन के लिए उत्तरदायी है। यह ग्रुप केंद्रीय जल विद्युत अनुसंधान केंद्र, भूकंप इंजीनियरिंग विभाग, राष्ट्रीय समुद्र - विज्ञान संस्थान, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान और अन्य विशेषज्ञों से परामर्श लेता है।

पर्यावरण और लोक जानकारी निदेशालय : यह स्थल अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी है। भारतीय भू वैज्ञानिक सर्वेक्षण, भारतीय मौसम विज्ञान विभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, परमाणु खनिज विभाग और पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन संगठनों से परामर्श लेने का कार्य करता है। राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और पर्यावरण एवं वन मंत्रालय नामक नियामक निकायों से मंजूरी प्राप्त करने से पूर्व समस्त तकनीकी प्रश्नों का जवाब न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन के इस निदेशालय द्वारा दिया जाता है।

पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन में क्या शामिल होता है?

(i) नियंत्रण क्षेत्र के बाहर पर्यावरणीय संसाधनों के समुचित उपयोग में बिजलीघर के प्रचालन हस्तक्षेप नहीं करते।

(ii) पारिस्थितिक संतुलन में कोई हानिकर प्रभाव तथा बाधा उत्पन्न नहीं होती।

(iii) पर्यावरण में छोड़ी जाने वाली विकिरण सांद्रता इतनी मात्राओं में होती हैं कि वे पारिस्थितिक तंत्र को न तो प्रभावित करते हैं और न ही तंत्र के लिए हानिकारक होते हैं।

भारतीय न्यूक्लियर पावर कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएं

भारत में परमाणु ऊर्जा संबंधित कार्य चालीस के दशक के मध्य में प्रारंभ किए गए। परमाणु ऊर्जा आयोग के बनने के साथ ही कार्य को बल मिला। भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, न्यूक्लियर पावर तकनीकी से संबंधित अनुसंधान और विकास कार्य में जुटा हुआ है।

भारत में न्यूक्लियर पावर रिएक्टरों से संबंधित दो प्रकार की तकनीकियां उपलब्ध थीं। न्यूक्लियर पावर संयंत्रों के प्रचालन और अनुरक्षण का अनुभव प्राप्त करने और न्यूक्लियर पावर की आर्थिक व्यवहार्यता को साबित करने के दृष्टिकोण से तारापुर में उबलते पानी का बिजलीघर (जनरल इलेक्ट्रिक, अमरीका द्वारा टर्न-की आधार पर निर्मित) स्थापित किया गया।

एक अन्य विकल्प के रुप मे दाबित भारी पानी रिएक्टर (पी. एच. डब्ल्यू. आर. टेक्नोलॉजी) थी जो कि भारत में न्यूक्लियर पावर के विकास के प्रथम चरण का मुख्य आधार थी। इसके अलावा, भारी पानी रिएक्टरों के लिए विखंड्य सामग्री का अच्छी तरह से उपयोग करना लाभप्रद था। ऐसी प्रणाली का चयन करना था जो देशज स्रोतों से समर्थित हो सकती थी और जिसके घटकों का विनिर्माण देश में किया जा सकता था। विद्युत विकास कार्यक्रम को तीन चरणों में प्रारंभ करना था। पहला चरण दाबित भारी पानी रिएक्टर (पी. एच. डब्ल्यू. आर) दूसरा फास्ट ब्रीडर और तीसरा चरण थोरियम का उपयोग।

विद्युत परियोजना अभियांत्रिकी प्रभाग बाद में न्यूक्लियर पावर बोर्ड के नाम से जाना गया, जो भारत में न्यूक्लियर बिजलीघरों की डिजाइन, संरचना, निरीक्षण, निर्माण और प्रचालन के लिए उत्तरदायी था। सितंबर, 1987 से भारत में न्यूक्लियर विद्युत के विकास के समस्त पहलुओं के प्रबंधन के लिए न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन उत्तरदायी हो गया है।

भारत ने पिछले तीन से अधिक दशकों में देश में ही विभिन्न उपस्करों, न्यूक्लियर रिएक्टर उपस्करों एवं न्यूक्लियर बिजलीघरों के निर्माण की पूर्ण क्षमता प्राप्त कर ली है। भारत में परंपरागत उपस्करों के बारे में पर्याप्त विशेषज्ञता और क्षमता विद्यमान है। तारापुर, राजस्थान, कलपाक्कम, नरोरा की चालू इकाइयों की क्षमता और उपलब्धता गुणक संतोषजनक है। प्रचालन और अनुरक्षण के संबंध में इन

संयंत्रों में प्राप्त अनुभवों ने बाद के संयंत्रों की डिजाइन में सुधार लाने में सहायता की।

पर्यावरणीय संगतता को लेकर न्यूक्लियर पावर के बारे में लोगों का मत सकारात्मक है लेकिन न्यूक्लियर अपशिष्ट उत्पादन और उसके प्रबंधन के बारे में लोगों का काफी नकारात्मक मत होने से न्यूक्लियर विद्युत कार्यक्रम में देरी हो रही है। अमेरिका की थ्री माइल आइलैंड (टी. एम. आई) और रुस की चेरनोबिल (यूक्रैन) दुर्घटना से लोग अधिक चिंतित हैं। टी. एम.आई. के मामले में डिजाइन के लक्ष्यों के अनसार संरोधन प्रणाली ने कार्य किया और उक्त घटना से जनता और पर्यावरण को कोई खतरा नहीं हुआ जबकि दूसरी ओर चेरनोबिल दुर्घटना डिजाइन की अपर्याप्तता और मानवीय चूक के कारण घटित हुई। भारत ने पर्यावरण प्रभाव के संदर्भ में अपशिष्ट प्रबंधन के महत्व को बहुत पहले जान लिया था। भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने तीन दशक पहले ही उपयुक्त उपचार विधियों और संरक्षा निपटान अभ्यासों के विकास पर कार्य करना शुरू कर दिया था। चालू बिजली संयंत्रों सहित न्यूक्लियर ईंधन चक्र के सभी चरणों से रेडियोधर्मी अपशिष्टों और भुक्तशेष ईंधन पुनर्संसाधन सुविधाओं के संचालन के लिए प्रभावशाली प्रबंधन योजनाएं अच्छी तरह से स्थापित हैं। वे पर्यावरण बचाव के लिए कठोरतम अनुबंधों को पूरा करती हैं।

न्यूक्लियर बिजली संयंत्र को जल परियोजनाओं की तुलना में बहुत कम तथा ताप बिजली संयंत्रों की तुलना में कम भूमि की आवश्यकता होती है। संयंत्र के 1.6 कि. मी. तक की परिधि में एक शून्य क्षेत्र का निर्माण किया जाता है। इस क्षेत्र का केवल 12 - 15% भाग संयंत्र भवनों और ढाँचों को स्थापित करने के लिए आवश्यक होता है। शून्य क्षेत्र के घेरे के भीतर शेष भाग को हरी पट्टी के विकास में उपयोग में लाया जाता है। शून्य क्षेत्र के चारों ओर संयंत्र से 5 कि. मी. की परिधि तक बंजर बनाया जाता है। इस क्षेत्र में लोगों के कार्यकलापों को नियंत्रित किया जाता है केवल प्राकृतिक उपज ही पैदा होने दी जाती है। बिजलीघर के प्रचालन से किसी अनचाही दुर्घटना से कम से कम लोगों पर प्रभाव पड़े इस दृष्टिकोण से 30 कि. मी. तक की परिधि में जनसंख्या के बसने की ओर भी ध्यान दिया जाता है। यह प्रभावशाली आपातकालीन कार्रवाईयों में भी सहायक होता है।

शिकागो में फर्मी के पहले परमाणु पाइल (1942 में क्रांतिक) ने प्रदर्शित किया कि न्यूक्लियर ऊर्जा का प्रयोग शस्त्रों के निर्माण या विद्युत उत्पादन के लिए ऊष्मा पैदा करने में किया जा सकता है। चिकित्सा विकिरण थेरेपी और कृषि और उद्योग में आइसोटोपों के प्रयोग के लिए लोक स्वीकृति प्राप्त हो गई है। यह बात हतोत्साहित कर रही है कि कतिपय इच्छुक दलों द्वारा फैलाई जा रही गलत सूचनाओं से जनता प्रभावित हो रही है। यह स्पष्ट नहीं है कि ये टेक्नोलॉजी आंदोलन के विरुद्ध हैं तथा किसी प्रकार के उद्योग को जोखिम का स्रोत मानते हैं। लोगों को यह समझना चाहिए कि न्यूक्लियर ऊर्जा एक ऐसा उद्योग है जो (1) उत्तम प्रमाणित फीड बैक जानकारी देता है, (ii) विज्ञान और टेक्नोलॉजी में उत्तमता के लिए ऐसी चुनौतियाँ प्रदान करता है जो अनुसंधान और विकास में उत्प्रेरक हैं, (iii) अपशिष्ट प्रबंधन को नियोजित करने में प्रथम उद्योग रहा है, तथा (iv) लोक सुरक्षा में रूचि दिखाने वाला प्रथम उद्यम है। ■

पारंपरिक ऊर्जा स्रोत

मोहन लाल शिशू
अध्यक्ष एवं महाप्रबंधक
बाम्बे सबर्बन इलेक्ट्रिक सप्लाई लिमिटेड
बंबई

देश की प्रगति और समृद्धि के लिये विद्युत ऊर्जा का पर्याप्त उत्पादन एक अनिवार्यता है । नदियों पर बांध बनाकर जल-विद्युत, कोयले और गैस का उपयोग करके ताप-विद्युत और परमाणु शक्ति से परमाणु-विद्युत का उत्पादन होता है। इन सभी विधियों से विद्युत उत्पादन में, पर्यावरण और मानवीय सुरक्षा पर विशेष ध्यान रखना अति आवश्यक है। जल विद्युत की बड़ी-बड़ी योजनाओं में बहुत बड़े क्षेत्र का संतुलन प्रभावित होता है । ताप-विद्युत केन्द्रों से पर्यावरण का प्रदूषण बढ़ता है । प्रदूषण नियंत्रण के अनेक उपकरण आज उपलब्ध हैं जिनका अनिवार्य रूप से प्रयोग किया जाना चाहिये । पर्यावरण की रक्षा एवं मानव सुरक्षा के उपायों की जन-सामान्य को जानकारी देना भी बहुत जरूरी है ताकि सामाजिक चेतना और सहयोग के साथ विद्युत उत्पादन का विकास हो सके ।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई है कि हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद ने इस संगोष्ठी का आयोजन किया है और मुझे इसमें सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ है ।

विज्ञान के विषय पर हिन्दी में परिचर्चा का आयोजन वास्तव में बहुत महत्व रखता है । यदि मैं कहूं कि आज की परिस्थिति में यह साहसी पहल है तो कुछ बेजा न होगा ।

प्रारंभ में मनुष्य ऊर्जा का प्रयोग साधारण रीति से किया करता था । जंगलों से लकड़ी काटकर ईंधन के काम में लगाता था । इसी भांति गोबर तथा कोयले का उपयोग करता था। पशुओं को हल जोतने में लगाता था । तब जीवन साधारण था, इतना जटिल नहीं हुआ था जितना आज है ।

औद्योगीकरण की गति बढ़ने से और यंत्रों के बढ़ते प्रयोग से प्रारंभिक सुविधाएं अपर्याप्त जान पड़ी । अत: बड़े पैमाने पर खनिज तेल और कोयले के खानों की खोज तथा इनके प्रयोग की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित हुआ । साथ ही साथ यंत्रों के बढ़ते हुए प्रयोग के कारण एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता का अनुभव होने लगा जो सुविधापूर्वक उपयोग में लाया जा सके । यह माध्यम विद्युत या बिजली के रूप में स्वीकृत हुआ ।

जल विद्युत

जल विद्युत बिजली उत्पन्न करने का सबसे सुगम तथा स्वच्छ तरीका है। जल स्रोत का प्रतिवर्ष वर्षा के कारण नवीनीकरण होता रहता है । इसके विपरीत कोयले के भंडार प्रयोग में लानेसे घटते जा रहे हैं । यह ऊर्जा शक्ति प्रकृति की देन है । इसकी उपलब्धता हमारे बस में नहीं है । यह उसी स्थान पर उपलब्ध है जिसे प्रकृति ने नियत किया है। इस शक्ति को उपयोग में लाने के लिये बड़े बांधों की आवश्यकता होती है । इनके निर्माण से प्राय: पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है । बहुत सी उपजाऊ जमीन, जंगल तथा गांव इन बांधो के कारण पानी में डूब जाते हैं । बहुत से ग्रामवासी प्राय: निर्वासित और बेरोजगार हो जाते हैं। बांधों के निर्माण में प्राय: बहुत खर्चा आता है यद्यपि उसके बाद विद्युतउत्पादक यंत्रों का परिचालन व्यय बहुत सस्ता पड़ता है । चूंकि नदियां बहुतसे राज्यों से गुजरकर जाती हैं, इस ऊर्जा शक्तिको इस्तेमाल में लाने के लिये इन सब राज्यों की सहमति आवश्यक होती है। यह आवश्यकता प्राय: एक अड़चन खडी करती है, जिस को सुलझाने में बहुत समय लगता है । इन सब कारणों से जल विद्युत की वृद्धि ताप विद्युत की तुलना में कम होती जा रही है । यह एक चिंता का विषय है ।

विद्युत वितरण प्रणाली में मांग के परिवर्तन पर नियंत्रण रखने में जलविद्युत विशेष भूमिका निभाती है । यह परिचालन में बहुत सस्ती है और इस ऊर्जा का हर वक्त नवीनीकरण होता है। इसलिये योजना में यही पहल रहती है कि कैसे जल ऊर्जा का ज्यादा से ज्यादा उपयोग हो ।

ताप बिजली केंद्र

ताप बिजली के केन्द्र जो भाप से चलनेवाले यंत्रों का प्रयोग करते हैं, कोयला, खान तेल, तथा गैस का इस्तेमाल करते हैं । तेल और गैस का उत्पादन देश में बहुत सीमित है, और इसके लिये हम आयात पर निर्भर है । इसकी तुलना में देशमें कोयले के पर्याप्त भंडार हैं, विशेषकर पूर्वी तथा पश्चिमी प्रांत में । परंतु यहां समस्या है कि कोयला प्राय: घटिया दर्जे का है जिसमें राख की मात्रा 40-50 प्रतिशत है।

देश में कोयला उत्पादन का उद्योग बहुत फैला हुआ है और रोजगार का एक बड़ा स्रोत है। बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिये हम लंबे समय तक कोयले से विद्युत उत्पादन पर निर्भर रहेंगे । इसी लिये यह आवश्यक हैं कि इन केन्द्रों से होनेवाले प्रदूषण की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित रहे । आजकल ऐसे उपकरण उपलब्ध हैं जो प्रदूषण से सुरक्षा देने में समर्थ है जैसे ई. एस. पी. (Electro Static Precipitator) जो लगभग 98-99 प्रतिशत राख को अलग करने की क्षमता रखता है । सौभाग्य से भारत में पैदा होनेवाले कोयले में गंधक की मात्रा विदेशी कोयले की तुलना में बहुत कम है, प्राय: 0.5 से 0.6 प्रतिशत तक, कहीं कहीं 2 प्रतिशत तक औद्योगीकरण की गति बढ़ने से विद्युत की मांग बढ़ती जा रही है। अत: कोयले पर आधारित 1000-2000 मिलियन वाट क्षमता के बड़े बड़े विद्युत केन्द्र स्थापित हुए हैं तथा और भी हो रहे हैं । इसलिये यह आवश्यक है कि प्रदूषण पर कड़ी नजर रखी जाये । संनियंत्रण और अधीक्षण अनुश्रवण केन्द्र (Monitoring Station) सामान्य रूप से अनिवार्य बना दिये गये हैं। ताकि यदि प्रदूषण के सीमा रेखा से बाहर जाने की संभावना हो तो समय पर आवश्यक उपाय किये जा सकें।

परमाणु शक्ति पर आधारित विद्युत केंद्र

परमाणु शक्ति के आगमन से मानव जीवन में एक जटिल समस्या उत्पन्न हुई है । जहां इस शक्ति स्रोत को मनुष्य की सेवा में लाने की एक असीम संभावना उत्पन्न हुई वहां धरती पर जीवन के पूर्ण संहार की संभावना भी खड़ी हो गई। मानव सभ्यता किस ओर बढ़ती है यह समय ही बता सकता है । हिरोशिमा और नागासाकी में परमाणु बम गिरनेसे इस परमाणु शक्ति की सर्वनाशी क्षमता प्रमाणित हुई है । दूसरी ओर यह शक्ति मानव जीवन की समृद्धि में भी काफी क्षमता रखती है, यह भी सिद्ध हुआ है ।

विश्व भर में परमाणु शक्ति पर आधारित बहुत से विद्युत केन्द्र स्थापित हुए हैं । अनुमान है कि लगभग 17 प्रतिशत विद्युत उत्पादन इस परमाणु शक्ति से होता है। यद्यपि आरंभ में स्थापना का खर्चा ज्यादा है तथापि परिचालन का खर्चा तुलना में कम है । इसके अतिरिक्त कोयले तथा तेल के भंडार घटते जा रहे हैं। इसीलिये अनिवार्य है कि ऊर्जा का एक और माध्यम उपयोग में लाया जाये। और ईधनों की तुलना में परमाणु ईंधन की क्षमता कही अधिक है । मेरे उपस्थित मित्र जो परमाणु केंद्र से संबंधित हैं। इस पर प्रकाश डालने में अधिक योग्यता रखते हैं । कई देशों में, जैसे फ्रान्स में, इन केन्द्रों की कार्यकुशलता तथा सुरक्षा के नियमों का पालन उल्लेखनीय है । परमाणु विद्युत उत्पादन की दर कोयले पर चलनेवाले केन्द्रों की दर से विशेष फर्क नहीं रहते है, लेकिन जहां स्थापना का आरम्भ का व्यय ज्यादा है वहां परिचालन का व्यय कम है ।

विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में एक विशेष पहलू पर ध्यान देना आवश्यक है । यह है प्रदूषण तथा सुरक्षा का । लोगो में निसंदेह परमाणु उत्पादन केन्द्रों के बारे में संकोच है , शंका है, भय है । विश्व भर में इस बारे में वादविवाद जारी है । कई देशों में ऐसे संयंत्रों के निर्माण पर पाबंदी लगायी गयी है । कई दुर्घटनायें हुई है जो कि इस शंका या भय का कारण बनी हैं । चेर्नोबिल का दुर्घटना के दृश्य लोगों के मन में छाये हुए हैं । कितना क्षेत्रफल क्षतिग्रस्त हुआ , कितने लोग जीवन भर के लिये विकलांग बन गये । इतना ही नहीं आनेवाली पीढ़ियो पर भी इसके भीषण प्रभाव के प्रमाण है । जहां ऐसी भीषण दुर्घटना अपने प्रकार की एक है वहां कई छोटे प्रकार की दुर्घटनायें भी हुई हैं जिनसे लोगों के मन में शंका उत्पन्न होना अनिवार्य था जहां कहीं भी परमाणु शक्ति के उपकरणों का उपयोग होता है विकिरण अनिवार्य है। पर सुरक्षा के लिये इसकी मात्रा सुरक्षा नियमों के अंदर सीमित रखी जा सकती है। जब कभी सुरक्षा के प्रबंधों में बाधा आती है और बाहर विकिरण सीमा से अधिक बढ़ता है, तब मनुष्य का

(शेष भाग पृष्ठ 99 पर)

ऊर्जा संयंत्रों में सुरक्षा

सुधाकर सोमण
परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद
बंबई - 400 094.

हर उद्योग के किसी न किसी क्षेत्र में कुछ न कुछ जोखिम का होना एक सामान्य बात है, इसलिए औद्योगिक संयंत्रों में सुरक्षा उपायों पर लगातार ध्यान देना अनिवार्य है। ऊर्जा उत्पादन सबसे महत्वपूर्ण उद्योग है, क्योंकि अन्य सभी उद्योग ऊर्जा पर निर्भर करते हैं। ऊर्जा उत्पादन के स्रोत मुख्यतया तीन प्रकार के हैं :(i) जीवाश्मी ईंधन पर आधारित, (ii) नाभिकीय ऊर्जा, (iii) नवीकरणीय स्रोत। संयंत्रों के निर्माण के दरमियान जिन जोखिमों का सामना करना होता है वे सभी स्रोतों में उभयनिष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्रोत के अपने विशिष्ट जोखिम हैं। जीवाश्मी ईंधनों में कोयले की भूमिका मुख्य है। इसका मुख्य जोखिम वायु प्रदूषण है जो आज एक ज्वलंत समस्या बन गई है। SO_2, CO, CO_2, NO_2, तथा पालिसाइक्लिक पदार्थों के उत्सर्जन से होने वाली हानि से, आज शिक्षित जन साधारण चिन्तित हैं। हरित गृह प्रभाव, जिससे भूमंडल के तापक्रम बढ़ने की आशंका है, इस संबंध में एक बहुचर्चित विषय बन गया है। जीवाश्मी ईंधन - ऊर्जा की तुलना में नाभिकीय ऊर्जा एक स्वच्छ स्रोत के रुप में उभरी है। संयंत्रों का प्रचालन सामान्य रहने पर इसके जोखिम नगण्य हैं। परन्तु दुर्घटना की स्थिति में रेडियोधर्मिता के फैलाव से होने वाले सम्भावित दूरगामी कुप्रभावों को लेकर जन मानस में इसके प्रति शंका व्याप्त है। नवीकरणीय स्रोतों में जलविद्युत प्रमुख है। यह भी एक स्वच्छ स्रोत है। सुरक्षा व जनसाधारण पर पड़नेवाले प्रभावों के दृष्टिकोण से, विशालकाय बाँधों से भूमि का डूबना व यदाकदा बाँधों के टूटने का भय मुख्य समस्यायें हैं। अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में सौर ऊर्जा को काफी महत्व दिया जा रहा है, परन्तु सौर ऊर्जा का अंशदान अभी तक नगण्य रहा है।

नाभिकीय पारियोजनाओं में सुरक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रत्येक परियोजना के लिए सुरक्षा संबंधी जांच पड़ताल कई स्तरों पर की जाती है। यह स्तर हैं - स्थल चयन, अभिकल्पन, निर्माण, अभिचालन, प्रचालन व अनुरक्षण। स्थल चयन में प्राकृतिक विपदाओं की संभावना जैसे भूंकप, बाढ़, चक्रवात, मानव प्रेरित दुर्घटनाऐं जैसे वायुयान ध्वंस, विस्फोट आदि, स्थानीय जलवायु, भूमिगत जलस्तर व आबादी का घनत्व, इन सभी बातों की समालोचना सम्मिलित होती हैं। संयंत्र के अभिकल्पन में गहन सुरक्षा का सिद्धान्त अपनाया जाता है। निर्माण में प्रयोग आने वाले सभी हिस्सों का गुणवत्ता परीक्षण किया जाता है। सुचारू प्रचालन के लिए प्रचालकों को आधुनिक प्रशिक्षण दिया जाता है। परमाणु ऊर्जा के सुरक्षा उपायों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अन्य प्रकार के ऊर्जा स्रोतों पर आधारित संयंत्रों की स्थापना में भी इसी प्रकार की सुरक्षा समीक्षा की जानी चाहिए।

ऊर्जा का उपयोग कई रूपों में होता हैं। परन्तु जब हम ऊर्जा संयंत्रों की बात करते हैं तो इसका अर्थ विद्युत उत्पादक संयंत्रों से होता है। विद्युत ऊर्जा का उत्पादन करने वाले संयंत्रों को तीन खण्डों में विभाजित किया जाता सकता है:

1. ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत जैसे जल या वायु प्रवाह, जीवाश्मी ईंधन इत्यादि ।

2. टर्बाइन, जिसको प्राथमिक ऊर्जा के द्वारा घुमाया जाता है।

3. विद्युत जनित्र जो कि टर्बाइन की धुरी से जुड़ा रहता है और बिजली पैदा करता है।

ऊर्जा उत्पादन के सभी स्रोतों में उपर्युक्त प्रथम खण्ड को छोड़ कर दोनों खण्ड समान प्रकार के हैं। इसलिए जब हम सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि ये पहलू स्रोतों के प्रकार पर निर्भर करते हैं। विद्युत ऊर्जा उत्पादन के स्रोतों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता (i) जीवाष्मी ईंधन पर आधारित, (ii) नाभिकीय ऊर्जा , तथा (iii) नवीकरणीय स्रोत।

स्रोत दो प्रकार के है :

(क) पारम्परिक - जिसके अन्तर्गत जल ऊर्जा आती है।

(ख) अपारम्परिक-जिसके अन्तर्गत वायु, सौर, भूता पीय,ज्वारभाटा तथा जैविक ऊर्जा स्रोत आते हैं। बड़े उद्योगों को चलाने में अपारम्परिक स्रोतों का योगदान अब तक नगण्य है।

भारत की वर्तमान विद्युत उत्पादन क्षमता 60,000 मैगावाट है। इस समय इसका लगभग 60% कोयले से 30% जल विद्युत और 2.5% नाभिकीय स्रोत से प्राप्त होता है। यद्यपि जीवाष्मी ईंधनों में खनिज तेल व गैस भी सम्मिलित हैं। परन्तु इनका उपयोग विद्युत उत्पादन में नहीं किया जा सकता क्योंकि इनके प्राकृतिक भण्डार सीमित हैं तथा इनकी आवश्यकता यातायात व पेट्रोरसायन उद्योंगों की पूर्ति के लिए अधिक है। जीवाश्मी ईंधनों में कोयला ही ऐसा स्रोत है जिसका उपयोग बड़ी मात्रा में विद्युत उत्पादन के लिए हो सकता है। वास्तव में आज विश्वभर में बिजली का उत्पादन सर्वाधिक कोयले से ही हो रहा है। परन्तु विश्व के कुछ विकसित देश ऐसे भी हैं जहां नाभिकीय ऊर्जा तकनीक उत्पादन का मुख्य स्रोत बन चुकी है।

जल विद्युत

पर्यावरण की स्वच्छता के दृष्टिकोण से जल विद्युत पर आधारित संयंत्र एक स्वच्छ स्रोत है। इनका महत्व इसलिए भी अधिक है कि ये संयंत्र बड़ी मात्रा में बिजली तो पैदा करते ही हैं पर साथ ही साथ विद्युत उत्पादन का यह ढ़ंग सबसे सस्ता भी है। इसका मुख्य ऋणात्मक पहलू पारिस्थितिकी पर हानिकारक प्रभाव है। बाँध, जलाशय और नहरों के निर्माण से परियोजना क्षेत्र की पारिस्थितिकी पर अनेक कुप्रभाव पड़ते हैं। कई बार काफी बड़ा क्षेत्र जल मग्न हो जाता है। जिससे, कभी कभी, कई बस्तियों को वहाँ से हटाना पड़ता है तथा वन सम्पत्ति का विनाश भी होता ही है। बड़ी संख्या में आबादी को हटाकर किसी अन्य स्थान पर स्थापित करने में सामाजिक समस्या उत्पन्न होती है। यह सामाजिक समस्या अक्सर राजनैतिक रुप धारण कर लेती है। नर्मदा घाटी परियोजना को लेकर जो विवाद व प्रदर्शन चल रहे हैं, वे इन समस्याओं के ज्वलन्त प्रमाण हैं। जल विद्युत के लिए बनाए जाने वाले बाँधों का एक और जोखिम भी है। यदा कदा ऐसी घटनाऐं हो चुकी हैं, जब बाँधों के टूटने से बहुत हानियां हुई हैं। इन्हीं कारणों से विशालकाय बाँधों का विरोध हो रहा हैं। बाढ़ व भूकंप ऐसे बाँधों के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं। टिहरी परियोजना का विरोध जनमानस में व्याप्त इस तरह के भय का उदाहरण है। दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में बनाए जानेवाले ऐसे बाँधों की एक और जो समस्या है, वह है इनके तालाबों का मलवे से लगातार भरते जाना जिससे इनका उपयोगी काल सीमित हो जाता है। फिर जल विद्युत के नये उपयोगी स्रोत इतने नहीं बचे हैं कि उनसे बढ़ती हुई ऊर्जा आवश्यकता पूरी की जा सके।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि विद्युत ऊर्जा उत्पादन में तेजी लाने के लिए हमारे सामने इस समय केवल दो ही विकल्प मौजूद हैं - कोयला व नाभिकीय। इसलिए यह उचित है कि इन दोनों स्रोतों के सुरक्षा पहलुओं की तुलनात्मक समीक्षा की जाय। कोयला चालित व नाभिकीय बिजली घरों के सिध्दान्त व बनावट में कई समानताऐं है। दोनों में ही टर्बाइन को पानी के भाप से चलाया जाता है। इसलिए टर्बाइन व विद्युत जनित्र दोनों में समान प्रकार के होते हैं। अन्तर केवल पानी को भाप में बदलने की विधि का है। कोयला चालित संयंत्र में कोयले के दहन से पानी को भाप में परिवर्तित

किया जाता है। नाभिकीय संयंत्र में यह काम परमाणु भट्टी द्वारा किया जाता है जिसमें नाभिकीय ईंधन, यूरेनियम में विखण्डन प्रक्रिया, से ताप ऊर्जा पैदा होती है। कोयले द्वारा चालित बिजली संयंत्र व नाभिकीय विद्युत संयंत्र दोनो ही तापीय संयंत्र कहे जाते हैं। सुरक्षा व पर्यावरण की दृष्टि से दोनों में जो अन्तर है वह एक में कोयला व दूसरे में यूरेनियम के जलने से सम्बन्ध रखता है।

कोयला चालित तापीय बिजलीघर

इन बिजलीघरों से निम्नलिखित हानिकारक व प्रदूषण पदार्थ निकलते हैं।

1. कोयले की राख : भारत में उपलब्ध बिजली घरों में प्रयोग में लाये जाने वाले कोयले में 50 - 55% तक राख होती है। ऐसे कोयले की ताप उत्पादन क्षमता तो कम होती ही है, साथ ही इसके कारण जो कणकीय पदार्थ पैदा होता है वह वातावरण में प्रदूषण पैदा करता है। इसलिए इसे छनन क्रिया द्वारा नियंत्रित किया जाता है। एक ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि विदेशों में कोयले में राख की मात्रा प्राय: केवल 5% के आसपास होती है। भारतीय कोयले में इतनी अधिक राख की मात्रा के कारण प्रदूषण नियंत्रण उपकरण भी सक्षमता से कार्य नहीं कर पाते, कोयला चालित बिजलीघरों की चिमनियों से जो कणकीय पदार्थ बाहर निकलते हैं उनमें पारा / आर्सेनिक जैसे विषैले तत्व होते है। कुछ कैन्सर कारक पदार्थ जैसे बैन्जो - ए पायरीन भी इनके साथ निकलते हैं। इतना ही नहीं इस राख और कणकीय पदार्थो में यूरेनियम तथा थोरियम श्रृंखला के रेडियोधर्मी तत्व भी सम्मिलित होते हैं। राख में यूरेनियम का अनुपात 3 - 40 पी. पी. एम. तक तथा थोरियम का अनुपात 5 - 140 पी. पी. एम. तक हो सकता है। कोयले में इन तत्वों का अनुपात राख की तुलना में 3 से 6 गुना कम होता है।

गैसीय प्रदूषण : इसमें कार्बन डाइआक्साइड, सल्फर डायआक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड तथा कार्बन मोनोआक्साइड सम्मिलित हैं।

हरितकक्ष प्रभाव : जीवाश्मी ईंधन में दहन प्रक्रिया के दौरान कार्बन और ऑक्सीजन की प्रक्रिया से ताप और कार्बन डायआक्साइड गैस उत्पन्न होती हैं। यह गैस वातावरण में बहुत लम्बे समय तक बनी रहती है क्योंकि यह प्राकृतिक व रासायनिक प्रक्रियाओं से नष्ट नहीं होती है। अत: ईंधन का जितना अधिक दहन इस पृथ्वी पर होता है उतनी ही अधिक कार्बन डाइआक्साइड गैस वातावरण में एकत्रित होती रहती है। कार्बन डाइआक्साइड का यह विशेष गुण है कि वह सूर्य से आने वाले प्रकाश के लिए तो पारदर्शक है परन्तु गर्म धरती से आनेवाली परावर्तित लंबी तरंगों को अवशोषित कर लेती है। इस तरह पृथ्वी के वातावरण में जो कार्बन डाइआक्साइड की पर्त होती है वह गर्म हो जाती है। यह गैस ताप को अवशोषित करने के बाद पृथ्वी को वापस गर्मी विकिरित करती रहती है। इस प्रभाव को ही हरित कक्ष प्रभाव कहा जाता है। कार्बन डाइआक्साइड के अलावा कई अन्य गैसें भी इस प्रभाव को उत्पन्न करती हैं जैसे मीथेन, नाइट्रोजन आक्साइड तथा रिफ्रिजरेटरों व वातानुकूलन यंत्रों में प्रयोग होने वाली गैसें - क्लोरोफ्लोरो व वातानुकूलन क्षेत्रों में प्रयोग होनेवाली गैसें - फ्लोरो कार्बन्स (सी. एफ. सी.)। इन गैसों का हरित कक्ष प्रभाव कार्बन डायआक्साइड की तुलना में कम होता है, परन्तु सी. एफ. सी. गैसें पृथ्वी के चारों ओर लगभग 20 कि. मी. ऊंचाई पर स्थित ओजोन परत की नष्टकारक हैं। ओजोन सूर्य से आनेवाली पराबैगनी किरणों को अवशोषित करती है। उसमें कमी आने पर पृथ्वीवासी मानवों में चर्म का कर्क रोग व अन्य चर्म विकारों की वृद्धि हो सकती है। सी. एफ. सी. के उत्पादन को नियंत्रित करने के उद्देश्य से सन् 1988 में मांटिरियल प्रोटोकाल पर कई देशों ने हस्ताक्षर किये। अनुमान लगाया जाता है कि यदि कोयले के दहन से विद्युत उत्पादन वर्तमान दर से होता रहा तो अगली शताब्दी के मध्य तक वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा इतनी बढ़ जायगी कि उससे पृथ्वी का औसत तापमान वर्तमान से तीन डिग्री सेन्टीग्रेड अधिक हो सकता है। तापक्रम की इस वृद्धि से हिमनदों (ग्लेसिया)

की बर्फ पिघलने से सागरों का जल स्तर इतना उठ सकता है कि उससे कई भूभाग सदा के लिए जलमग्न हो सकते हैं। अतः अब आवश्यक समझा जाने लगा है कि इस जोखिम से बचने के लिए कोयले का दहन कम किया जाय। विज्ञान और तकनीकी के वर्तमान विकास क्रम में कोयले का विकल्प केवल नाभिकीय ऊर्जा ही हो सकती है।

नाभिकीय ऊर्जा

नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों में सुरक्षा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। जोखिमों की दृष्टि से नाभिकीय ऊर्जा के सुरक्षा संबंधी प्रभावों को दो भागों में बांटा जा सकता है, (1)निम्नस्तरीय विकिरण के प्रभाव जो संयंत्र के सामान्य प्रचालन से संबंध रखते है, (2) दुर्घटना की स्थिति में विकिरण उद्भास व रेडियोधर्मी पदार्थों का फैलाव।

परमाणु भट्टी की बनावट व उसका प्रचालन इस प्रकार किया जाता है कि सामान्य प्रचालन में जोखिम की संभावना किसी अन्य उद्योग के जोखिमों से अधिक नहीं होती। नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों का मुख्य जोखिम विकिरण से संबंध रखता है। यदि जन साधारण के विकिरण उद्भास के दृष्टिकोण से देखा जाय तो नाभिकीय ऊर्जा से उत्पन्न होनेवाले विकिरण का योगदान प्राकृतिक विकिरण को तुलना में नगण्य है। भारत में कुल कृत्रिम विकिरण भी प्राकृतिक विकिरण का केवल 3% है। पश्चिमी देशों में यह लगभग 20% तक है। इस कृत्रिम विकिरण का मुख्य स्रोत चिकित्सा क्षेत्र से संबंध रखता है। अनुमान लगाया गया है कि नाभिकीय उद्योग का जनसाधारण के विकिरण उद्भास में 0.1% से भी कम योगदान है। इस तरह के निम्न स्तरीय विकिरण उद्भास का प्रमुख सम्भावित प्रभाव कर्क रोग होता है। व्यवसायी लोगों के लिए विकिरण उद्भास की जो सीमा निर्धारित की गई है, उसका जोखिम अन्य उद्योगों के जोखिमों की तुलना में अधिक नहीं होता। निम्न स्तरीय विकिरण के प्रभाव क्योंकि विलम्बित होते है, अतः कर्क रोग से जोखिम की संभावना इस बात पर निर्भर करती है कि कितनी विकिरण मात्रा प्रति वर्ष ली गई एवं कितने वर्ष का जीवन काल है। इन्ही बातों को ध्यान में रखकर अनुमान लगाया गया है कि यदि जीवन काल 75 वर्ष माना जाय तो विकिरण व्यवसाय के 47 वर्षों में विकिरण कार्मिक द्वारा, उनके लिए प्रतिवर्ष निर्धारित सीमा के तुल्य विकिरण मात्रा प्राप्त करने पर जीवन काल में 10,000 में 8 व प्रतिवर्ष 7,50,000 में 8 को जोखिम की संभावना होगी । पर देखा गया है कि व्यवहार में सीमा का दसवां भाग ही औसतन प्राप्त होता है। अतः वास्तव में व्यवसायी को विकिरण कार्य से 7,50,000 में 8 जोखिम की संभावना होगी। इसी प्रकार जनसाधारण को जन्म से प्रतिवर्ष निर्धारित सीमा के तुल्य विकिरण मात्रा प्राप्त हो तो उनके जीवन काल में 1,00,000 में 5 को परन्तु व्यवहार में 10,00,000 में 5 को तथा प्रतिवर्ष 7,50,00,000 में 5 को जोखिम की संभावना होगी। जबकि वर्तमान आंकड़ों के अनुसार भारत में प्राकृतिक कारणों से प्रतिवर्ष 1,00,000 में एक या 75,00,000 में 70 x 75 = 5,250 की या 7,50,00,000 में 52,500 की मृत्युदर की संभावना होती है। 52,500 मृत्युदर में 5 या लगभग 10,000 में 1 की बढ़ोत्तरी को देखपाना संभव नहीं। अतः विकिरण से, यदि नियंत्रित हो तो जोखिम की संभावना प्राकृतिक विकिरण के जोखिम की तुलना में नगण्य है।

दुर्घटना की संभावनाओ को न्यूनतम करने के लिए नाभिकीय संयंत्रों में कई स्तरों पर उपाय किये जाते हैं। ये स्तर हैं - (1) स्थल चयन, (2) अभिकल्पन (3) निर्माण (4) अभिचालन (5) प्रचालन व अनुरक्षण । स्थल-चयन के लिए जिन बातों का मूल्यांकन किया जाता है, उनमें कई प्राकृतिक विपदाओं को भी ध्यान में रखा जाता है (भूकंप, बाढ़, चक्रवात इत्यादि)। इसके अतिरिक्त मानव प्रेरित दुर्घटनाएं जैसे वायुयान का ध्वंस, विस्फोट इत्यादि की संभावानाओं का भी मूल्यांकन किया जाता है। स्थानीय जलवायु, भूमिगत जलस्तर व निकटवर्ती क्षेत्रों की जनसंख्या को भी ध्यान में रखा जाता है। संयंत्र के अभिकल्पन में सुरक्षा संबंधी मुख्य बातें इस प्रकार हैं: (i)नाभिकीय रिएक्टर को सभी सामान्य अथवा असामान्य अवस्थाओं में बंद कर सकने की क्षमता (ii) रिएक्टर को बंद अवस्था मे लाने से पश्चात ईंधन को ठंडा रखने के उपाय और (iii) रेडियो सक्रिय पदार्थो को पर्यावरण में जाने से रोकना और किसी भी स्थिति में विकिरण को सीमाओं से पार न होने देना। तकनीकी सुरक्षा प्रावधानों

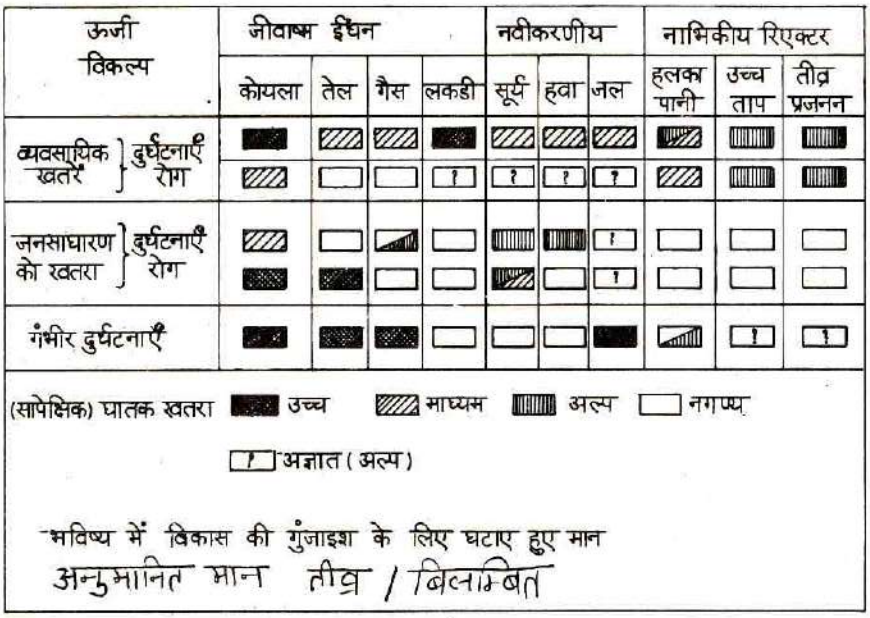

सारणी

विभिन्न ऊर्जा स्रोतों के लिए विश्वभर में गंभीर दुर्घटनाऐं

(1969 - 1986)

ऊर्जा विकल्प	गंभीर दुर्घटनाऐं		प्रतिष्ठान	मृत्यु की संख्या	
	संख्या	कारण		प्रति घटना	औसत प्रतिवर्ष
कोयला	62	खान विनाश	कोयले की खान	10 - 434	200 से ऊपर
तेल	6	उलटजाना	तेल चबूतरा	6 - 123	
	15	आग /विस्फोट	रिफायनरी टंकी क्षेत्र	5 - 145	25 से ऊपर
	42	आग / विस्फोट यातायात दुर्घटना	यातायात	5 - 500	90 से ऊपर
प्राकृतिक गैस	24	आग / विस्फोट	विभिन्न	6 - 452	80 से ऊपर
जल	8	बाढ़ के कारण (बाँध - टूटने से)	बाँध	11-2500	200 से ऊपर
नाभिकीय	1	अल्पकालिक निष्क्रमण	चरनोबिल*	31	----

* 130,000 व्यक्तियों से जगह खाली करवाई + भूमि संदूषण हुआ

के साथ साथ कई प्रशासनिक पहलू भी सुरक्षा उपाय में सम्मिलित है। परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद सुरक्षा के लिए किए गए सभी उपायों की जाँच पडताल व पुनरावलोकन करती है।

नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों में पर्यावरण की सुरक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रत्येक नाभिकीय परियोजना के निकट एक पर्यावरणीय सर्वेक्षण प्रयोगशाला स्थापित की जाती है, जो संयंत्र से 30 किलोमीटर की दूरी तक की हवा, पानी, मिट्टी, घास, खाद्य पदार्थ इत्यादि के नमूनों की जाँच करती है, जिससे यह मालूम हो सके कि प्रदूषण तत्वों की सांद्रता निश्चित सीमा से अधिक न हो। नाभिकीय संयंत्रों को सुरक्षित व सुचारू रुप से चलाने के लिए प्रचालकों को विभिन्न स्रोत पर प्रशिक्षण दिया जाता है। साथ ही साथ इसमें सुरक्षा व विकिरण संरक्षण के नियमों का भी समावेश होता है। इसके द्वारा प्रचालकों की कार्य क्षमता तो बढाई ही जाती है।

पर्यावरण की सुरक्षा

नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों का पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर, अन्य पारम्पारिक ऊर्जा स्रोतों को तुलना में सबसे कम प्रभाव पड़ता है। जल विद्युत योजनाओं का पारिस्थितिकी पर विस्तुत प्रभाव होता है। कोयला चालित विद्युत संयंत्रों से वायु प्रदूषण और हरित कक्ष जैसे दूरगामी प्रभावों का खतरा होता है। नाभिकीय संयंत्रों से जो रेडियोधर्मी प्रदूषण निकलते हैं, उन्हें पूर्णत: नियंत्रित किया जा सकता है। भारतीय नाभिकीय विद्युत संयंत्रों से निकलने वाला मुख्य प्रदूषण ट्रीटियम है। परन्तु सामान्य प्रचालन के दौरान संयंत्र से इसका रिसाव नगण्य होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाभिकीय स्रोत पारिस्थितिकी और पर्यावर्णीय दोनों तरह के प्रभावों के दृष्टिकोण से उत्तम एवं स्वच्छ स्रोत है (चित्र) परन्तु इसके बावजूद चरनोबिल दुर्घटना के कारण जन साधारण के विश्वास को धक्का पहुँचा है (सारणी) । इस संबंध मे यह समझना आवश्यक है कि भारतीय परमाणु भट्टियों का अभिकल्पन चरनोबिल परमाणु भट्टी से बिलकुल भिन्न है। वास्तव में आधुनिक परमाणु भट्टियों के , मन्दक और शीतलक, दोनों अवयव साधारण या भारी पानी के होते हैं। इसलिए इनमें चरनोबिल जैसी दुर्घटना नहीं हो सकती है। हमारी परमाणु भट्टियों में दुहरी आवरण व्यवस्था की गई हैं। अत: किसी अवांछनीय दुर्घटना में भी रेडियोधर्मी प्रदूषकों के पर्यावरण में फैलने की संभावना बिलकुल नहीं रहती।

■

(पृष्ठ 93 का शेष भाग)

का स्वास्थ जोखिम में पड़ता है । प्रथम सुरक्षा के प्रबंध ऐसे विश्वासजनक होने चाहिये कि रिसाव की संभावना कम से कम हो । यदि हो भी जाये तो इसका तुरंत अनुश्रवण हो और उपकरणों की स्वयंचलित प्रक्रिया से बंद हो जाये । सुरक्षा के पालन में कुछ भी पूर्व निर्मित उपाय पर्याप्त नहीं हो सकता है , क्योंकि इनके उल्लंघन से जिस क्षतिकी संभावना है, उसका अनुमान लगाना कठिन है ।

यह सब कहने के पश्चात यह कहना आवश्यक है कि विद्युत की बढ़ती मांग की पूर्ति के लिये यह असंभव है कि विद्युतुत्पादन के लिये हम केवल कोयले तथा तेल तक ही सीमित रहें। इनके भंडार दिन प्रति दिन क्षीण होते जा रहे हैं। । परमाणु शक्ति के उपयोग की हम उपेक्षा महीं कर सकते हैं। बुध्दिमानी इसमें है कि सुरक्षा के नियम कड़े बनाये जायें और इनके पालन करने की योजना ऐसी हो कि इसमे धोखा खाने की सम्भावना कमसे कम हो । यह आवश्यक है कि परमाणु केन्द्रों के अधिकारी आम जनता को सरल भाषा में सुरक्षा की योजना को समझायें और इसकी भी जानकारी दें कि कैसे असुरक्षित स्थिति की तुरंत सूचित करने के प्रबन्ध और इसकी नियंत्रण के उपाय मौजूद हैं । लोगों के मन से शंका दूर करने के लिए सारे प्रचार के माध्यमों का अधिक से अधिक उपयोग करना आवश्यक है । आज लोग भयभीत हैं और उन्हें विश्वास दिलाना बहुत महत्व रखता है। इस दिशा में जो कुछ भी प्रयास किये जाते हैं वे कम है और आम लोगों के लिये प्रभावशाली नहीं है । इस प्रकार की संगोष्ठी जो राष्ट्रभाषा में आयोजित की गई है, इस संकल्प के लिये प्रभावशाली सिध्द हो सकती है ।

उद्योगीकरण एवं पर्यावरण संरक्षण

जयशंकर पाण्डेय (वैज्ञानिक)
एवं
पुरूषोत्तम खन्ना (निदेशक)
राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी
अनुसंधान संस्थान, नागपुर - 440020

आज विश्व के कोने - कोने में औद्योगिक विकास की होड़ लगी है। क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर का उपभोग और हनन सीमा पार कर चुका है । पादप गृह प्रभाव हर घर पर सुरसा की तरह मुँह बाए खड़ा है। ओजोन सतह के झरोखे से प्रलंयकारी विभीषिका झांक रही है, व्योम मण्डल की भौतिक, रासायनिक और जैविक संरचनाएं और संतुलन खतरे में हैं। उद्योगीकरण, पर्यावरण और फिर सतत विकास से संबंधित तथ्य इतने जटिल हैं कि उनकी सूक्ष्म व्याख्या तभी की जा सकती है जब हम इस संबंध में प्रकाशित कुछ लेखों की समुचित विवेचना और विश्लेषण करें। प्रस्तुत पत्र औद्योगिक विकास और उसकी सततता से संबद्ध परिभाषाओं की सटीकता पर बल देते हुए उन सूचकों और मान दंडो का विश्लेषण करता है जो विकास और उसकी सततता के दृष्टिकोण से लाभदायी हैं। सतत विकास को इंगित करने वाले सूचकों में किन - किन गुणों का होना अनिवार्य है, इस विषय की समुचित विवेचना की गई है। अंत में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि योजना के प्रारुप निर्माण के समय इन सूचकों का कितना महत्व है और उनका उपयोग पारिस्थितिकी और अर्थप्रबंध के एकीकरण में कैसे किया जा सकता है।

उद्योगीकरण और पर्यावरण में अन्योन्याश्रय संबंध है। इस संबंध में प्रकाशित होने वाले लेखों, पुस्तकों, समालोचनाओं और रिपोर्टों की कोई गिनती नहीं। उद्योगीकरण का दिन - प्रतिदिन बढ़ता हुआ स्वरूप एक दिन (और वह दिन अब दूर नहीं) पर्यावरण को अपने जबड़ों के मध्य दबोच लेगा - इसी तरह की शंकाओं और भ्रांतियों के मध्य आज जन मानस पल बढ़ रहा है। 'पादप - गृह प्रभाव' और ओजोन सतह का नि: शेषण उन विषयों में से है जिनपर आज अनेकानेक वैज्ञानिक संस्थायें कार्यरत हैं। उद्योगीकरण, पर्यावरण और फिर सतत विकास से संबंधित तथ्य इतने जटिल हैं कि उनकी सूक्ष्म व्याख्या तभी की जा सकती है जब हम इस संबंध में प्रकाशित कुछ प्रमुख रिपोर्टों पर नजर डालें। पर्यावरण और सतत विकास के पहलुओं पर सबसे पहली परिचर्चा क्लब ऑफ रोम की पहली रिपोर्ट ने की।

क्लब ऑफ रोम की पहली रिपोर्ट

इस रिपोर्ट का संकलन और सम्पादन एम. आई. टी. के वैज्ञानिकों के एक समन्वित दल ने किया। दल के अध्यक्ष डेनिस और डोनेला मीडोज थे। निकाय - विश्लेषण के आधार पर कई व्यापक - प्रतिरूपों की संरचना की गई। प्रतिरुपों का निष्कर्ष यही था कि आकस्मिक विकास और इस के कई चक्र निकट भविष्य में संभावित हैं। बावजूद इसके कि राजनीतिज्ञों ने इस रिपोर्ट की कड़ी आलोचना की, इस रिपोर्ट ने समाज के प्रबुद्ध वर्ग पर एक अमिट छाप छोड़ी। पहली रिपोर्ट के पश्चात, रिपोर्टों की एक श्रृखंला ही निकल पड़ी।

दूसरी रिपोर्ट

इस रिपोर्ट का संकलन और संपादन केस वेस्टर्न रिजर्व - यूनिवर्सिटी के निकाय - अनुसंधान केन्द्र के निदेशक प्रो. मिहाज्लो मेसोरोविक और हनोवर - यूनिवर्सिटी के

तकनीकी के प्राध्यापक, प्रो. एडवर्ड पेस्टेल ने किया। इसमें स्थानीय विकास पर आधारित पर्यावरणीय योजना को ज्यादा प्रश्रय मिला है। स्थान विशेष की परिस्थितियों (भौतिक, रासायनिक और जैविक) में एक खास तरह का अवगुंठन होता है, निर्भरता होती है। और इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि जब भी पर्यावरण पर पड़नेवाले प्रभाव का व्यापक मूल्यांकन किया जा रहा हो, पारिस्थितिकी विशेषज्ञ और वैज्ञानिक, स्थानीय और उनको जोडने वाले संबंधों पर विशेष ध्यान दें। साथ ही साथ इस बात का भी खयाल रखना चाहिए कि स्थानीय स्तर पर जो भी योजना बने, वह विश्व - स्तर पर होनेवाले पारिवेशिक और पर्यावरणीय परिवर्तनों को नजरदांज नहीं करे। विकास की प्रक्रिया यादृच्छिक न होकर सुनिर्देशित हो।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कई संगणक - प्रारूपों का निर्माण भी किया गया। ये प्रारुप क्लब ऑफ रोम की पहली रिपोर्ट के अंतर्गत बने प्रारुपों से काफी भिन्न थे, क्योंकि इनमें परिवेश विशेष के जैविक वैविध्य को समुचित महत्व दिया गया था। सारांशत: क्लब ऑफ रोम की दूसरी रिपोर्ट जैविक वैविध्य और सतत विकास पर लगातार जोर डालती रही।

तीसरी रिपोर्ट

तीसरी रिपोर्ट जिसके समन्वयनकर्ता नोबेल पुरस्कार विजेता जॉन टिनबर्गैन थे, के मतानुसार हर एक देश को अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नीतियाँ निर्धारित करते समय, दूसरी रिपोर्ट के निष्कर्षों को अवश्य मद्देनजर रखना चाहिए।

चौथी रिपोर्ट

इस रिपोर्ट का संकलन, प्रो. एरविन लास्जलो, जो एक दर्शनशास्त्री थे, ने की। इस रिपोर्ट ने निम्नलिखित दो प्रश्नों के समाधान ढूँढने का प्रयास किया है:

1) मानवता का लक्ष्य वास्तविक रूप में क्या है?

2) क्या हमें मानवता के विकास को भौतिक विकास से ज्यादा महत्व देना चाहिए ?

तत्पश्चात आने वाली रिपोर्टों ने प्रदूषण, ऊर्जा, और अन्यान्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं की विवेचना की। ये रिपोर्ट काफी विवादास्पद रही। लास्जलो (1977) के शब्दों में .... क्लब, ने मार्गदर्शन तो किया परन्तु वह तत्परता नहीं ला सका जो किसी भी सिद्धांत के कार्यान्वयन के लिए अनिवार्य है। कुछ भी हो, इतना तो अवश्य है कि क्लब ऑफ रोम रिपोर्ट की श्रृखंला ने मानवता को गहरी नींद से चौंका कर उठा दिया और उसे गंभीरता से सोचने पर मजबूर कर दिया।

पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास

सतत विकास की परिभाषा और इससे संबद्ध अनेकानेक पहलुओं के सबंध में काफी भ्रांतिया फैली हुई हैं। जन - मानस का एक बड़ा हिस्सा इस बात पर विश्वास करता है कि सतत विकास महज एक कल्पना है और विज्ञान की परिधि के अंदर इसकी विवेचना तो हो सकती है पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से इसे प्रयोग में लाना असंभव है। वर्तमान पत्र में लेखक का उद्देश्य सतत विकास से संबंधित परिभाषाओं और तथ्यों को एक ऐसी दिशा देना है, जिसमें व्यवहार में आने वाले सूचकों के आधार पर सतत विकास के सूचकों को मापा जा सके।

1924 में टेब्लॉट ने कहा था कि विकास की सततता का उल्लंघन तब होता है जब जैविक संसाधनों का उपयोग इस हद तक हो कि मनुष्य के लिए समुचित संसाधनों का अभाव हो जाए। सतत विकास के लिए यह आवश्यक है कि भूमि का दुरूपयोग न हो और उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए जितने भी बाह्य संसाधनों और रसायनों का उपयोग हो, वह एक खास सीमा के ही अंतर्गत हो। अन्यथा, शुरू में तो जमीन की उत्पादन क्षमता काफी बढ़ती है पर अक्सर ऐसा देखा जाता है कि कुछ समय के उपरांत उत्पादन क्षमता, औसत उत्पादन क्षमता से भी कम हो जाती है और भूमि का स्वास्थ्य (उर्वरता और उत्पादन के दृष्टिकोण से) इतना बिगड़ जाता है कि उसे सुधार पाना असंभव हो जाता है। यहां जल और मृदा संरक्षण, आनुवंशिक वैविध्य और खाद्य - उत्पादन के लिए आवश्यक तकनीकों के महत्व का उल्लेख अनिवार्य है।

पर्यावरणीय वहन क्षमता

पर्यावरण के संदर्भ मे वहन क्षमता और समावेशण क्षमता दो ऐसे पहलू हैं जिनकी परिमाप किसी भी योजना के लिए आवश्यक है। प्रश्न यह उठता है कि इनकी माप कैसे की जाए ? परिवेश की सम्पूर्णता को अभिव्यक्त करने वाले समस्त अवयवों की एक दूसरे पर निर्भरता इतनी जटिल है कि हर क्षेत्र के लिए लागू होने वाली एक व्यापक योजना बन सकना लगभग असंभव है। आवश्यकता इस बात की है कि परिस्थिति विशेष, स्थान विशेष और संसाधनों के परिमाण की जानकारी मिलने के बाद, स्थान विशेषं, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय पहलुओं को मद्दे नजर रखकर एक योजना बनाई जाए। इस तरह की बहुआयामी योजना का आज सर्वथा अभाव है।

एक दिए गए परिवेश की वहन क्षमता घटती बढ़ती रहती है। नई तकनीकों का उपयोग और बाहर से ऊर्जा संसाधनों का आयात करके वहन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि परिस्थिति विशेष की वहन क्षमता वहाँ के जैविक तत्वों की उत्पादन क्षमता पर निर्भर करती है।

यूनेस्को के मैन एण्ड द बायोस्फेयर प्रोग्राम ने जहां जनसंख्या और संसाधन उपलब्धता के आधार पर समस्याओं के विश्लेषण की कोशिश की है, वहां राष्ट्र संघ की शाखा, खाद्य और कृषि संस्था (एफ. ए. ओ.) ने खाद्यान्न उपयोग के आधार पर 117 विकासशील देशों की वहन क्षमता की तुलना का प्रयास किया है। विश्व बैंक ने सात अफ्रीकी देशों की वहन क्षमता का मूल्यांकन जलावन की लकड़ी और खाद्यान्न की उपलब्धता के आधार पर किया है।

ऊर्जा और पारिस्थितिकी विकास

ब्राउन ने 1981 में सतत विकास को इंगित करने वाले सूचकों तथा चिरस्थायी और नवीकरणीय ऊर्जा, मृदा और जल संरक्षण के लिए आवश्यक गुणों पर प्रकाश डाला है।

गोल्डस्मिथ के अनुसार समाज के संतुलन के लिए यह आवश्यक है कि पारिस्थितिकी परिवर्तन कम से कम हो, पदार्थ और ऊर्जा का ज्यादा से ज्यादा संरक्षण हो, जनसंख्या का विस्तार लगभग स्थिर हो और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना का बाहुल्य हो।

अर्थ शास्त्रियों ने इन विचारों की कटु आलोचना की है और कहा है कि अगर समाज में आर्थिक उन्नयन लगभग शून्य हो जाए, तो भी इस बात की कोई गारंटी नहीं दी जा सकती कि समाज में स्थिरता आ ही जाएगी। संभव है, बेरोजगारी और आर्थिक असाम्यता की स्थिति ज्यादा बिगड़ जाए और फलस्वरूप समाज में अशांति के फैलने का ज्यादा डर हो। यूनेप की लगभग समकक्ष होल्डगेट की विचारधाराओं ने पारिस्थितिकी विकास जैसे शब्द को जन्म दिया है और दासमैन ने 1985 में इसके निम्नलिखित तीन अंग बताये हैं।

1. लोगो की अनिवार्य आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र और आवास) की पूर्ति,
2. आत्मनिर्भरता, और
3. पारिस्थितिकचिरस्थायित्व

पारिस्थितिकी चिरस्थायित्व का विश्लेषण करते हुए यह सर्वथा ध्यान में रखने की जरूरत है कि अन्तर्निहित पहलुओं को स्थिति और समय के आयामों मे ठीक जगह पर रखा जाए और तब उनकी विवेचना की जाए। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि जिला और ग्राम स्तर पर पारिस्थितिकी चिरस्थायित्व के पहलुओं को अन्तर्निहित करते हुए लेखक द्वारा विकसित योजना के प्रारूप और मॉडल को जब ग्राम और जिला स्तर पर लागू करने का प्रयास हुआ तो निम्नलिखित कठिनाईयाँ सामने आईं।

क) प्रारूप के अंदर आने वाले समस्त अवयवों पर आँकडों का अभाव

ख) उदाहरण के तौर पर एक गांव के लिए यदि कृषि संसाधनों तथा खाद्य सामग्री, उर्वरकों का उपयोग, सिंचाई की सुविधाओं के बारे में यदि आंकडे उपलब्ध हैं तो फिर उसी गांव के लिए जंगल के संसाधनों यथा जीव परिमाण, और जमीन पर गिरे जैविक अपशिष्टों वगैरह के लिए कोई भी आंकड़ा नहीं मिलता।

ग) जो बात और भी गौर करने की है वह यह कि हमारे यहां परिस्थिति - विशेष और परिवर्तनशील आंकड़ों का सुनियोजन संभव नहीं हो पाया है।

घ) पर्यावरण से सीधा संबंध रखनेवाले अवयवों के संबंध में जो अल्पाधिक आंकड़े उपलब्ध हैं उनको यदि योजना में समाहित करना है तो आंकड़ों से प्रारूप तक और प्रारुप से योजना तक और फिर योजना से कार्यान्वियन तक की श्रृंखला की हरेक कड़ी मजबूत करना अनिवार्य है।

अनिवार्य तत्व

सारांशत: स्थायी विकास की योजना को निम्नलिखित पहलुओं पर आधारित होना चाहिए।

(i) जन जीवन के संचालन के लिए संसाधन की प्रचुरता।

(ii) नैसर्गिक अवयवों और खाद्यानों की बहुलता (गुण, संख्या और परिणाम में) - जनसंख्या की नियंत्रित वृद्धि।

(iii) आर्थिक विकास का नियंत्रित ढांचा जिसमें उतार चढ़ाव कम से कम हो।

(iv) लघु विकास योजनाओं और आत्मनिर्भरता का महत्व।

(v) पर्यावरण और परिवेश की सुरक्षा और संतुलन।

1987 में ब्राउन ने प्रति व्यक्ति कुल उत्पादन और प्रति व्यक्ति जीवाश्म ऊर्जा की खपत को आर्थिक उन्नति का परिचायक माना है। उनके अनुसार जब आर्थिक उन्नति की तुलना में जंगलों का ह्रास, मौसम परिवर्तन और मृदारक्षण के द्वारा हुई हानि का मूल्य अधिक हो जाता है तो समाज का विकास सतत नहीं कहा जा सकता है। अतः इन सूचकों का मापना और उनकी उस सीमा का निर्धारण आवश्यक है जिसके बाद विकास की सततता पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सके।

क्लार्क ने 1986 में सूचक के रुप में घनत्व सूचकों का इस्तेमाल किया है यथा: एकक क्षेत्र में उपस्थित जनसंख्या, प्रति एकड़ क्षेत्र का कृषि उत्पादन, प्रति एकड़ क्षेत्र में खर्च हुई ऊर्जा। इन सूचकों के सहारे क्लार्क ने कई क्षेत्रों और राष्ट्रों के सतत विकास का तुलनात्मक अध्ययन किया है। भविष्य के लिए तेल का मूल्य, आर्थिक उन्नति की दर और पर्यावरण का प्रदूषण, क्षरण, जल - वायु परिवर्तन और जनसंख्या में वृद्धि उन अवयवों में से कुछ हैं जिनका उल्लेख 1972 में ब्रूबेकर ने किया है। विश्व संरक्षण योजना (आई.यू.सी.एन) के अनुसार जमीन से ऊपरी मृदा - सतह का क्षरण, घटते हुए कृषि क्षेत्र, जंगलों का काटा जाना, जल का अभाव, जलशयों और सागरों का प्रदूषण जैसे सूचकों का उपयोग सतत विकास की योजना बनाने के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

यह कहा जा सकता है कि सतत विकास के सूचकों में निम्नलिखित गुणों का होना वांछनीय है:

(i) सूचक ऐसा होना चाहिए जो स्थान और समय के अनुसार होनेवाले परिवर्तनों का समुचित ब्यौरा समाहित करता हो।

(ii) सूचक के संबध में पुराने ऐसे आंकड़े अवश्य मौजूद हों जिनके साथ सूचक की तुलना कर यह कहा जा सके कि परिवेश के अवयवों में उन्नति हुई है या अनवति।

(iii) सूचक के माप के संबंध में कम से कम अनिश्चितता हो।

(iv) सूचक ऐसा हो जिससे कि योजना के रुप में किए जानेवाले परिवर्तनों के फलस्वरुप पारिस्थितिकी अवयवों में होनेवाले परिवर्तन की सही जानकारी मिल सके। ■

जैव प्रौद्योगिकी द्वारा पशुधन संवर्धन

डा. एम.एल.मदन, परियोजना निदेशक
भ्रूण जैव प्रौद्योगिकी केन्द्र
राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
करनाल - 132001 (हरियाणा)

हजारों वर्षों से मनुष्य पशुओं की आनुवंशिक क्षमता का कुशल उपयोग करता रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप पशुपालन संबंधित सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। जैव तकनीकी के सम्प्रति विकास से भ्रूण प्रतिरोपण, परखनली निषेचन एवं भ्रूण संवर्धन, किण्वन तकनीकी, खाद्य प्रक्रिया एवं जीवाणु प्रतिरोधी प्रयोगों द्वारा पालतू पशुओं की उत्पादकता में त्वरित वृद्धि की सम्भावनाओं के नये द्वार खुले हैं। भ्रूण प्रतिरोपण में हारमोन उपचार द्वारा अण्डाशय में अण्डकोशिकाओं को विकसित कर अधिक संतति ली जा सकती है। परखनली निषेचन से देश के उच्च गुण युक्त पशुओं (जिनका महानगरों में वध कर दिया जाता है) के जनित्र द्रव्य का संरक्षण कर उसके क्षय को रोका जा सकता है। भ्रूण संवर्धन द्वारा एक ही भ्रूण की कोशिकाओं से समान गुण वाली अनेक संतति पैदा की जा सकती हैं। पराश्रव्य ध्वनि यन्त्र द्वारा पशु के अण्डाशय में चल रही प्रजनन क्रिया का सही समय पर अध्ययन किया जा सकता है, एवं न्यूनतम समय में गर्भधारण का भी पता लगाया जा सकता है। सोर्मेटोट्रापिन हारमोन के उपचार से पशु के दुग्ध उत्पादन, शारीरिक वृद्धि एवं दुग्धावस्था को प्रेरित कर सकते है। जुगाली करने वाले पशुओं के रूमेन में उपस्थित जीवाणुओं में जीन अभियांन्त्रिकी का उपयोग कर सेलुलोज एवं फसल अवशेष उत्पाद की पचनीयता को बढ़ाया जा सकता है। आनुवंशिक अभियान्त्रिकी द्वारा वांछित आनुवंशिक क्षमता वाले ट्रान्सजेनिक पशु भी पैदा किये जा सकते हैं। ऐसे कई प्रोटीन, जिनका उत्पादन वर्तमान समय में व्यवसायिक उत्पादक भी नहीं कर सकते, ट्रान्सजेनिक पशुओं, की मदद से बड़े पैमाने पर उत्पादित किये जा सकते हैं। ट्रान्सजेनिक चुहिया के दूध में मानवीय औषधीय प्रोटीन के उत्पादन से गाय, भेड़ एवं बकरी की विभिन्न लाभदायिक क्षमताओं के नये स्रोत खुले हैं। भारत में भी जैव प्रौद्योगिकी की आधुनिक तकनीकियों का उपयोग हो रहा है और इस तकनीकी द्वारा पशुधन संवर्धन में अपेक्षित सफलता की उम्मीद की जा सकती है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य पशुओं की आनुंवशिक क्षमता का उपयोग अपने लाभ हेतु करता आया है, फलत: पालतू पशुओं की उत्पादकता के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। सम्प्रति जैव प्रौद्यौगिकी के विकास से भ्रूण प्रतिरोपण एवं सम्बन्धित तकनीकी परखनली निषेचन तथा भ्रूण संवर्धन, किण्वन तकनीकी, खाद्य प्रक्रिया, चिकित्सा एवं जीवाणु प्रतिरोधी कार्यक्रमों द्वारा पालतू पशुओं की उत्पादकता में तीव्र गति से वृद्धि होने की उत्साहवर्धक सम्भावनाओं का नया द्वार खुला है। विशेषकर पशुधन में रोग नियन्त्रण, पोषण एवं प्रजनन के क्षेत्र में जैव प्रौद्यौगिकी बहुत ही उपयोगी है। आनुवंशिक द्रव्य (जीव) स्थानान्तरण तकनीकी से पशुओं में आनुवंशिक सुधार का आशाजनक भविष्य परिलक्षित हो रहा है। ऐसे प्रोटीनों को जिनका उत्पादन व्यवसायिक उत्पादक नहीं कर सकते, बड़े पैमाने पर उत्पन्न करने के लिए ट्रान्सजेनिक पशु, सम्भावित पथ प्रदान कर सकते हैं। ट्रान्सजेनिक चुहिया के दूध में मानवीय औषधीय प्रोटीन के उत्पादन से गाय, भेड़ एवं बकरी के विभिन्न लाभदायिक क्षमताओं के उपयोग के नये रास्ते खुले हैं। जैव प्रौद्यौगिकी की विभिन्न तकनीकियों का संयुक्त उपयोग पशुधन सुधार में अत्यधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सकता है। भारत में भी पशुधन सुधार एवं संवर्धन के लिए जैव प्रौद्यौगिकी से सम्बन्धित जो अनेक तकनीकियाँ प्रयोग में लायी जा रही हैं उनकी यहाँ पर संक्षिप्त व्याख्या करना असंगत नहीं होगा।

भ्रूण प्रतिरोपण द्वारा पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि

पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने के लिए भ्रूण प्रतिरोपण एक बहुत ही प्रभावशाली तकनीक है। उच्च उत्पादन क्षमता एवं आनुवंशिक गुण युक्त दाता (डोनर) मादा को सुपरओवुलेशन प्रक्रिया में पशु को हारमोन द्वारा उपचारित करने पर अण्डाशय में उपस्थित अण्डकोशिकाओं में से अधिकतर एक साथ ही विकसित हो परिपक्व हो जाती है, और उनमें से अधिकांश का ओवुलेशन (अण्डपातन) भी साथ-साथ होता है। जनित अण्डकोशिकाओं को शुक्राणुओं द्वारा निषेचित कराने के बाद भ्रूण को मारूला अथवा ब्लास्टुला अवस्था में विकसित करने के बाद मादा गर्भाशय से निकाल कर, सिनक्रोनाइज्ड प्रापक मादा, जिसके गर्भाशय की अवस्था ठीक-ठीक दाता मादा जैसी हो, में प्रतिरोपित कर दिया जाता है। इस प्रकार उच्च आनुवंशिक क्षमता वाले शुद्ध अथवा संकर मूल्यवान मादा पशुओं की प्रजनन क्षमता का पूरा का पूरा दोहन कर किया जा सकता है। अब तक कृत्रिम गर्भाधान से सिर्फ नर सांड़ों की सार्थकता सिद्ध हुई थी, लेकिन इस तकनीकी से उच्च उत्पादन सूचकांक वाले सांडों के साथ-साथ उच्च उत्पादन क्षमता वाली मादा पशुओं की उपयोगिता भी बढ़ गयी है।

सुपर ओवुलेशन की प्रक्रिया में (एक ही समय अधिक से अधिक डिम्ब कोशिकाओं के विकास के लिए) एफ.एस.एच. हारमोन अथवा पी.एम.एस.जी. का प्रयोग किया जाता है। पशुओं के इस्ट्रस सिनक्रोनाइजेशन के लिए पी.जी.एफ-2 अल्फा अथवा पी.आर.आई.डी. (प्रिड का उपयोग किया जाता है। सुपरओवुलेशन द्वारा प्राप्त भ्रूणों को प्रतिरोपित कर एक मादा से वर्ष में 15-20 बच्चे प्राप्त किये जा सकते हैं। कुछ ऐसे भी कारक है जो सुपर ओवुलेशन की प्रक्रिया में पशु के प्रतिफल को सीमित करते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च जनित्र गुण युक्त मादा प्रजनन चक्र में आने पर गर्भित होती है उस मादा से निषेचन के पाचवें से सातवें दिन भ्रूण एकत्र कर उचित प्रापक मादा में प्रतिरोपित किया जा सकता है। इस विधि से भ्रूण संग्रह करने से मादा के सामान्य प्रजनन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडता और एक मादा जहाँ समान्यत: वर्ष में एक बच्चा देती है, वर्ष भर में उसी मादा से 4-6 बच्चे आसानी से प्राप्त किए जा सकते है। इस प्रकार कृत्रिम गर्भाधान एवं भ्रूण प्रतिरोपण संयुक्त का उपयोग पशुधन संवर्धन एवं सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। भ्रूण को अति निम्न ताप पर तरल नाइट्रोजन में ठंडा कर जनित्र द्रव्य को आयात - निर्यात एवं जीन संरक्षण से पशुधन संवर्धन में एक नवीन अवधारणा विकसित होती है। इस तकनीक के द्वारा जुड़वा बच्चे, निकट सम्बन्धी पशु समूह में नये जीन का समावेश, भ्रूण का कुशल उपयोग (मैनीपुलेशन) और ट्रान्सजेनिक पशु भी प्राप्त करना संभव है।

भ्रूणों पर किये अनुसंधान द्वारा यह पाया गया है कि भ्रूण की बाह्य भित्ति (जोना पेलुसिड्रां) अभेद्य होती है, और भ्रूण पर जीवाणु एवं विषाणु का संक्रमण नहीं होने देती। भ्रूण की बाह्य भित्ति अभेद्य होने के कारण जीवाणु जनित या विषाणु जनित रोग से प्रभावित दाता, मादा अथवा प्रापक में किसी भी प्रकार की बीमारी का संक्रमण नहीं हो पाता। अत: विदेशी बीमारी के नियन्त्रण का सबसे सुरक्षित उपाय जीवित पशु का आयात न कर भ्रूण का आयात करना होगा। इसी तरह मूल्यवान संक्रमित मादा पशु से अण्डाणु संग्रहीत कर परखनली में निषेचित कर उन्हें स्वस्थ प्रापक मां में प्रतिरोपण किया जा सकता है और असंक्रमित रोग मुक्त संतति प्राप्त की जा सकती है।

परखनली निषेचन

अण्डकोशिकाओं की प्रयोगशाला में परिपक्वता एवं निषेचन के आधुनिक विकास ने मादा पशुओं की प्रजनन क्षमता सुधार का एक नया स्रोत प्रदान किया है। क्यों कि इस विधि से मादा पशुओं की प्रजनन क्षमता का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है। स्तनधारियों की निषेचन क्रिया पर प्रयोग के लिए एक विशेष विधि आवश्यक है जिससे स्तनधारियों की अण्डकोशिका को शरीर से बाहर निषेचित किया जा सके। शुक्राणुओं के कैपासिटेशन क्रिया के अनुसंधान से पूर्व शरीर से बाहर निषेचन (परखनली निषेचन) के अधिकतर प्रयास बिना कैपासिटेटेड शुक्राणुओं के कारण असफल रहे। शुक्राणुओं को शरीर से बाहर कैपासिटेशन अथवा एक्रोसोन क्रिया की खोज से शरीर से बाहर निषेचन

की क्रिया, गायों, भैंसों, भेड, बकरी एवं सूअर आदि से की जा सकी है।

सामान्यतया परखनली निषेचन के लिए पशुवध गृह से पशुओं के अण्डाशय को प्राप्त किया जाता है, उसे 0.9 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड के विलयन से दो-तीन बार साफ कर 35° से. - 37° से. तापमान पर प्रयोगशाला तक लाया जाता है। अण्डाशय में उपस्थित पुटक कोशिकाओं (फोलिकिल्स) को सूचिका द्वारा संग्रहित कर अण्डकोशिकाओं को इस्ट्रस सीरम युक्त ऊतक संवर्धक माध्यम - 199 में कार्बनडाईआक्साइड युक्त तापनियन्त्रण में परिपक्व करने के बाद कैपासिटेटेड शुक्राणुओं से निषेचन कराया जाता है। निषेचन के बाद भ्रूण को ऊतक संवर्धक माध्यम में ही मारूला अथवा ब्लास्टुला अवस्था तक विकसित कर उपयुक्त प्राणक मादा में प्रतिरोपित कर दिया जाता है। भ्रूण के कृत्रिम उत्तम सुवर्धन की प्रक्रिया के विकास से, भ्रूण को सूक्ष्म विभाजक सूचिका द्वारा दो या दो से अधिक भागों में विभाजित कर समान गुण वाले जुड़वा संतति प्राप्त की जा सकती है, एवं भ्रूण से प्राप्त कोशिका को सूक्ष्म सूचिका की सहायता से अनिषेचित अण्डकोशिका में स्थानान्तरित कर नाभिकीय संलयन द्वारा एक भ्रूण से अनेक समान गुण वाली संतति भी प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार उच्च आनुवंशिक जनित्र द्रव्य वाले पशुओं के जैव द्रव्य की त्वरित गति से गुणित अनुपात में वृद्धि की जा सकती है।

पराश्रव्य ध्वनि यन्त्र (अल्ट्रा साउण्ड मशीन) जिसका प्रयोग सिर्फ मनुष्य से संबंधित रोगों की जाँच के लिए किया जाता था, अब सिर्फ थोड़े से परिवर्तन के बाद पशुओं की प्रजनन क्षमता बढ़ाने में अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके प्रयोग से पशुओं के अण्डाशय में चल रही डिम्ब कोशिका (फोलिकिल) निर्माण की प्रक्रिया का सही-सही आकलन करने में और पशुओं के अनियमित प्रजनन चक्र एवं ओवुलेशन का ठीक-ठीक समय निर्धारित करने में सहायता मिली है। इसकी सहायता से पशुओं में न्यूनतम समय में गर्भधारण की स्थिति का पता लगाया जा सकता है। इस यन्त्र की सहायता से अण्डाशय में विकसित फोलिकिल से अण्डाणु को भी चूषक यंत्र द्वारा सूचिका की सहायता से निकाला जा सकता है जिन्हें परखनली निषेचन द्वारा निषेचित कर सामान्य अवस्था में बिना किसी कुप्रभावके भ्रूण प्राप्त एवं प्रतिरोपित किये जा सकते हैं।

पशुओं में आनुवंशिक अभियान्त्रिकी (ट्रान्सजेनिक पशुओं का उत्पादन)

जीन स्थानान्तरण द्वारा जैव द्रव्य के मौलिक रुप में परिवर्तन लाने की क्षमता का, पशुओं के आनुवंशिक सुधार के लिए महत्वपूर्ण उपयोग है। ट्रान्सजेनिक पशु में बाहरी डी.एन.ए. अथवा जीन को क्रोमोसोम में स्थापित कर दिया जाता है। इस प्रकार से स्थानान्तरित जीन भी, मेण्डल के आनुवंशिक नियम के अनुसार पीढी दर पीढ़ी स्थानान्तरित होते हैं। प्राय: अधिकतर डी.एन.ए. ठीक उसी तरह गुण प्रकट करते हैं, जैसे प्राकृतिक अनुवंशिक जीन करते हैं। एक जीन से प्राप्त किये गये नियन्त्रण तत्वों को दूसरे जीन के संरचनात्मक कोड के अनुक्रम में सम्मिलित कर किसी भी ऊतक से विशेष प्रकार की प्रोटीन (जिसे वह ऊतक सामान्यता संश्लेषिक नहीं करता) के संश्लेषण लक्ष्य को प्राप्त करना संभव है।

वर्तमान समय में स्तनधारियों में जीन स्थानान्तरण तकनीकी नये जीन को प्रतिरोपित करने तक सीमित है। अभी तक यह संभव नहीं हो पाया है कि आन्तरिक जीन को अलग किया जा सके। वृद्धि कारक हारमोन के जीन, चयापचय से सम्बन्धित एन्जाइम के जीन, रोग नियन्त्रण एवं प्रतिरोध उत्पन्न करने वाले जीन, एवं ऐसे जीन जो पशुओं की उत्पादकता के लिए उत्तरदायी है, आदि से जुड़े कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें आजकल अनुसंधान कार्य जारी है।

दुग्ध उत्पादन के लिए सोमेटोट्रापिन (बी.एस.टी)

फार्म पशुओं का दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में सोमेटोट्रापिन काफी सक्षम है। गो-पशुओं में परीक्षण द्वारा यह ज्ञात किया गया है कि 640 मि.ग्रा. / 28 दिन की मात्रा तक सोमेटोट्रापिन, पशुओं को दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करता है। यह भी पाया गया कि उन पशुओं में जिनकी शुष्क पदार्थ अन्तर्ग्रहण की मात्रा सर्वाधिक थी सोमेटोट्रापिन से दुग्ध

उत्पादन भी सर्वाधिक था। यह पाया गया है कि सोमेटोट्रापिन भोज्य पदार्थ के अन्तर्ग्रहण की मात्रा को, लम्बी अवधि के लिए उत्पादन एवं अनुरक्षण में विभाजन द्वारा प्रोत्साहित करता है। उत्पादन की बढ़ी हुई मात्रा को स्थिर रखने के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि पोषण इस प्रकार का हो कि शरीर में अनुरक्षित ऊर्जा का विनाश न हो।

प्रजनन में वृद्धि के लिए प्रजनन हारमोन का प्रतिरोध - उदासीनीकरण (इम्यूनोन्यूट्रिलाइजेशन)

प्रजनन में वृद्धि के लिए हारमोन अंकित एन्टीबाड़ी का प्रयोग प्रतिरोध प्रतिफल के उपयोग की एक नयी उभरती हुई तकनीक है। समझने के तौर पर यह प्रणाली अन्त: उत्पादित हारमोन के जैव प्रक्रियाओं के प्रतिजन (एण्टीजेन) के द्वारा उदासीनीकरण पर आधारित है। इस प्रतिरोधक विधियों के उपयोग से सामान्य शारीरिक क्रियाओं में स्वत: प्रतिरोधकता को प्रोत्साहित करने के प्रयास काफी अंश तक सफल हुए हैं। इनमें विभिन्न हारमोन जैसे एन्ड्रोस्टीनिडियोल, ल्युटिनाइजिंग हारमोन, ह्यूमन क्रोनिम गौनेडोट्रोजिन, प्रोजेस्टीशेन, इस्ट्रोजन एवं टेस्टीस्टीरोन आदि सम्मिलित हैं। टेस्टोस्टीरोन, एन्डोस्टीनेडियोल, इस्ट्रोन एव इस्ट्राडियोल सभी के विरुद्ध प्रतिरोधकता विभिन्न अंश तक अण्डपतन (ओवुलेशन) की दर एवं बच्चे जनन की प्रतिशत में वृद्धि करते पाये गये हैं। इन्हिबिन हारमोन के विरुद्ध प्रतिरोधता भी फार्म पशुओं की अण्डपतन (आवुलेशन) की दर में वृद्धि के लिए सहायक पायी गई है।

शारीरिक वृद्धि में कुशल उपयोग

शारीरिक वृद्धि विविधकारकीय हारमोन सह-सम्बन्ध द्वारा नियन्त्रित होती है। किसी भी हारमोन के विशेष प्रदर्शित प्रभाव को हारमोन के कुशल उपयोग द्वारा बढ़ाया या घटाया जा सकता है। सोमेटोट्रापिन हारमोन के प्रयोग से गाय, भेड, सूअर आदि के शारीरिक भार एवं चारे को पोषक तत्वों में रूपान्तरण दर में सुधार पाया गया है। सोमेटोट्रापिन हारमोन प्रोटीन के संचय का काम करता परन्तु वसा संचय के विरुद्ध कार्य करता है, इस प्रकार कृश (लीन) मांस के उत्पादन में सहायक होता है।

पशुओं के दुग्धावस्था में कुशल उपयोग

सोमेटोट्रापिन पशुओं की स्तन ग्रन्थियों के विकास में सहायक सिद्ध हुआ है, लेकिन इसका अगली दुग्धावस्था पर प्रभाव अज्ञात है। सोमेटोट्रापिन का प्रयोग गेलेक्टोजिनसिस को प्रभावित करता है जिससे दुग्ध उत्पादन एवं चारे के रूपान्तरण की दर भी प्रभावित होती है।

जैव रूपान्तरण एवं पूर्व उपचार से सेल्यूलोज युक्त चारे के पोषक मूल्य में वृद्धि

सेल्युलोज युक्त शुष्क चारे की पूर्व उपचार द्वारा पचनीयता एवं अन्तर्ग्रहण - गुण को पूर्व उपचार द्वारा सुधारा जा सकता है। सम्प्रति विविध भौतिकी, रसायनिकी एवं जैविकी उपचार जैसे भाप उपचार, क्षारीय उपचार, किण्वन एवं इन्जाइम पूर्व पचनीयिता आदि में सुधार के लिए किया जा रहा है। पूर्व उपचार के परिणाम स्वरूप चारे की गुणवत्ता में सुधार होता है जिसे पचनीय ऊर्जा, चयापचय ऊर्जा, सकल पचनीय तत्व, चारा अन्तर्ग्रहण एवं पचनीयता आदि द्वारा मापा जाता है। गुणों में परिवर्तन केवल पूर्व उपचार की प्रक्रिया पर ही निर्भर नहीं करता अपितु चारे की प्राप्ति के स्रोत एवं पशु की प्रजाति पर भी निर्भर करता है।

रूमेन के सूक्ष्म जीवाणुओं की आनुवंशिक अभियान्त्रिकी

विकासशील देशों के अधिकतर छोटे परिवारों में उपलब्ध चारे का अधिकांश भाग रेशा युक्त एवं फसल अवशेष होता है, जिसकी पचनीयता काफी कम होती है। अत: उनके पशुओं में अल्प वृद्धि के कारण विलम्बित परिपक्वता, न्यूनतम प्रजनन दर, कम दुग्ध उत्पादन, अवरुद्ध शारीरिक आकार आदि पाया जाता है। इस तरह के रेशे युक्त चारे की पचनीयता एव अन्तर्गहण की दर में वृद्धि के लिए सूक्ष्म जीवाणुओं के आनुवंशिक गुणों में परिवर्तन एक प्रभावशाली एवं सूक्ष्म उपाय बन सकता है। ऐसे चारे की बढ़ी हुई पचनीयता तभी प्रभावशाली होगी जब भोजन का किण्वन द्वारा पाचन एवं अवशोषित पोषक तत्वों का भरपूर उपयोग हो। सीरा, यूरिया, विविध पोषण तत्व एवं प्रोटीन युक्त पूरक पोत्रो रूमेन के सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि में भी सहयोग प्रदान करता है। रूमेन में संतुलित जीवाणुओं की

संख्या के कुशल उपयोग से पाचन में सुधार किया जा सकता है। वर्तमान समय में रूमेन के सूक्ष्म जीवाणु वृद्धि के लिए अनेक प्रकार के उपचार किये जा रहे है; इनमें एन्टीबायोटिक्स, वसा प्रोटीन विरब्रण्डक, प्रोटियोलेज मीथेन नियन्त्रक, बफर पदार्थों, रूमेन जीवाणुओं या रूमेन पदार्थ एवं वाष्पशील वसा अम्ल आदि को अतिरिक्त पूरक रूप में देना सम्मिलित है।

रोग नियन्त्रण एवं जांच

विषाणु, जीवाणु प्रोटोजोआ एवं कवक जनित संक्रामक बीमारियां अभी भी मनुष्य एवं पशु औषधियों के लिए चुनौती हैं। इन बीमारियों की जांच के लिए विश्वसनीय विधि की आवश्यकता है। जैव प्रद्यौगिकी द्वारा उत्पन्न विशेष अभिकारक इन अत्यधिक विलक्षण बीमारियों की सही सही जांच हेतु विकसित सरल परीक्षणों के आदर्श माध्यम बन सकते है। बीमारियों की विविध जटिलता के कारण कोई भी एक जांच की विधि सभी अवस्था में विश्वसनीय नहीं हो सकती। अत: दो या दो से अधिक जांच विधिओं का समायोजन ही उचित होगा। हाल ही में पशुओं की बीमारियों की जांच के लिए नयी विधियों का विकास हुआ है। इनमें इ.एल.ए.एस.ए. (इलिसा) तकनीकी, एन्टीबाडी तकनीकी, पुन: संयोजी डी.एन.ए. तकनीकी एवं.डी.एन.ए. संकरण तकनीकी आदि प्रमुख हैं। इन सभी तकनीकियों का मुख्य लक्ष्य पशुधन की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य में सुधार लाना है।

ट्रान्सजेनिक पशुओं द्वारा दुग्ध में औषधीय प्रोटीन का उत्पादन

ट्रान्सजेनिक पशुओं के दुग्ध में अधिक मात्रा में औषधीय प्रोटीन के उत्पादन की आशा अब वास्तविकता बन गयी है। राइट ने पांच ट्रान्सजेनिक भेड़ों के दुग्ध में अल्फा - 1 एन्ट्रीट्रिप्सिन प्राप्त करने का उल्लेख किया है। अल्फा - 1 एन्ट्रीट्राप्सिन एक सीरम ग्लाइको प्रोटीन है जिसकी कमी से मनुष्य में इम्फोसेमा नामक बीमारी हो जाती है।

इसी प्रकार ट्रान्सजेनिक बकरी से एन्जाइम जैसी क्रिया वाला एल.ए.टी.पी.ए.(लांगर एक्टि टीशू प्लाज्मीनोजन एक्टीवेटर) का इर्वट एवं सहयोगियों ने उल्लेख किया है। इसी प्रकार ट्रान्सजेनिक चुहिया, भेड़, खरगोश आदि के दुग्ध से औषधीय प्रोटीन प्राप्त किये गये हैं।

फार्म पशुओं के दुग्ध से औषधीय प्रोटीन - उत्पादन के कई सम्भावित लाभ हैं:

(क) स्तनग्रन्थि से प्रोटीन उचित मात्रा में उत्पन्न की जा सकती है।

(ख) पशु से स्वच्छ ढंग से प्रोटीन, पशु पर बिना किसी नुकसान के लगातार एकत्र किया जा सकता है।

(ग) पशुओं के अन्य ऊतकों से भी प्रोटीन बिना किसी अनापेक्षित नुकसान के पृथक कर सकते हैं। दुग्ध से प्राप्त प्रोटीन एड्स एवं हिपैटाइटिस कारक जैसे संक्रमण से मुक्त होगा।

सम्प्रति जैव प्रौद्योगिकी हमारे यहां प्रयोगशालाओं एवं अनुसंधान संस्थानों में शुरूआती दौर में है। परन्तु कुछ ही वर्षों में प्रत्येक तकनीक पशुओं की उत्पादकता के वर्तमान धारणा में परिवर्तन लाने वाली है फलत: व्यापक स्तर पर इन तकनीकों के उपयोग से पशुधन संवर्धन में क्रान्तिकारी परिवर्तन संभव हो सकेगा। ■

भारतीय समुद्रविज्ञान में आधुनिक अनुसंधान व विकास

बी. एन. देसाई एवं राम भार्गव
राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान,
दोना पावला, गोवा.

प्रस्तुत प्रपत्र में भारतीय समुद्रविज्ञान के क्रमिक विकास, उसके प्रमुख लक्ष्य तथा उपलब्धियों का विवेचन है। भौतिक एवं रासायनिक समुद्रविज्ञान, समुद्री जैवविज्ञान, भूविज्ञान, भूभौतिकी, प्रदूषण, आभियांत्रिकी, यंत्रीकरण, संक्षारण व पदार्थ अनुसंधान आदि क्षेत्रों में जो भी महत्वपूर्ण अनुसंधान व विकास कार्यक्रम चल रहे हैं, उनकी झलक दी गयी है। भारत के अनन्य आर्थिक क्षेत्र में खाद्य पदार्थों की प्राप्ति हेतु उत्पादक क्षेत्रों की पहचान, उसमें पायी जानेवाली खाद्य श्रृंखला, समुद्री खेती, समुद्री शैवाल तथा मैंग्रोव सम्पदा का विस्तृत अध्ययन किया गया है। कोंकण तट पर समुद्री रेत में मूल्यवान खनिज कणों तथा मध्य हिंद महासागर में बहुधात्विक पिण्डों की गुणवत्ता, विस्तार, भंडार व खनन हेतु विस्तृत अध्ययन किये गये हैं। औषधि एवं भेषज आवश्यकताओं के लिए कुछ समुद्री जीवों, वनस्पतियों तथा प्रवालों की क्रियाशीलता की जांच की गयी है। पुराजलवायु के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि करीब 10,000 वर्ष पूर्व भारतीय उपखण्ड की जलवायु अर्द्धशुष्क थी। वैज्ञानिक, समुद्र में मानसून की भविष्यवाणी करने योग्य घटकों की खोज में लगे हैं। अनुसंधान में काम आने वाले विभिन्न उपकरणों का विकास संस्थान द्वारा किया गया है। समुद्री अनुसंधान की अन्य उभरती तकनीकों में दूरसंवेदन, ध्वनिक टोमोग्राफी तथा मॉडलिंग प्रमुख हैं। अंटार्कटिक शोध में भी समुद्रवैज्ञानिकों ने पहल की है तथा अरबसागर में गल्फ तेल के फैलने से संबंधित प्रभाव के निर्धारण के लिए आधारभूत अध्ययन किया गया है। अन्य कई संस्थान भी समुद्रवैज्ञानिक अनुसंधान में राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान के साथ जुटे हैं।

सागर सम्पूर्ण पृथ्वी के 71 % भाग को घेरे हुए हैं। वे अनेक संसाधनों के लिये हमारी अन्तिम सीमाके रूप में जाने जाते हैं। भू-संसाधनों में तेजी से होती कमी के कारण, पिछले कुछ दशकों से समुद्रविज्ञान की ओर काफी ध्यान आकर्षित हुआ है। यह स्पष्ट हो गया है कि तेजी से समाप्त होते भू-संसाधनों का विकल्प सागर ही हो सकते हैं। सौभाग्य से भारत तीन दिशाओं में समुद्र से घिरा हुआ है तथा इसके तट की लम्बाई लगभग 7500 कि.मी. से भी ज्यादा है। नयी समुद्री शासन - प्रणाली के फलस्वरूप समुद्र में भारत का अनन्य आर्थिक क्षेत्र 20 लाख वर्ग कि.मी. से भी अधिक विस्तृत है जो हमारे भूमि क्षेत्र के 75% के बराबर है। इस क्षेत्र में संसाधनों के दोहन की अपार संभावनायें हैं।

यद्यपि सागर के महत्व से भारतवासी वैदिक काल से ही परिचित हैं परन्तु भारत में समुद्री अनुसंधान का प्रारम्भ 19 वीं शताब्दी में उस समय हुआ जब ब्रिटिश शासन के दौरान रॉयल इंडियन नेवी के समुद्री - सर्वेक्षण पोतों नें भारतीय जल में सर्वेक्षण किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में समुद्रविज्ञान को महत्व दिया गया है। केन्द्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान (1947), भारतीय नौसेना भौतिक प्रयोगशाला (1952), केन्द्रीय भू-भौतिकी बोर्ड की समुद्री अनुसंधान शाखा (1958) तथा आन्ध्र व अन्य तटीय विश्वविद्यालयों में समुद्रविज्ञान के शैक्षिक पाठ्यक्रम प्रारम्भ होने से भारत में आधुनिक समुद्र - विज्ञान अनुसंधान को बल मिला है।

1960 से पहले हिन्द महासागर दुनिया का सब से कम जानकारी वाला महासागर था। हिन्द महासागर के अध्ययन का सब से प्रमुख प्रयास 1960 - 65 के दौरान अंतर्राष्ट्रीय हिन्द महासागर अभियान (आई.आई.ओ.ई.) था जिसमें 20 देशों के 40 अनुसंधान पोतों ने भाग लिया। इस अभियान में भारत के कार्यक्रम को नियोजित व समन्वित करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय समुद्री अनुसंधान समिति (INCOR) गठित की गयी। कार्यक्रम के कार्यान्वियन के लिए (वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद)(CSIR) ने 1962 में हिन्द महासागर अभियान निदेशालय बनाया तथा उसी वर्ष

अं.हि.म.अ. के दौरान एकत्रित किये गये प्राणिप्लवकों के अध्ययन हेतु कोचीन में हिन्द महासागर जैव केन्द्र स्थापित किया गया। अं.हि.म.अ. के दौरान बहुत बड़ी संख्या में आंकड़े एकत्र किये गये तथा इसी अभियान के परिणामस्वरूप प्रशिक्षित युवा वैज्ञानिकों का एक दल भी तैयार हुआ। अतः भारतीय राष्ट्रीय समुद्री अनुसंधान समिति की जोरदार सिफारिश के परिणामस्वरूप; 1 जनवरी, 1966 को.वै.औ.अ.प. की एक प्रयोगशाला के रूप में राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान का जन्म हुआ। क्षेत्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु कोचीन, बम्बई तथा वाल्टेयर में क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना की गयी। तब से रा.स. वि.सं. भारत में समुद्री अनुसंधान के अग्रणी संस्थान के रूप में उभरा है। संस्थान में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबंध रखनेवाले कई विभाग व अनुभाग हैं; जैसे भौतिक समुद्रविज्ञान, रासायनिक समुद्रविज्ञान जिसमें समुद्री प्रदूषण शामिल है, समुद्री जैवविज्ञान, समुद्री भूविज्ञान तथा समुद्री भू- भौतिकी, समुद्री अभियांत्रिकी, समुद्री यंत्रीकरण, समुद्री संक्षारण व पदार्थ अनुसंधान, योजना, आंकड़ा तथा सूचना, प्रकाशन, प्रशिक्षण आदि।

31 दिसम्बर, 1975 को प्रथम भारत निर्मित बहु उद्देशीय समुद्री अनुंसधान पोत आर.वी. गवेषणी के जलार्पण से भारत में समुद्रविज्ञान के अनुसंधान को गति मिली है। 1981 में भारत सरकार के अन्तर्गत महासागर विकास विभाग का गठन भारतीय समुद्रविज्ञान के इतिहास में अन्य महत्वपूर्ण घटना थी। 1983 में म.वि.वि. ने जर्मन गणराज्य से एक अत्यन्त संवेदनशील अनुसंधान पोत ओ. आर.वी. सागरकन्या प्राप्त किया जिसमें समुद्रविज्ञान, नौवहन तथा संचार के अत्याधुनिक उपकरण स्थापित थे। यह पोत वैज्ञानिक प्रबंधन के लिए रा.स.वि.सं. को प्रदान किया गया जिसके फलस्वरूप वैज्ञानिकों को गहरे समुद्र में काम करने की बहुप्रतीक्षित सुविधा प्राप्त हुई। पिछले पचीस वर्षों में अन्तर्व्यवस्था तथा दक्षता के विकास के फलस्वरूप देश में ही समुद्र से संबंधित किसी भी विशेष कार्य को संभालने की क्षमता पैदा हुई है। विकासशील देशों में भारत का स्थान समुद्रविज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रमुख है।

भारत में समुद्री अनुसंधान की अद्वितीय संस्था रा.स.वि.सं. के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित हैं:

- समुद्र की भौतिक तथा गतिज प्रक्रियाओं का अध्ययन एवं परिवर्तनों को मानीटर करने हेतु जानकारी का प्रयोग तथा समुद्र से उत्सर्जित ऊर्जा के संबंध में प्राकृतिक शक्तियों का पूर्वकथन।
- समुद्र के कच्चे माल तथा उर्वरता के गुणात्मक तथा परिमाणात्मक वितरण को विकसित करने व समझने के दृष्टिकोण से समुद्री जल के रासायनिक घटकों तथा तलीय अवसादों का अध्ययन।
- पर्यावरण में प्राकृतिक तथा मानवकृत परिवर्तनों के प्रभाव के विशेष संदर्भ के साथ समुद्र के जैव संसाधनों तथा उनके वितरण का निर्धारण तथा समुद्री - कृषि तकनीकों से समुद्री खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति।
- महाद्वीपीय शेल्फ तथा गहरे पानी के खनिज संसाधनों के गुणात्मक तथा परिमाणात्मक निर्धारण के संबंध में समुद्र तट तथा समुद्र तल के भूवैज्ञानिक तथा भूभौतिकीय पक्षों का अध्ययन।
- समुद्रविज्ञान के आंकड़ों के एकत्रीकरण, संसाधन, प्रचार तथा आदान प्रदान में लगे रहना तथा समुद्रविज्ञान की जानकारी के आदान - प्रदान व प्रसार हेतु राष्ट्रीय सुविधा के रूप में कार्य करना ।
- संस्थान की विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न समुद्री उपकरणों का विकास करना।
- समुद्री विज्ञानों के अध्ययन से जुड़े सभी अ.एवं वि. संगठनों तथा शैक्षिक संस्थाओं को सहयोग प्रदान करना तथा समुद्र में प्रेक्षण करने के लिए उन्हें जहाजी सुविधा प्रदान करना।
- समुद्र के अन्वेषण व उपयोग को सुगम बनाने के लिए समुद्रविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्रदान करना।

प्राचीन काल से ही समुद्र खाद्य पदार्थों के बड़े भण्डार के रूप में मानव के प्रयोग में आते रहे हैं। जनसंख्या की वृद्धि ने अधिक मात्रा में खाद्य की आवश्यकता को सतत बढ़ावा दिया है।

इस संबंध में हिन्द महासागर के उत्पादक क्षेत्रों को पहचानना व उन्हें निश्चित करना तथा प्राकृतिक संपदा के

पूरक के रूप में समुद्री खेती का विकास करना, समुद्र वैज्ञानिकों का एक महत्वपूर्ण कार्य है। उत्पादक क्षेत्रों की पहचान प्राथमिक, द्वितीयक तथा समुद्र तल प्राणियों के उत्पादन द्वारा की जाती है।

भारत में प्राथमिक उत्पादन पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि कुछ क्षेत्र, जैसे भारत का दक्षिणी - पश्चिमी तट तथा उसके बाद मध्य एवं उत्तर पश्चिमी तट सर्वाधिक उत्पादनवाले क्षेत्र हैं। बंगाल की खाड़ी का उत्तरी भाग, पूर्वी तट के शेष की अपेक्षा अधिक उत्पादनशील है। अण्डमान एवं लक्षद्वीप क्षेत्र भारत के पश्चिमी तट की अपेक्षा कम उत्पादक है। सामान्यतया तटीय जलक्षेत्र दूरवर्ती सामुद्रिक क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक उत्पादनशील हैं क्योंकि तटीय जलक्षेत्र में पोषक तत्वों की बहुलता है। मुहाने एवं पश्चजल में अन्वेषण से पता चला है कि कोचीन पश्चजल की अपेक्षा मांडवी एवं जुआरी मुहानों की उत्पादकता अधिक है।

विस्तृत समुद्र में खाद्य - श्रृंखला का क्रम इस प्रकार है: पादप प्लवक (प्राथमिक उत्पादन), प्राणि प्लवक (द्वितीयक उत्पादन), मत्स्य। स्पष्ट है कि प्लवकों से भरपूर क्षेत्र मात्स्यिकी (मत्स्य - उत्पादन) के लिए खास तौर से उपयुक्त है। अध्ययनों से पता चलता है कि भारत के पूर्वी तट की अपेक्षा पश्चिमी तट अधिक उत्पादनशील है। भारत के दक्षिणी - पश्चिमी तट पर प्राणि प्लवक का उत्पादन अत्याधिक इसलिए है क्योंकि वहां समुद्र की ऊपरी सतह पर पोषक तत्वों का प्रतिस्थापन तल - जल के उर्ध्वागमन द्वारा होता रहता है। उत्तरी व दक्षिणी - पूर्वी तट पर प्रणि प्लवक उत्पादन दक्षिण की ओर बढ़ता जाता है। बंगाल की खाड़ी के दक्षिणी भाग में प्राणि प्लवक अधिक मात्रा में हैं।

हिन्द महासागर के जल - तल प्राणियों के अध्ययन से प्राप्त परिणामों से संभावित मत्स्य सम्पदा के आकलन तथा समुद्री खेती के विकास में सहायता मिली है। अध्ययनों से पता चला कि महाद्वीपीय शैल्फ में जैविक उत्पादन अधिक है जो कि गहराई के बढ़ने पर घटता जाता है। उत्तर-पश्चिमी अरब-सागर तथा उत्तरी बंगाल की खाड़ी के क्षेत्रों में जल - तल प्राणियों का उत्पादन अधिक हैं। मध्य हिन्द महासागर में उत्पादन समान रूप से अधिक है जो कि जैव क्रियाशील पदार्थोंवाले प्राणियों को बढ़ावा देता है।

समुद्री शैवाल वनस्पति आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण सम्पदाओं में से है तथा इसका उपयोग कई देशों में खाद्य, चारा, खाद, औषधि तथा उद्योगों में किया जाता है। यद्यपि भारत में जापान की तरह समुद्री वनस्पति का उपभोग खाद्य के रूप में नहीं होता हैं, फिर भी भारत में इनकी प्रजातियों में प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट की मात्रा है। समुद्री वनस्पति की पैदावार की तकनीक को राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान द्वारा मानकीकृत किया जा रहा है तथा भारत के तटीय क्षेत्रों में कुछ प्रजातियों की पैदावार शुरू की गई है।

मैंग्रोव प्राय: मुहानों में उगते हैं तथा पर्यावरण तन्त्र में इनकी उपयोगिता महत्वपूर्ण है। अत्यधिक उत्पादन वाले ये क्षेत्र समुद्री खेती के काफी अनुकूल हैं और इन क्षेत्रों में कई जीवों का प्रजनन, सम्वर्धन एवं पालन उद्योग के रूप में किया जा सकता है। तटीय क्षेत्रों में इन भागों का विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है।

तटीय क्षेत्रों का लगभग 17.1 लाख हेक्टेयर भाग समुद्री खेती के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है जिसमें, हरी सीपियों की खेती, बाँसों के रैफ्ट से लटकी जलमग्न रस्सियों द्वारा की जा रही है। इस विधि से 480 टन प्रति हेक्टेयर सीपियों की पैदावार होती है। गोवा के मछुआरों को इस तकनीक से अवगत कराया गया है, और इसका वे काफी लाभ उठा रहे है। इसी तरह धान और झींगा मछलियों की सम्मिलित खेती केरल की तटीय खाड़ियों में, संस्थान द्वारा विकसित विधि से, की जा रही है जिसके फलस्वरूप झींगे की पैदावार 600 - 800 किलोग्राम /हेक्टेयर से बढ़कर 1000 - 1750 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक की जा चुकी है। समुद्री खेती में खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयुक्त होनेवाले अरटिमिया का व्यवसायिक उत्पादन 12 किलोग्राम / हेक्टेयर की दर से सम्भव है।

धरती पर खनिज भण्डार प्रायः अपने उत्खनन के चर्मोत्कर्ष पर होने के कारण लुप्तप्राय अवस्था तक पहुंच रहे हैं। इनके वैकल्पिक भण्डार के स्रोत महासागर ही हो सकते हैं जहां हर खनिज, क्षरण व प्रवाहन आदि प्रक्रिया से अन्त में पहुंच कर एकत्र होता है। वैज्ञानिकों ने समुद्र से खनिज भण्डारों की खोज, उनकी गुणवत्ता, भण्डार और उनके विस्तार का पता लगाया है। कोंकण तट पर, विस्तृत अध्ययन से, भारी मूल्यवान खनिज कणों की काफी मात्रा का

समुद्री रेत में पता लगा है और 2-5 किलोमीटर तट से दूर तक 10-13 मीटर गहराई में 125 लाख टन इलेमिनाईट का भण्डार खोजा गया है। रेत में कहीं - कहीं इसकी मात्रा 10% तक भी पायी गयी है।

मध्य हिन्द महासागर के पांच किलोमीटर गहरे पानी से, बहुधात्विक पिण्डों की खोज, 26 जनवरी, 1981 को संस्थान द्वारा की गई और पिण्डों की गुणवत्ता, विस्तार, भण्डार और खनन प्रकृति के लिए एक विस्तृत अध्ययन किया गया। इसके आधार पर भारत को अप्रैल, 1992 में समुद्री कानून कान्फ्रेन्स द्वारा अग्रसर विनियोक्ता की मान्यता मिली और वैज्ञानिकों के अथक प्रयास से संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र तल प्राधिकरण में, भारत का बहुधात्विक पिण्डों के खनन का दावा प्रस्तुत हुआ। इसमें हिन्द महासागर के 150 हजार वर्ग किलोमीटर में आच्छादित इन पिण्डों के 13,350 लाख टन भण्डार पर अधिकार मांगा गया। जो कि अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र जल प्राधिकरण की प्रिप्रेटरी कमेटी द्वारा भारत के लिए अग्रसर क्षेत्र घोषित किया गया है। इस भण्डार में तांबा, निकेल, कोबाल्ट की संयुक्त मात्रा 218.4 लाख टन के लगभग होने की सम्भावना है। हाल ही में बहुधात्विक पिण्डों के कार्यक्रम के अन्तर्गत, पिण्डों पर अनुसंधान के अलावा हिन्द महासागर बेसिन के लगभग, 1,45,000 वर्ग किमी. क्षेत्र के विस्तृत बैथीमीट्रिक मानचित्र तैयार किये गये हैं।

सुरक्षित औषधि एवं भेषज आवश्यकताओं के लिए विस्तृत समुद्री सम्पदा का उपयोग भी प्रारम्भ हो गया है। कुछ समुद्री जीवों की जीव वैज्ञानिक क्रिया के कई पहलुओं से जांच की गई उनमें कुछ ने उत्साहवर्धक परिणाम दर्शाये हैं। भारत - अमरीकी सहयोग कार्यक्रम के अन्तर्गत इस परियोजना में केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ भी शामिल है। प्रवालों, समुद्री वनस्पति तथा जीवों द्वारा दर्शाई गई कुछ महत्वपूर्ण क्रियाशीलतायें इस प्रकार हैं - पीड़ाहर एवं सी.एन.एस. प्रदाहक विरोधी, अल्प रक्त दाब कारक, शुक्रनाशक, बैक्टीरिया विरोधी आदि। कुछ जीवों की रासायनिक जांच से कई तरह के स्टेराइड्स, वसीय अम्ल व उसके ईस्टर, हैलो - यौगिक लैक्टोन, अल्कोहल एवं उनके ईस्टर इत्यादि का निष्कर्षण सम्भव हुआ है। स्पंज की छः नई जातियों तथा नरम प्रवाल की ग्यारह नई जातियों की खोज हुई तथा उनका वर्णन किया गया। एकेंथस इल्लिसिफोलियस (2-बेंजोक्सेजोलिनिन) एवं एकेंथोफोरा स्पाइसीफेरा (ओरेंटिमाइड) के क्रियाशील प्रमुख तत्व संश्लेषित किये गये हैं।

मानसून के सन्दर्भ में यह निश्चित हो गया है कि दक्षिणी- पश्चिमी मानसून को हिन्द महासागर, विशेषतः उत्तरी हिन्द महासागर, से ऊर्जा प्राप्त होती है। उत्तरी हिन्द महासागर की सामुद्रिक प्रक्रियाओं से मानसून बदलाव का सम्बन्ध सुनिश्चित किया गया। उत्तरी हिन्द महासागर की भौतिक तथा गतिशील प्रणाली समझने के लिए कई अध्ययन किये गये। कुछ वैज्ञानिक समुद्र में मानसून की भविष्यवाणी करने योग्य घटकों की खोज में लगे हैं।

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था मानसून पर निर्भर करती है तथा पूर्वकालिक जलवायु का ज्ञान भविष्य के लिए आवश्यक है। पश्चिमी शैल्फ के अवसाद की प्रकृति, समय, तथा संरचना के पुरा - जलवायु अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि करीब 10,000 वर्ष पूर्व के भारतीय उपखण्ड की जलवायु अर्द्धशुष्क थी। अर्द्धशुष्क जलवायु से वर्तमान आर्द्र अवस्था का बदलाव भूगर्भीय "यकायक" था जिसका सम्बन्ध वर्तमान समुद्र तल से 10 मीटर नीचे के समुद्र तल से था।

समुद्री पर्यावरण की रक्षा तथा भारत के समुद्र तटीय क्षेत्र में प्रदूषकों की निगरानी से सम्बन्धित अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि उत्तरी अरब सागर में घुलित पैट्रोलियम हाइड्रोकार्बन से निर्धारित क्षेत्रों में, लाभदायक व हानिकारक दोनों तरह के प्रभाव देखे गये हैं। पादप - प्लवकों पर घुलित पेट्रोलियम के प्रभाव पर किए गए अध्ययन से पता चलता है कि हाइड्रोकार्बन घटक अपनी प्रकृति के हिसाब से पादप - प्लवक समुदाय की वृद्धि अथवा क्षय करते हैं। बंगाल की खाड़ी की तुलना में अरब सागर में हाइड्रोकार्बन की मात्रा अधिक है।

समुद्र वैज्ञानिक अनुसंधान में अधिकतर यन्त्र एवं उपकरणों का आयात करना पड़ता है। अब संस्थान इन उपकरणों के विकास में लगा हुआ है। निम्न उपकरणों का विकास किया गया है : ज्वार - भाटा तथा लहर मापक, लवण मापक, गहराई मापक, धारा मापक, माइक्रोप्रोसेसर पर आधारित ज्वार - भाटा गेज, सी.टी.डी. रिकार्डर एवं अन्तर्जल ध्वनि यन्त्र। इसके अतिरिक्त अन्टार्कटिका में एक मौसम स्टेशन स्थापित किया गया।

अन्य उभरती तकनीकों में सुदूर संवेदन, ध्वनिक टोमोग्राफी तथा मॉडलिंग प्रमुख हैं। सामुद्रिक अध्ययनों में सुदूर संवेदन तकनीक का उपयोग एवं विकास करने हेतु संस्थान में एक सुदूर संवेदन केन्द्र स्थापित किया गया है। सुदूर संवेदन का उपयोग मैंग्रोव व सम्पदा का मूल्यांकन एवं तटीय भूसंरचनात्मक अध्ययन के लिए किया गया। अरब सागर के वर्ण पर सुदूर संवेदन के आंकड़ों का प्रयोग करके किये गये अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि पादप - प्लवक की अभिवृद्धि प्रतिक्रिया; जैविक युगपत अंतर्वृद्धि को बढ़ावा देती है तथा इसके साथ ही अंतःवर्षीय बदलाव समुद्र सतह तापमान के विकास के फलस्वरूप जलवायु को प्रभावित करता है।

समुद्र ध्वनिक टोमोग्राफी सिनाप्टिक स्केल पर समुद्र के अन्तरीय भाग की सूचना प्राप्त करने के लिए एक उभरती हुई तकनीक है। यदि यह तकनीक वास्तविकता बन जाती है तो ठीक प्रकार से लगाये गये ध्वनिक ट्रांसमीटर एवं संग्राहक के जाल से कुछ ही मिनटों में समुद्र के विस्तृत क्षेत्रों से आंकड़े प्राप्त करना सम्भव हो जाएगा।

समुद्र के युक्तिसंगत अन्वेषण के लिए मॉडल अध्ययन आवश्यक है जिससे कि समुद्री पर्यावरण की भविष्यवाणी भी की जा सके। उत्प्रवाह, तापीय संरचना एवं उत्तरी हिन्द महासागर के जैविक उत्पादन एवं पूर्वी तट पर तूफान के लिए भविष्यवाणी मॉडल के विकास के लिए अध्ययन किए जा रहे हैं।

अंटार्कटिक शोध में भी राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों ने पहल की। संस्थान को पहले अंटार्कटिक अभियान के आयोजन का गौरव प्राप्त है। उसके उपरान्त प्रत्येक अभियान में संस्थान के वैज्ञानिक सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं।

हाल ही में अरब सागर में ग्रीन हाउस गैसों - कार्बन डाईआक्साइड तथा नाइट्रस आक्साइड के वितरण का विस्तृत अध्ययन किया गया। अरब सागर में अकार्बनिक - कार्बन घटकों के अध्ययन से संकेत मिलता है कि अनुमापन क्षारत्व उत्तर से दक्षिण की ओर तथा पश्चिम से पूर्व की ओर कम होता जाता है। कुल कार्बन डाईऑक्साइड ने भी अनुमापन क्षारत्व के समान ही व्यवहार किया परन्तु उसमें दक्षिण की ओर सभी गहराई स्तरों पर अत्यन्त स्पष्ट रूप से घटने की प्रवृत्ति मिली।

अरब सागर में 16 केन्द्रों पर नाइट्रस ऑक्साइड के मापन से सतह संतृप्ति की उच्च मात्रा तथा परिणामस्वरुप नाइट्रस आक्साइड का विस्तृत वायुमंडलीय अभिवाह प्रकट हुआ। पश्चिमी - उत्तरी प्रशांत महासागर से नाइट्रस आक्साइड के नाइट्रोजन समस्थानिक संघटन पर अब तक प्रस्ताविक क्रियाविधि का पुनर्मूल्यांकन किया गया। यह प्रस्तावित किया गया कि अमोनियम नाइट्रिक आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड मार्ग द्वारा निरुपित नाइट्रीकरण बिनाइट्रीकरण युग्म सागर में नाइट्रस आक्साइड के उत्पादन का संभावित प्रबल रचनातंत्र हो सकता है।

संस्थान के वैज्ञानिकों ने अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम "हर्ड आइलैंड प्रयोग" में भाग लिया। हर्ड आइलैंड पर उत्पन्न किये गये ध्वनिक संकेत हिन्द, अटलांटिक एवं प्रशांत महासागर में सात जगहों पर मानीटर किये गये। स.वै.अ. पोत सागरकन्या द्वारा हिन्द महासागर में आंकड़े प्राप्त किये गये। इनका विश्लेषण किया जा रहा है।

अरब सागर में गल्फ तेल के फैलने से संबंधित प्रभाव के निर्धारण के लिए आधारभूत अध्ययन, मत्स्य तथा समुद्रवैज्ञानिक पोत सागर - सम्पदा की समुद्री यात्रा द्वारा किया गया।

संस्थान के आगामी वर्षों तक जारी रहनेवाले मुख्य अनुसंधान कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं :-

- सार्वभौम परिवर्तन कार्यक्रम
- बहुधात्विक पिण्ड कार्यक्रम
- अण्टार्कटिक कार्यक्रम
- तटीय क्षेत्र प्रबन्धन
- भारत के अनन्य आर्थिक क्षेत्र का समुद्रविज्ञान
- संक्षारण
- समुद्री उपकरण
- ध्वनिक टोमोग्राफी
- समुद्री पुरातत्व, तथा
- समुद्री जैव प्रौद्योगिकी

(शेष भाग पृष्ठ 123 पर)

भारत में लौह एवं इस्पात प्रौद्योगिकी का विकास : सफलता के पथ पर

डॉ .शैबाल कान्ति गुप्त
अध्यक्ष, सह प्रबंध निदेशक
एवं
डॉ.लोकेश कुमार सिंहल
निदेशक (प्रौद्योगिकी) मेकन,
रांची - 834002

किसी देश की आर्थिक प्रगति अन्य बातों के अलावा काफी हद तक, उस देश की प्रौद्योगिकीय प्रगति की गति पर निर्भर करती है । किसी देश के उद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास में इस्पात क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । पिछले 4 दशकों के दौरान हमारे देश में परिष्कृत इस्पात (फिनिस्ड स्टील) की उत्पादन क्षमता एक मिलियन (एक मिलियन = दस लाख) टन से बढ़कर 150 लाख टन हो गयी है । पूरे विश्व में लौह एवं इस्पात प्रौद्योगिकियों की विभिन्न प्रक्रियाओं में असाधारण रूप से उन्नति होने के कारण भारतीय इस्पात उद्योग ने हाल ही में अपने प्रचालन संयंत्रों (ऑपरेटिंग प्लांट) के निष्पादन की समीक्षा की है और अपने सभी वर्तमान संघटित इस्पात संयंत्रों के लिए वृहद आधुनिकीकरण कार्यक्रमों को अपनाया है । विशाखापट्टनम में हाल ही में चालू किये गए नए इस्पात संयंत्र में बहुत सी नई प्रौद्योगिकियों को उपयोग में लाया गया है ।

भारत को लौह एवं इस्पात निर्माण प्रौद्योगिकी की अपनी विरासत, जो 4000 वर्षों से भी अधिक प्राचीन है, पर गर्व है । वैदिक ऋचाओं में लोहे के औजारों का उल्लेख मिलता है । प्राचीन महाकाव्यों में तो लोहे के बारे में कतिपय संदर्भ भी मिलते हैं । बहरहाल, पुरातत्वीय अन्वेषणों में लगभग ईसा पूर्व 1100 में इसका पता चलता है । भारतीय लौह एवं इस्पात उद्योग प्रौद्योगिकी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान "वूट्ज"(Wootz) इस्पात (crucible Steel) का निर्माण है । दिल्ली के कुतुबमीनार के परिसर में स्थित राजा पोरस द्वारा अलेक्जेंडर को भेंट स्वरूप प्रदान किया गया करीब 30 पाउन्ड का प्राचीन लौह स्तम्भ, धार स्थित लौह स्तम्भ, कोणार्क स्थित सूर्य मंदिर का दण्ड, दमस्कस तलवारों की दन्तकथा - वस्तुत: ये सभी उदाहरण देश की प्राचीन लौह एवं इस्पात प्रौद्योगिकी की प्रशंसा और चमत्कार के प्रतीक हैं ।

अंग्रेज चाहते थे कि उनके उत्पादनकर्ताओं के लिए भारत एक बंधुआ उपनिवेशिक बाजार बन कर रहे । फलत: प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की हवा को इस उप महादेश में काफी लंबी अवधि तक प्रवेश नहीं मिल सका । 1874 में आसनसोल के निकट, कुल्टी में बंगाल आयरन वर्क्स द्वारा भारत में लौह एवं इस्पात के उत्पादन के लिए पहला महत्वपूर्ण प्रयास किया गया ।

टाटा के द्वारा 1911 में जमशेदपुर में पहले संघटित इस्पात संयंत्र की स्थापना की गई और इस प्रकार, भारत ने 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में आधुनिक लौह एवं इस्पात प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रवेश किया । इसके अलावा, दो और इस्पात संयंत्रों - 1918 में इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कंपनी एवं 1923 में मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स (अब वी. आई .एस .एल.) की स्थापना की गई । इन सभी इस्पात संयंत्रों में उस समय उपलब्ध प्रौद्योगिकियों (स्टेट-ऑफ द आर्ट टेक्नोलोजी) को अपनाया गया था ।

इन संघटित इस्पात संयंत्रों के साथ ही देश में लघु इस्पात संयंत्रों का भी विकास हुआ । 1945 तक करीब 15 विद्युत चाप भट्टियाँ (इलेक्ट्रिक आर्क फर्नेस) थीं जो करीब 70,000 टन प्रतिवर्ष से भी अधिक स्टील कास्टिंग एवं इंगटों का उत्पादन करती थीं । उनके अलावा, करीब 100 से भी अधिक "रीरोलिंग मिलें थीं जिनमें निवेश सामग्रियों के रूप में या तो "रीरोलेबल स्क्रैप" अथवा " बिलेट" का इस्तेमाल होता था ।

देश की स्वाधीनता अपने साथ राष्ट्र निर्माण एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की नयी भावना लाई । उद्योगों में इस्पात की महत्ता को स्वीकार करते हुए योजनाकारों ने लौह एवं इस्पात उत्पादन के संपूर्ण विकास के कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी । इसके फलस्वरूप भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 1954 में हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड (एच एस एल) की स्थापना की गई ताकि पश्चिम जर्मनी, सोवियत संघ एवं ब्रिटेन से प्राप्त वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग से क्रमशः राउरकेला, भिलाई एवं दुर्गापुर में दस लाख टन क्षमता के तीन इस्पात संयंत्रों की स्थापना की जा सके एवं उन्हें चलाया जा सके । बाद में इस्पात की दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही जरूरतों को पूरा करने के लिए तृतीय योजना अवधि के दौरान इन तीनों इस्पात संयंत्रों, आर एस पी को 1.8 मि. टन तक, बी एस पी को 2.5 मि. टन तक एवं डी एस पी को 1.6 मि. टन तक, विस्तार किया गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान एक और इस्पात संयंत्र को बोकारो में चालू किया गया । शुरू में इसकी क्षमता 1.7 मि. टन थी । बाद में, भिलाई एवं बोकारो इस्पात संयंत्रो का 4.0 मि. टन क्षमता तक पुनः विस्तार किया गया । निजी क्षेत्र के इस्पात संयंत्र, टिस्को ने भी अपने आधुनिकीकरण का दूसरा चरण पूरा किया और अपनी क्षमता को 2.3 मि. टन प्रतिवर्ष तक बढ़ा लिया । विशाखापट्टणम इस्पात संयंत्र की प्रथम चरण की सुविधाओं को भी हाल ही में चालू किया गया है ।

संघटित इस्पात संयंत्रों की स्थापना एवं विस्तार कार्य के अलावा, स्वाधीनता के बाद लघु इस्पात क्षेत्र, जिसमें मुख्यतः विद्युत चाप भट्ठियों का प्रचालन किया जाता है, में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है ।

लौह एवं इस्पात प्रौद्योगिकी में विकास

पिछले चार दशकों के दौरान विश्व में इस्पात उद्योगों में हुए प्रौद्योगिकी विकास उससे पहले के 100 वर्षों में किये गये विकास से कहीं ज्यादा हैं ।

विश्व में कच्चे इस्पात का संपूर्ण उत्पादन 1870 में 5 लाख टन था जो वर्ष 1900 तक बढ़कर करीब 28 लाख टन हो गया । 1950 में यह 1900 लाख टन तक पहुंच गया था। पिछले चार दशकों के दौरान इस्पात का उत्पादन बढ़कर करीब 7800 लाख टन प्रतिवर्ष तक पहुँच गया है।

प्रस्तुत लेख में दुनिया में हो रहे प्रौद्योगिकीय विकास की संक्षेप में चर्चा की गई है । साथ ही अपनी स्थितियों के अनुकूल आधुनिक अभिनव प्रौद्योगिकियों के आत्मसात्करण, अवशोषण एवं विकास के कार्य में भारतीय इस्पात उद्योग द्वारा की गई प्रगति को बताया गया है । इन विकास कार्यों को अच्छी तरह से समझने के उद्देश्य से इनके बारे में कोक निर्माण, लौह निर्माण एवं ढलाई (कास्टिंग) तथा बेलन (रोलिंग) जैसे मुख्य शीर्षकों के तहत चर्चा की गई है ।

सार्वभौमिक स्थिति

कोक निर्माण : कोक निर्माण के क्षेत्र में पिछले दो दशकों में जो उल्लेखनीय प्रगति हुई है, वह है ऊँची भट्ठियों का इस्तेमाल पहले इस्तेमाल की गई 4.3 मी. एवं 5.0 मी. भट्ठियों की तुलना में आज 7 मी. ऊँची भट्ठियाँ रूस, जर्मनी, फ्रांस, जापान, भारत आदि देशों में आम रूप से प्रचलित हैं। कोक निर्माण के क्षेत्र में अन्य उल्लेखनीय प्रगति के पहलू है, स्टैम्प चार्जिंग, कोयले की सेलेक्टिव क्रशिंग, कोयले का विलायक परिष्करण (सालवेन्ट रिफाइनिंग ऑफ कोल), कोल चार्ज की आंशिक ब्रिकेटिंग, कोक का शुष्क शीतलीकरण इत्यादि। ये सभी विकास कार्य कोक की गुणवत्ता, ऊर्जा की खपत में कमी लाने तथा गैर-कोकिंग कोयले द्वारा कोकिंग कोयले के आंशिक रूप से परिवर्तन करने के उद्देश्य पर आधारित थे। कोयले की तैयारी (कोल प्रेपरेशॅन) और कोक निर्माण प्रौद्योगिकियों के कालानुक्रम विकास को तालिका-1 में दिखाया गया है ।

लौह निर्माण : आधुनिक लौह एवं इस्पात उद्योग का विकास कोक धमन भट्ठियों के इस्तेमाल के साथ शुरू हुआ । कोक भट्ठियों की स्थापना के साथ धमन भट्ठियों के आकार तथा इनकी क्षमता में क्रमिक रूप से वृद्धि हुई है । पिछले चार दशकों के दौरान धमन भट्ठी के आकार में वृद्धि के साथ-साथ बेहतर उत्पादकता, न्यूनतम कोक की दर, समनुरूप गुणवत्ता वाले तप्त धातु आदि प्राप्त करने हेतु धमन भट्ठी प्रक्रिया के प्रचालन को सघन बनाने के वास्ते कतिपय विकास कार्य

तालिका - 1
कोक निर्माण प्रौद्योगिकियों का काल-क्रमानुसार विकास

अवधि	विकास
1950	अधिक क्षमतावाले ओवन (6.0 मी.ऊँचाई तक) फॉर्म्ड कोक, शुष्क कोक शीतलीकरण स्टैम्प चार्जिंग
1960	कोयले का पूर्व ताप (प्रीहीटिंग ऑफ कोल), तेल-संचयन
1970	कोल चार्ज की आंशिक ब्रिकवेटिंग, कोयले की सेलेक्टिव क्रशिंग, अधिक क्षमतावाले ओवन (7.0 मी. ऊँचाई तक), बैटरियों की दहन प्रक्रिया हेतु कंप्यूटर नियंत्रित प्रणाली
1980	अधिक क्षमतावाले ओवन (7.85 मी. ऊँचाई तक), ऊँचे ओवनों में स्टैंप चार्जिंग

सम्पन्न हुए हैं । पिछले चार दशकों के दौरान धमन भट्ठी प्रौद्योगिकी में हुए विकास को तालिका -2 में दिखा गया है।

प्रत्यक्ष अवकरण प्रक्रिया (डायरेक्ट रिडक्शॅन प्रोसेसेज), जिसने स्वीडन (होगोनस प्रोसेस) में 1911 में अपनी विनम्र शुरूआत की थी, को वास्तव में मिडेक्स एवं हाइल प्रक्रिया के विकास के साथ पाँचवें और छठे दशक के आखिर में ही प्रभावशाली बढ़त मिली । प्रत्यक्ष अवकरित लोहे (डी. आर .आई.) को इस्पात रद्दी (स्टील स्क्रैप), खासकर इस्पात निर्माण हेतु विद्युत चाप भट्ठियों के लिए , के बहुत बढ़िया विकल्प के रूप में पाया गया । अत: कई प्रत्यक्ष अवकरण प्रक्रियाएँ सामने आईं किन्तु वाणिज्यिक रूप से इनमें से कुछ एक ही स्थापित हो सकीं । विश्व में प्रत्यक्ष अवकरण संयंत्र की वर्तमान स्थापित क्षमता 29.5 मि. टन के करीब है । इसके गैस आधारित डी आर प्रक्रियाओं का अंश 90% है।

इस्पात निर्माण एवं ढलाई

पिघले हुए कच्चे लोहे को इस्पात के रूप में परिष्कृत करने के लिए वर्ष 1850 में "बेसेमर" प्रक्रिया को पहली बार प्रयोग में लाया गया । "ओपेन हार्थ" प्रक्रिया के बाद 1860 में "ऐसिड बेसेमर" प्रक्रिया अपनायी गई और इसके बाद 1870 में "बेसिक बेसेमर" प्रक्रिया । बहुत से संयंत्रों में इस्पात निर्माण की एक दोहरी प्रक्रिया, अर्थात ऐसिड बेसेमर कनवर्टर

तालिका - 2
धमन भट्ठी प्रौद्योगिकी का कालक्रमानुसार विकास

अवधि	विकास
1950 के पूर्व	बंद आकार का फर्नेस टॉप, बेल चार्जिंग प्रणाली/ तप्त धमन, धमन की आद्रता, आकार में वृद्धि (करीब 1500 घन मी .)
1950	धमन आद्रता का नियंत्रण, अधिक ऊपरी दबाव, चार्ज वितरण प्रतिमान, बर्डेन की छानस तथा आमापन, (स्क्रीनिंग एण्ड साइजिंग ऑफ बर्डेन)/ स्वत: स्राव सिंटर एवं पैलेट का इस्तेमाल, धमन भट्ठी आकार में वृद्धि (करीब 2000 घन मी.)
1960	एक्सटर्नल डिसल्फाराइजेशन, बर्डेन वितरण नियंत्रण, उन्नत गुणों वाली सुपर फ्लाक्सड सिंटर का इस्तेमाल, मूवेबल थ्रोट आर्मर, सहायक ईंधन अन्त:क्षेपण, अधिक ऑक्सीजन वाली वायु का इस्तेमाल, उच्च धमन तापन, धमन भट्ठी आकार में वृद्धि (करीब 3000 घन मी.)
1970	बर्डेन चार्जिंग की "बेल-लेस" प्रणाली, धमन का अनाद्रीकरण, ऊर्जा पुन: प्राप्ति टर्बाइन, कप्यूटरीकरण एवं स्वचलन, संसजक क्षेत्र प्रतिमान (कोहेसिव जोन मॉडेल) के अध्ययन के जरिए बर्डेन गुणों का इष्टतम उपयोग करना, रिडॅक्शॅन काइनेटिक्स इत्यादि, धमन भट्ठी आकार में वृध्दि (करीब 5000 घन मी.)
1980	तप्त धातु की रनर डिसिलिकॉनाइजेशन, तप्त धातु का समकालिक एक्सटर्नल, डिसल्फाराइजेशन एवं डिफॉस्फोराइजेशन, कोयला अन्त:क्षेपण के द्वारा तेल अन्त:क्षेपण का प्रतिस्थापन, कोयला-तेल अन्त:क्षेपण, सघन इन्स्ट्रुमेंटेशन एवं स्वचलन, बी एफ आकार में पुन: वृद्धि (करीब 5500 घन मी.)

एवं ओपेन हार्थ फर्नेस के संयोजन को भी अपनाया गया। 20 वीं सदी के शुरू होने तक इस्पात निर्माण, खास कर मिश्र एवं विशिष्ट इस्पात के उत्पादन के लिए विद्युत चाप भट्ठियों (इ .ए .एफ.) का ही इस्तेमाल किया जाता रहा। इस्पात निर्माण प्रक्रिया में 1950 तक ओपन हार्थ भट्ठी का प्रभावी स्थान था । बेसिक ऑक्सीजन भट्ठी (बी. ओ. एफ.) प्रक्रिया के प्रवेश के साथ ही 5वें एवं 6ठे दशकों में इस्पात निर्माण प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण विकास हुए ।

बी.ओ.एफ. इस्पात निर्माण के क्षेत्र में भी कतिपय विकास हुए है, जैसे बोटम ब्लोइंग, संयुक्त ब्लोइंग प्रथा, तापमान के मापन एवं अनुवर्ती उपयोग के लिए कनवर्टर गैस के विश्लेषण, पुनः प्राप्ति के मापन, प्रक्रिया के कम्प्यूटरीकरण हेतु संयुक्त सबलान्स प्रणाली आदि ।

इसी तरह, विद्युत चाप भट्ठी जिसकी काफी कम क्षमता थी, को उच्च शक्ति के ट्रान्सफार्मरों के विकास के कारण यथेष्ट समर्थन मिला । इ.ए.एफ. इस्पात निर्माण प्रक्रिया के विकास पर लघु /बाजार संयंत्र अवधारणा, जो स्थानीय रूप से उपलब्ध इस्पात-रद्दी का इस्तेमाल करती हैं तथा इस्पात उत्पादों की स्थानीय जरूरतों को भी पूरी करती हैं, का काफी प्रभाव पड़ा है । डी .आर. संयंत्रों से डी .आर .आई . की उपलब्धता ने भी इस्पात निर्माण की इ.ए.एफ. प्रक्रिया के अनवरत विकास को समर्थन प्रदान किया है ।

गुणवत्ता वाले इस्पात का उत्पादन करने एवं इसमें वृद्धि करने के उद्देश्य से 1960 एवं इसमें वृध्दि करने से काफी अधिक संख्या में सहायक परिष्करण प्रौद्योगिकियां अस्तित्व में आयीं, हालांकि इन प्रौद्योगिकियों को बाद के वर्षों में काफी लोकप्रियता मिली । इस्पात निर्माण प्रौद्योगिकियों के कालक्रमानुसार विकास को तालिका-3 में दिखाया गया है।

5वें दशक में अनवरत ढलाई के क्षेत्र में एक और महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकीय विकास हुआ । अनवरत ढलाई के लाभ थे गुणवत्ता एवं उत्पादन में सुधार, ऊर्जा की बचत, परिष्करण कारखाने (फिनिशिंग मिल) में प्रत्यक्ष बेलन (डायरेक्ट रोलिंग) की संभावना, पूँजी निवेश और उत्पादन लागत में कमी इत्यादि । अनवरत ढलाई के क्षेत्र में इन वर्षों में काफी विकास हुआ है जिसे तालिका-4 में दिखाया गया है।

तालिका-3 इस्पात निर्माण प्रौद्योगिकी में विकास

अवधि	विकास
1950	एल डी प्रक्रिया का विकास, एल डी - ए सी एवं ओ एल पी, प्रक्रिया का विकास, इ ए एफ में आयरन अयस्क के जरिए गलन एवं डिकार्बनीकरण तथा दोहरी स्लैग प्रथा
1960	अधिक संख्या में बी ओ एफ कनवर्टरों की स्थापना, कनवर्टर के आकार में 100 टन तक वृद्धि, निरूद्ध दहन प्रणाली का विकास एवं अपशिष्ट गैस की पुनः प्राप्ति, टनेज इस्पात उत्पादन हेतु वृहद क्षमतावाली इ ए एफ भट्ठियों का इस्पात संयंत्रों में इस्तेमाल, बोटम ब्लोन कनवर्टर का विकास, एकल स्लैग प्रथा का प्रयोग
1970	वेसॅल आकार में 400 टन तक वृद्धि, स्पांज आयरन का इस्तेमाल, उन्नत उष्मसह गुणवत्ता के जरिए 2000 तक जीवन क्षमता में वृद्धि, यू एच पी चाप भट्ठी का विकास, ऑक्सीजन की सहायता से गलन, जल शीतल वाले किनारे की दीवार का उपयोग, स्पांज लोहे का उपयोग
1980	संयुक्त ब्लोईंग प्रौद्योगिकी का विकास, स्क्रैप मेल्टिंग क्षमता में वृद्धि हेतु कोयले, ईंधन का अन्तःक्षेपण, सब्लेंस का उपयोग, लैंडल फर्नेस एवं अन्य सेकेन्डरी रिफाइनिंग इकाई का उपयोग, जल से शीतल की गई छत एवं किनारे की दीवार के साथ अत्यन्त उच्च शक्तिशाली भट्ठी का उपयोग, आक्सी फ्यूएल बर्नर का उपयोग स्लैग विहीन टैपिंग एवं फोमी स्लैग प्रथा फ्यूमों के अपशिष्ट ताप का उपयोग कर स्क्रैप की तापन पूर्व क्रिया, स्वचलन एवं कम्पूटरीकरण

बेलन (रोलिंग)

यांत्रिकी प्रक्रिया एवं निर्माण (मेकेनिकल वर्किंग एण्ड शेपिंग)में बेलन प्रक्रिया ने 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रमुख स्थान प्राप्त किया जब अधिकांश शिलिका इस्पात (इनगाट

तालिका-4 अनवरत ढलाई प्रौद्योगिकी का विकास

अवधि	विकास
1950	आस्ट्रिया एवं यू. के. में पहले बिलेट ढलाई संयंत्र की स्थापना, स्टेनलेस स्टील स्लैब एनं मिश्र इस्पात बिलेट हेतु पहली अनवरत ढलाई मशीन की स्थापना
1960	जलमग्न टोंटी (सब्मर्ज्ड नॉजल) एवं पाउडर फ्लक्स के उपयोग में विकास, लैडलों एवं टण्डिशों में स्टॉपर राडों के प्रतिस्थापन के लिए स्लाइडगेट वाल्वों का उपयोग
1970	अनुक्रम ढलाई (सिक्वेंस कास्टिंग) का सघन उपयोग, नाइट्रोजन एवं आर्गन के द्वारा टण्डिश, स्ट्रीम की श्राउडिंग, उच्च गति से बिलेटों की ढलाई के लिए बहुविध साँचो का विकास, परिवर्तनीय चौड़ाई वाले स्लैब कास्टर, स्वचलन सांचा स्तर नियंत्रण, समतल अनवरत ढलाई, इलेक्ट्रो मैगनेटिक स्टिरिंग
1980	वायु शीतलीकरण, अनवरत ढलुआं बिलेटों एवं स्लैबों की तप्त चार्जिंग एवं प्रत्यक्ष बेलन, थिन स्लैब एवं स्ट्रिप कास्टिंग

स्टील) को तप्त बेलित उत्पादनों (हॉट रोल्ड प्रोडक्ट्स) के रूप में तैयार किया गया ।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात निर्माण की धूम मचने के साथ अपने सामर्थ्य में क्रमिक वृध्दि सहित बेलन कारखाने की नई किस्म अस्तित्व में आई। छठे दशक के शुरू में, अनवरत ढलाई प्रौद्योगिकी के प्रवर्तन ने सेमिज के उत्पादन में प्रारंभिक बेलन कारखानों का विकल्प प्रस्तुत किया । 1950 और 1970 के बीच की अवधि में बेलन कारखानों में महत्वपूर्ण विकास हुए । इन विकास कार्यों की मुख्य विशेषताएँ थीं - बेलन गति में क्रमिक वृध्दि, ऊँची "वेट फीड" सामग्रियाँ, गुणवत्ता सुधार के उपाय आदि । पिछले दो दशकों के दौरान गुणवत्ता सुधार के स्टेलमोर शीतलीकरण और टेम्पकोर शीतलीकरण जैसे उपायों को क्रमश: वायर रॉड मिल तथा सेक्शन मिल में प्रवर्तित किया गया । हॉट स्ट्रिप मिल में विकास का तात्पर्य सुसंबद्ध अभिन्यास सहित अत्यंत दक्ष थर्ड जेनरेशन मिल थी । अनवरत ढलाई और तप्त बेलन मिल के प्रत्यक्ष संपर्क के लिए नई प्रक्रियाएं विकसित की गईं । इस कार्य के लिए त्रुटि विहीन निवेश दायक भण्डार (डीफेक्ट फ्री इनपुट फीड स्टॉक) का उत्पादन, अधिक तापमान पर बेलन तकनीक, दक्ष उत्पादन नियंत्रण प्रणाली इत्यादि जैसी प्रौद्योगिकियों को अपनाया गया । उत्पाद गुणवत्ता एवं उत्पादन में सुधार हेतु उन्नत संवेदिक प्रौद्योगिकियों एवं उच्च कोटि की गुणवत्ता प्रदान करने वाली कार्यप्रणाली, यथा हाइड्रॉलिक ऑटोमेटिक गेज नियंत्रण प्रणाली, क्राउन नियंत्रण उपाय इत्यादि को हॉट स्ट्रीप मिलों, प्लेट मिलों तथा शीतल बेलन मिलों में प्रवर्तित किया गया । कन्टीन्युअस पिकलिंग लाइन और टेण्डम कोल्ड रोलिंग मिल को एक संपूर्ण अनवरत लाइन में संघटित कर दिया गया । फलत: उपकरणों की लागत में बचत, संसाधन समय में कमी, उत्पादन में सुधार इत्यादि का लाभ प्राप्त हुआ ।

पिछले दो दशकों में "लेपन" तकनीक में भी अभूतपूर्व सुधार हुआ है । ऐसा विनिर्दिष्ट अनुप्रयोग का मुकाबला करने के वास्ते लागत प्रभावी उत्पादों की मांग करनेवाली बाजार की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धात्मक स्थितियों की अनुक्रिया स्वरूप हुआ है। परंपरागत सी. आर. शीटों के स्थान पर गैल्वानाइज्ड शीटों, आर्गेनिक लेपित शीटों, टर्न कोटेड शीटों इत्यादि का प्रयोग बढ़ता जा रहा है । उन्नत गुणधर्म की वजह से नये उत्पाद, जैसे गॅलवालूम एवं गलफेन इत्यादि का प्रयोग बढ़ता जा रहा है । बेलन मिलों में हुए प्रौद्योगिकीय विकास को तालिका -5में दिखाया गया है ।

भारत में प्रौद्योगिकीय विकास

हमारे अधिकांश संघटित इस्पात संयंत्रों की संरचना 5वें एवं 6ठे दशक में की गई थी । फलत: इन इस्पात संयंत्रों में से अधिकांश ने उस समय विद्यमान प्रक्रियाओं/ प्रौद्योगिकियों को अपनाया । वी.आई.एस.एल., जहाँ चारकोल धमन भट्टी के अलावा बिजली की कच्चे लोहे की भट्ठी को भी स्थापित किया गया है, को छोड़कर हमारे सभी

तालिका-5 वेलन मिल प्रौद्योगिकी का विकास

अवधि	विकास
1950	कम गति एवं कम क्षमतावाली वायर रॉड मिल, क्रॉस कण्ट्री टाइप मीडियम सेक्शन मिल, फर्स्ट जेनरेशन हॉट स्ट्रीप मिल
1960	मध्यम क्षमता एवं मध्यम गति की वायर रॉड मिल, कन्टीनुअस मल्टीलाइन बॉर, हल्की एवं मध्यम मर्चेण्ट मिल, अर्ध अनवरत मध्यम सेक्शन मिल, सेकेण्ड जेनरेशन हॉट स्ट्रिप मिल
1970	वॉयर रॉड मिल में स्टेलमोर शीतलन, हल्की एवं मध्यम मर्चेन्ट मिल में टेम्पकोर शीतलन प्रणाली का उपयोग, भारी सेक्शन मिल में रेलों का सर्वव्यापक वेलन, तृतीय जेनरेशन हॉट स्ट्रिप मिल
1980	अधिक क्षमता एवं अधिक गति वाली वायर रॉड मिल से आगे सघन स्ट्रिप मिल का विकास, अनवरत तापानुशीतन एवं प्रोसेसिंग लाइन, उन्नत एवं संगत उत्पाद गुणवत्ता हेतु वेलन मिलों में उन्नत संवेदी प्रौद्योगिकी सहित कंप्यूटर नियंत्रण

संघटित इस्पात संयंत्रों ने कच्चे लोहे के उत्पादन के लिए परंपरागत कोक धमन भट्ठी प्रक्रिया प्रणाली को अपनाया है ।

इन वर्षों में संघटित इस्पात संयंत्रों के साथ-साथ लघु इस्पात क्षेत्र के विविध प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों में कई परिवर्तन किये गये हैं । ये प्रौद्योगिकीय परिवर्तन इस्पात संयंत्रों की प्रचालन इकाइयों में नई प्रौद्योगिकियों और प्रक्रियाओं को प्रवर्तित करके किये गये है। इन वर्षों में हुई भारतीय इस्पात उद्योग के प्रौद्योगिकीय विकास की स्थिति का संक्षिप्त वर्णन यहां दिया जा रहा है ।

कोक निर्माण : 180 कौप्पी कोक ओवनों को लगाने के साथ ही भारत में सर्वप्रथम कोक ओवन समूह की स्थापना टिस्को में की गई । तदनन्तर इस्को में 4.45 मी.ऊँची बैटरी लगाई गई । बी एस पी, आर एस पी एवं डी एस पी में भी इनके प्रथम एवं द्वितीय चरण के विस्तार कार्यक्रम में 4.3 मी. 4.5 मी. ऊँची बैटरियां लगाई गईं । बोकारो इस्पात संयंत्र के चालू होने के साथ पहली 5मी. ऊँची कोक ओवन बैटरी को स्थापित किया गया । प्रौद्योगिकीय विकास के साथ कदम मिलाते हुए, भिलाई के 4.0 मि. टन विस्तार कार्यक्रम और विशाखापट्टणम में हाल ही में चालू किये गए नए इस्पात संयंत्र में 7 मी. ऊँची कोक ओवन बैटरियों का निर्माण किया गया है । कोक शुष्क शीतलीकरण प्रोद्योगिकी जो वी एस पी के आधुनिक कोक ओवन समूह का एक भाग है, देश में अपनी किस्म की पहली प्रौद्योगिकी है । बी एस पी में कोयले की सेलेक्टिव क्रशिंग एवं न्यूमेटिक सेपरेशन सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। कोक की शक्ति को उन्नत बनाने के लिए स्टैम्प चार्जिंग प्रौद्योगिकी को एक कोक ओवन बैटरी में टिस्को द्वारा प्रवर्तित किया गया । बी एस पी में एक 2000 टन/प्रतिदिन क्षमता युक्त पी बी सी सी संयंत्र को लगाया और चालू किया गया।

लौह निर्माण : भारत में धमन भट्ठी का उपयोगी आकार 1911 में मात्र 200 घन मी. था । 1991 तक यह बढ़कर 3200 घन मी. हो गया । वी एस पी में 3200 घन मी. वाली दो धमन भट्ठियों को हाल ही में चालू किया गया है। बी एस पी की धमन भट्ठी बेल् रहित चार्जिंग प्रणाली, कास्ट हाऊस स्लैग ग्रेनलेशन 30% सिंटर के उपयोग, अधिक उच्च दाब, तप्त धमन तापमान इत्यादि जैसी अद्यतन प्रौद्योगिकियों से लैस है। धमन भट्ठी में कोक की खपत को कम करने के उद्देश्य से इन आधुनिक प्रौद्योगिकियों में से कुछ को बी एस एल एवं बी एस पी की 2000 घन मी. वाली धमन भट्ठियों में समाविष्ट कर लिया गया है । बी एस पी में धमन भट्ठी नं. 2 के लिए एक कोयला चूर्ण अन्तः क्षेपण प्रमाणन संयंत्र (कोल डस्ट इंजेक्शन डेमन्स्ट्रेशन प्लांट) की स्थापना की गई थी । टिस्को ने भी पिछले दिनों अपनी एक धमन भट्ठी में कोयला चूर्ण अन्तःक्षेपण संयंत्र को चालू किया है। "बर्डेन" के एकसमान वितरण के लिए टिस्को, इस्को एवं आर एस पी की कुछ धमन भट्ठियों में "मूवेबल" थ्रोट आर्मरों को स्थापित किया गया है । सघन आकार क्षेत्र (क्लोज साईज रेंज) में निवेश की गई कच्ची सामग्रियों से समनुरूप गुणवत्ता प्राप्त करने

के उद्देश्य से टिस्को, बी एस पी एवं डी एस पी (आधुनिकीकरण के अधीन) में "बेडिंग" एवं ब्लेडिंग" सुविधाओं का प्रावधान किया गया ।

अतीत में, संयंत्र की बढ़ाई गई उपलब्धता, उत्पादकता में की गई वृद्धि एवं सिंटर की उन्नत गुणवत्ता के अर्थों में सिंटर संयंत्रों के निष्पादन में सुधार लाने के लिए कतिपय उपाय किये गये है। इसकी वजह से "बर्डेन" में गुणवत्ता वाले सिंटर की प्रतिशतता को बढ़ाना संभव हुआ है । उदाहरण के लिए, पिछले 5 वर्षों में आर एस पी में धमन भट्ठी बर्डेन में सिंटर का अनुपात 40% से बढ़कर 5% बी एस पी में 61% से कर 70% हो गया है ।

एक तरफ तो हमारे यहाँ प्राकृतिक गैस/सम्बद्ध पेट्रोलियम गैस के पर्याप्त भंडार के अभाव हैं और दूसरी तरफ कोयला आधारित डी आर संयंत्रों की बहुत सी प्रारंभिक कठिनाइयाँ हैं । इन्हीं कारणों से डी आर प्रक्रियाओं को अपनाने में देश को सतर्कता बरतनी पड़ी हैं। 1980 में आंध्र प्रदेश के कोठागुडेम में गैरकोकिंग कोयला पर आधारित पहले प्रत्यक्ष अवकरण प्रदर्शन संयंत्र (डायरेएक्ट रिडॅक्शन डिमॉनस्ट्रेशन प्लांट) की स्थापना की गई । इसके निष्पादन से प्रोत्साहित होकर ठोस " रिडॅक्ट्रैन्ट" पर आधारित 4 और डी आर संयंत्रो को स्थापित किया गया । इसके अलावा कुछ और डी आर संयंत्र निर्माण का काम काफी आगे बढ़ गया है तथा बहुत से प्रस्तावों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है । बम्बई के खुले सागर (बाम्बे हाई) तथा गोदावरी नदी की घाटी में हाल ही में मिली प्राकृतिक गैस के चलते और अधिक वाणिज्यिक रूप से स्वीकृत गैस आधारित डी आर प्रक्रियाओं के लिए प्रवेश द्वार खुल गया है । मेसर्स एस्सार स्टील द्वारा 880,000 टन प्रतिवर्ष मिड्रेक्स डी आर संयंत्रो को सफलतापूर्वक चालू कर दिया गया है। हाइल प्रक्रिया पर आधारित एक दूसरे 600,000 टन प्रतिवर्ष क्षमता युक्त डी आर संयंत्र की स्थापना के बारे में सरकार द्वारा गंभीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है । तालिका-6 में भारत में डी आर संयंत्रों की स्थिति का वर्णन किया गया है ।

तालिका -6 भारत में डी आर संयंत्रों की स्थिति

संयंत्र	स्थिति	क्षमता, टन/प्रतिवर्ष
स्पांज आयरन इंडिया लि.	पालोंचा, आंध्र प्रदेश	60,000
ओडिशा स्पांज आयरन लि.	क्योंझर, उड़ीसा	1,00,000
इपिटाटा स्पांज आयरन लि.	जोडा, बिहार	90,000
बिहार स्पांज आयरन लि.	चांडिल, बिहार	150,000
सनफल आसरन एण्ड स्टील कं. लि.	भण्डारा, महाराष्ट्र	150,000
एस्सर गुजरात लि.	हजीरा, गुजरात	1,320,000
गोल्डस्टार स्टील लि.	विजयनगर, आंध्र प्रदेश	220,000
जिंदल स्ट्रीप्स लि.	रायगढ़, मध्यप्रदेश	100,000
हिन्दुस्तान इलेक्ट्रो-ग्रेफाइट लि.	बोराई, मध्य प्रदेश	60,000
ग्रासिम इण्डस्ट्रीज लि.	रायगढ़, महाराष्ट्र	600,000
कुमार मेटलर्जिकल लि.	नालगोंडा, आंध्र प्रदेश	60,000
बेलारी स्टील लि.	बेलारी, कर्नाटक	60,000
प्रकाश इण्डस्ट्रीज लि.	चम्पा, मध्य प्रदेश	150,000
नोवा आयरन एण्ड स्टील लि.	चम्पा, मध्य प्रेदश	150,000
रायपुर स्टील एण्ड एलॉय लि.	रायपुर, मध्य प्रदेश	30,000
निप्पन डेन्ड्रो इस्पात लि.	अलिबाग, महाराष्ट्र	10,00,000

इस्पात निर्माण एवं ढलाई

भारत में इस्पात निर्माण की शुरूआत टिस्को में चार 40 टन ओपन हार्थ भट्ठियों के चालू किये जाने के साथ हुई । टिस्को की स्टील मेल्टिंग शॉप की स्थापना के साथ ही भारतीय इस्पात उद्योग में दुतरफा इस्पात निर्माण प्रक्रिया (ड्यूप्लेक्स स्टील मेकिंग प्रोसेस) का प्रवेश हुआ । 7वें दशक के मध्य तक अप्रचलित ओपेन हार्थ प्रक्रिया के जरिये भारी मात्रा में भारतीय इस्पात का उत्पादन किया गया था हालांकि 5वें दशक के अंत में आर एस पी में ओपेन हार्थ प्रक्रिया सहित इस्पात निर्माण की एल डी प्रक्रिया को अपनाया गया था । बोकारो इस्पात संयंत्र, विशाखापट्टणम इस्पात परियोजना के चालू हो जाने एवं बी एस पी के 4.0 मि. टन तक विस्तार तथा दूसरी बार किये गये टिस्को आधुनिकीकरण ने एल डी इस्पात निर्माण प्रक्रिया के अंश को यथेष्ट रूप से बढ़ा दिया है । बी आई एस एल एवं एम ई एल में भी एल डी प्रक्रियाओं को अपनाया गया है । संयंत्र की विविध आधुनिकीकरण योजनाओं के तहत ओपेन हार्थ प्रक्रिया की ग्रेजुएल फेजिंग की वजह से भारतीय इस्पात उत्पादनों में एल डी प्रक्रिया का अंश और अधिक बढ़ जायेगा। पिछले तीन दशकों में ओपेन हार्थ प्रक्रिया के स्थान पर न सिर्फ अधिक दक्ष बी ओ एफ प्रक्रिया अपनाई गई बल्कि अन्य प्रौद्योगिकीय विकास भी हुए यथा कनवर्टर के आकार में 40 टन से 300 टन तक की वृद्धि बी एस एल एवं टिस्को में संयुक्त "ब्लोइंग" को अपनाना, एल. डी. गैस की पुन: प्राप्ति, "फ्लेम गनिटिंग" इत्यादि ।

"ओपेन हार्थ" इस्पात निर्माण के क्षेत्र में दो नई प्रौद्योगिकियों को क्रमश: बी एस पी, आर एस पी एवं बर्नपुर में प्रवर्तित किया गया है । बी एस पी एवं डी एस पी में ट्विन हार्थ प्रौद्योगिकी है तथा राउरकेला एवं बर्नपुर में कोर्फ प्रौद्योगिकी ।

छठे दशक तक ई ए एफ प्रौद्योगिकी लघु इस्पात संयंत्र/मिश्र इस्पात उत्पादकों के आस-पास केन्द्रित थी । 7वें दशक में, उदारीकृत अनुज्ञा पत्र नीति (लिबरलाइज्ड लाइसेंसिंग पॉलिसी) के कारण इ ए एफ आधारित लघु इस्पात संयंत्रों को भारी बढ़ावा मिला । फलत: इन वर्षों में देश के विभिन्न भागों में काफी अधिक संख्या में लघु इस्पात संयंत्र स्थापित किये गये । इ ए एफ आधारित कुछ इकाइयों , यथा मुकन्द, राथी एलायज, इशर स्टील्स आदि ने यू एच पी भट्ठी की स्थापना, जल शीतलक पट्टी के इस्तेमाल, "फोमी स्लैग" के अंगीकरण, ऑक्सीजन के अन्त: क्षेपण इत्यादि जैसी नवीनतम प्रौद्योगिकियों को प्रवर्तित करके अपने संयंत्रों को आधुनिक बना लिया है । सनफ्लैग आयरन एण्ड स्टील कंपनी द्वारा देश में सर्वप्रथम डी आर - इ ए एफ आधारित संघटित इस्पात संयंत्र की स्थापना की गई ये सरकार की उदार इस्पात नीति के कारण नये प्रौद्योगिकीय विकास के साथ इस तरह के और मध्य वर्गीय संयंत्रों की स्थापना की जा रही है ।

संघटित इस्पात संयंत्रों की अपेक्षा भारत के लघु इस्पात संयंत्र पहले के वर्षों में सहायक इस्पात प्रौद्योगिकी में पाये गये विकास कार्यों को अपने लाभ के लिए प्रवर्तित करने में काफी ग्रहनशील थे । आर .एस. पी., टिस्को एवं बी एस पी द्वारा बाद में विविध सहायक इस्पात प्रक्रियाओं को प्रवर्तित किया गया । बी आई एस एल एवं ए एस पी में भी क्रमश: "लैडल" भट्ठी एवं बी डी/ वी ओ डी इकाई स्थापित की गई ।

आज भारत में अनवरत ढलाई क्षमता करीब 6.0 मिलियन टन है जिसमें 3.1 मि. टन क्षमता संघटित इस्पात संयंत्रों में स्थापित की गई है और शेष लघु इस्पात क्षेत्र में। देश में कुल स्थापित क्षमता में अनवरत ढलुआं इस्पात (कान्टीनुअस कास्ट स्टील) का अंश करीब 25% है । बिलेटों, ब्लूमों एवं स्लैबों के उत्पादन के लिए अनवरत ढलाई संयंत्र बी एस पी, टिस्को एवं विशाखापट्टणम में सफलतापूर्वक काम कर रहे हैं । बीलेटों की ढलाई (कास्टिंग) के लिए डी एस पी में एक नई अनवरत ढलाई शाला (कन्टीनुअस कास्टिंग शॉप) का निर्माण किया जा रहा है। आर एस पी एवं बी एस एल की आधुनिकीकरण योजनाओं में भी उनकी तप्त बेलन मिल हेतु अनवरत स्लैब कास्टर की स्थापना के वारे में ध्यान रखा गया है । ए एस पी में एक कॉम्बी-कास्टर को भी स्थापित किया गया है । पिछले एक दशक में स्थापित किये गये अधिकांश लघु इस्पात

संयंत्रों में इस्पात की अनवरत ढलाई की शत-प्रतिशत सुविधाएँ मौजूद हैं।

बेलन मिल

भारत में बेलन प्रौद्योगिकी को 1920 में प्रवर्तित किया गया और 1958 तक बेलित उत्पादों का उत्पादन 1.439 मि. टन/प्रतिवर्ष तक पहुँच गया । भिलाई, दुर्गापुर एवं राउरकेला में संघटित इस्पात संयंत्रों की स्थापना एवं टिस्को के दूसरी बार किये गये विस्तार के साथ ही बेलित इस्पात उत्पादों का उत्पादन छठे दशक में 4.986 मि. टन तक पहुँच गया । इस्पात संयंत्रों के और अधिक विस्तार तथा बोकारो एवं भिलाई में इस्पात संयंत्रों के संयोजन के साथ ही यह 1984-85 में 6.4 मि. टन तक पहुँच गया। उत्पादन में हुई यह वृद्धि न सिर्फ बेलित इस्पात रोल्ड स्टील में प्रशंसनीय सुधार का परिचायक है, बल्कि यह बेलन मिलों की प्रौद्योगिकी में उल्लेखनीस सुधार की भी द्योतक है । छठे दशक के दौरान जिन मिलों को चालू किया गया, उनमें देश की पहली तप्त स्ट्रीप मिल और एक टेण्डम शीतल मिल सहित पहली आधुनिक शीतल बेलन मिल शामिल है । भिलाई में स्थापित वायर रॉड मिल एवं रेल मिल भी अपने-अपने क्षेत्रों की बेलन मिल प्रौद्योगिकी में एक कदम आगे ही है । विशाखपट्टणम इस्पात संयंत्र में एक नई हल्की मर्चेण्ट मिल और एक अत्यधिक क्षमता की वायर रॉड मिल को हाल ही में चालू किया गया है । इनमें नवीनतम प्रौद्योगिकी को समाविष्ट किया गया है । बोकारो इस्पात संयंत्र के 4.0 मि. टन विस्तार के तहत आधुनिक प्रोसेसिंग लाइन सहित अधिक क्षमतावाली एक टेण्डम शीतल बेलन मिल भी स्थापित की गयी ।

संघटित इस्पात संयंत्रों में केवल आर एस पी में ही इ आर डब्लू पाइप संयंत्र और स्पाइरल वेल्ड पाइप संयंत्र नामक पाइप उत्पादन सुविधाएं मौजूद हैं । वर्तमान समय में, सीवनहीन (सीमलेस) इस्पात ट्यूबों का उत्पादन इण्डियन ट्यूब कंपनी, जमशेदपुर, भेल, त्रिची, न्यूक्लिअर फ्यूएल काम्लेक्स, हैदराबाद एवं इण्डियन सीमलेस मेटल ट्यूब कंपनी, अहमदनगर में ही होता है । विशेष एवं मिश्र इस्पात उत्पादों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ए एस पी दुर्गापुर, वी आई एस एल - भद्रावती, मुस्को, जी के डब्लू,बिहार एल्वायज, मिधानी इत्यादी में आधुनिक बेलन मिलों को स्थापित किया गया है। "कोल्ड रोल्ड ग्रेन उन्मुख" और "कोल्ड रोल्ड गैर उन्मुख" इस्पात शीट के उत्पादन हेतु आर.एस.पी. में एक सी.आर.जी.ओ. समूह की भी स्थापना की गई है।

वृहद संघटित इस्पात संयंत्रों एवं लघु इस्पात संयंत्रों के केप्टिव बेलन मिलों के अलावा देश में काफी संख्या में "रीरोलर्स", जिनकी स्थापित क्षमता करीब 200 लाख टन प्रतिवर्ष है, उपलब्ध हैं। ये ही रोलर्स, निवेश-सामग्री के रूप में, रीरोलेबल स्क्रैप एवं लघु इस्पात संयंत्रों द्वारा बनाये गये पेन्सिल इनगॉट्स एवं कन्टीनुअस कास्ट बिलेटों का प्रयोग मुख्यतः रॉडों, बारों एवं हल्की संरचनाओं के उत्पादन के लिए करते हैं।

स्वदेशी इंजीनियरी, मैन्युफैक्चरिंग, निर्माण तथा अनुसंधान एवं विकास

भारत ने पिछले दो दशकों के दौरान अनुसंधान एवं विकास, परामर्शी / इंजीनियरी, उपकरण उत्पादन एवं निर्माण के क्षेत्र में असाधारण रूप से आत्म निर्भरता प्राप्त की है। लौह एवं इस्पात उद्योग के लिए सी.एस.आई.आर. की विभिन्न प्रयोगशालाओं, इस्पात संयंत्रों के अनुसंधान एवं विकास संगठनों, अभिकल्पन एवं इंजीनियरी संगठनों एवं शैक्षणिक संस्थानों में विविध कार्यक्रमों के जरिये बहुत सी अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों को आगे बढ़ाया जा रहा है ताकि स्वदेशी कच्ची सामग्री एवं प्राकृतिक संसाधनों का इष्टतम उपयोग करते हुए देश के इस्पात संयंत्रों में प्रौद्योगिकीय सुधार किया जा सके। अनुसंधान एवं विकास प्रयासों में सेल कम्बाइन्ड क्लोंइग टेक्नोलॉजी का विकास,एस.सी.बी. हेतु ऊष्मसहों (रिफ्रेक्ट्रियों) का विकास एवं इस्पात की नई गुणवत्ता का विकास उल्लेखनीय हैं। वर्तमान समय में भारतीय परामर्शी संस्थान (यथा मेकन एवं वस्तूरको) बहु मिलियन टन संघटित इस्पात संयंत्रों के अभिकल्पन एवं इंजीनियरी कार्य संपादन में समर्थ हैं। मेकन ने 1969 में अत्यन्त सुसज्जित तप्त एवं शीतल बेलन मिलों के उपकरणों एवं प्रणालियों के अभिकल्पन का काम शुरू किया था। इसके परिणामस्वरूप बी एस पी एवं बी एस एल के ज्यादा से ज्यादा प्रयोग किया गया।

इसी प्रवृति को आगे बढ़ाते हुए देश ने कोक ओवन बैटरियों, कोयला कार्बनीकरण संयंत्रों, रसायन संयंत्रों, बेलन मिलों, प्रोसेसिंग लाइनों, धमन भट्ठी उपकरणों एवं बेसिक ऑक्सीजन भट्ठियों के गैस सफाईकरण संयंत्रों के संपूर्ण अभिकल्पन की दक्षता प्राप्त कर ली है, फलतः बड़े पैमाने पर आयातित उपकरणों का विकल्प ढूँढ लिया गया है।

भारतीय इंजीनियरी उद्योग भारतीय अभिकल्पन पर आधारित विभिन्न उपकरणों के निर्माण का उत्तरदायित्व लेने में समर्थ हो गये हैं। सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की एच.ई.सी.,जी.आर.एस.ई.,के.सी.पी.एल.एण्ड.टी., मुकुन्द जैसी अन्य कंपनियाँ हमारे इस्पात उद्योग की जरूरतों को पूरा करने के लिए नवीनतम उपकरणों का उत्पादन करने में अब सक्षम हैं। हिन्दुस्तान स्टील वर्क्स कन्सट्रक्शन लि. इस्पात संयंत्रों के लिए संपूर्ण निर्माण कार्य करने में आज समर्थ है।

भारत उन थोड़े से देशों में से एक है जिसके पास प्राचीन काल से ही लौह एवं इस्पात निर्माण का ज्ञान उपलब्ध है। इन शताब्दियों में भारत प्रौद्योगिकीय विकास की गति पर से अपनी पकड़, मुख्यतः औपनिवेशिक शक्ति द्वारा जानबूझ कर की गई कार्यवाहियों की वजह से धीरे-धीरे खोता गया।

इसके बावजूद, 1940 तक भारतीय लौह एवं इस्पात प्रौद्योगिकियों की तुलना शेष विश्व से की जाती थी। 5 वें दशक में स्वाधीन भारत ने अपनी बढ़ती हुई इस्पात की जरूरतों को पूरा करने के लिए, उस समय विद्यमान नवीनतम प्रौद्योगिकियों (स्टेट ऑफ द आर्ट टेक्नोलॉजी) का सुधार करते हुए, इस्पात संयंत्रों की स्थापना का कार्य प्रारंभ किया। 1960 तक भारतीय इस्पात अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लागत प्रतियोगी था। पहले हालाँकि नई प्रौद्योगिकियों/प्रक्रियाओं का इस्पात संयंत्रों में अवनरत निवेश किया गया था, परन्तु प्रगति की रफ्तार इतनी धीमी थी कि भारत विकसित और बहुत से विकासशील देशों के मुकाबले काफी पीछे छूट गया। प्रौद्योगिकीय स्तर पर बन गई इस खाई को महसूस करते हुए 8 वें दशक से देश ने विविध संघटित एवं लघु इस्पात संयंत्रों की आधुनिकीकरण योजनाओं के तहत बहुत सी नई प्रौद्योगिकियों अनुप्राणित करना शुरू किया। इस्पात संसंत्रों द्वारा प्रवर्तित विविध प्रौद्योगिकियाँ, इस्पात उद्योग द्वारा पहले ही प्राप्त कर ली गई प्रौद्योगिकीय तरक्की के कुछेक उदाहरण भर हैं। सरकार की वर्तमान उदारीकृत नीति के अंतर्गत कई अन्य विचाराधीन भी हैं।

■

(पृष्ठ 113 का शेष भाग)

राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान के अतिरिक्त समुद्री मात्स्यिकी संस्थान, भारतीय मौसम विभाग, प्राकृतिक तेल एवं गैस आयोग, विभिन्न विश्वविद्यालय, भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान मद्रास, राष्ट्रीय भूभौतिकी शोध संस्थान, भारतीय भूभौतिकी शोध संस्थान, भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग, राष्ट्रीय दूर संवेदन अभिकरण आदि अन्यान्य संस्थान भी अनवरत रूप से समुद्र वैज्ञानिक अनुसंधान में जुटे हैं।

समुद्र विज्ञान का उपयोग अनवरत रूप से समुद्र से संबन्धित समस्यायें दूर करने के लिए किया जा रहा है। तटीय क्षेत्रों के प्रवन्धन, तेल क्षेत्र एवं बन्दरगाहों के विकास, प्रदूषण नियन्त्रण, तटीय औद्योगिक एवं घरेलू वर्ज्य पदार्थ के विसर्जन, समुद्री सर्वेक्षण आदि क्षेत्रों में समुद्रविज्ञान का योगदान अविस्मरणीय है। प्रस्तुत योगदान समुद्र वैज्ञानिकों के अध्ययन दल की एक झलक मात्र है क्योंकि अनुसंधान एक सतत प्रक्रिया है और उपरोक्त अनुसंधान कार्यक्रम अनवरत रूप से अगले दशकों तक जारी रह कर समुद्र के बहु - आयामी रहस्यों एवं विपुल सम्पदा - भण्डारों को मानव - समाज के सामने लायेंगे।

■

फसलों की विकास - प्रक्रिया

राज नारायण पाण्डेय एवं चित्तरंजन भाटिया
जैव आयुर्विज्ञान वर्ग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंन्द्र
बम्बई - 400 085.

मनुष्य ने जब से खाद्यान्नों की खेती करना आरंभ किया तभी से नई विधियों और नई प्रजातियों की तलाश जारी है । आज, आधुनिक जैविकी तकनीकों का प्रयोग करके वह कृषि उत्पादन में नई ऊँचाइयां पाने के लिए प्रयासरत है। कृषि की विकास प्रक्रिया के कुछ सोपानों पर चर्चा है प्रस्तुत लेख में ।

मानव इस धरती पर लगभग 5 लाख वर्षों तक अन्य जानवरों की भांति ही भोजन के लिए खाद्यान्नों और शिकार की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह विचरण करता रहा। उसकी खानाबदोश जिन्दगी तब समाप्त हुई, जब वह पौधों को अपने घर के पास उगाकर खेती करने लगा । मानव - इतिहास में खेतों की शुरुआत एक हाल की घटना है । केवल दस हजार वर्ष पहले ही मानव ने खेती करना आरंभ किया । उस समय कुछ बुद्धिमान मानवों ने (संभंवतः स्त्रियों ने) यह खोज निकाला कि वे खाद्यान्न जो उनके पुरुष दूर दूर से इकट्ठा करके लाते हैं, उनके घर के पिछवाड़े में ही उग सकते हैं ।उनकी यह खोज संभवतः अनजाने में या अकस्मात गिरे दानों से उगे पौधों को देखकर हुई होगी । इसके बाद कौतुहल और जिज्ञासावश कुछ मानवों ने खाद्यान्नों और फलों के बीज बोकर पौधे उगाने का प्रयास किया होगा । इसमें सफलता मिली और तभी से स्वभावतः जिज्ञासु मानव विभिन्न किस्मों के पौधे उगाने की विधियाँ विकसित करने में लग गया, और यह सिलसिला आज भी जारी है । मानव द्वारा कृषि अपनाये जाने के फलस्वरूप अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । मानव नदियों की उर्वर घाटियों में बस गया और अपना खाद्य उत्पन्न करने लगा । कृषि-कार्यों तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने पशु-पालन भी आरंभ किया । यहीं से मानव सभ्यता विकसित हुई ।

पौधों का खेती में समावेश दुनिया के विभिन्न भागों में स्वतंत्र रूप से अलग-अलग हुआ । पुरानी दुनिया में पौधों का कृषि में समावेश एक उपजाऊ धन्वाकार भूखंड में हुआ जिसमें उत्तरी ईराक, तुर्की और जार्डन शामिल है । यहाँ जौ और गेहूँ की खेती संभवतः सबसे पहले आरंभ हुई । इसके बाद राई (Rye) और जई (Oat) को खेती में शामिल किया गया । इन पौधों के निकट संबंधी आज भी इन क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से उगते हैं । लगभग इसी समय नई दुनिया में, मध्य और दक्षिण अमेरिका में, मक्का और फ्रेंचबीन को खेती में शामिल किया गया । अफ्रीका में पौधों का कृषि समावेश कुछ देर से आरंभ हुआ । ज्वार यहाँ का मुख्य धान्य था । चावल दक्षिण-पूर्व एशिया में कृषि में सम्मिलित हुआ। थाइलैंड में चावल की खेती करीब 3500 वर्ष ई.पू. आरंभ हुई, जब कि चीन में 2750 वर्ष ई.पू और भारत में 2500 वर्ष ई.पू. चावल खेती में समाविष्ट हुआ । आज की कुछ प्रमुख फसलों के पुरातात्विक अभिलेख तालिका-1 में दिये गये हैं ।

पौधों का कृषि समावेश एक दीर्घकालीन प्रक्रिया रही है, और इसे संपन्न करने में मानव की कई पीढियाँ प्रयास करती रहीं । एक तरह से प्रयास आज भी जारी है । इस प्रक्रिया में पौधों की बहुत सी उपजातियों/प्रजातियों को कृषि में शामिल किया गया। और बाद में उन्हें त्यागकर उनके स्थान पर नयी प्रजातियों का समावेश किया गया । मूलरूप से उन्हीं प्रजातियों की कृषि में शामिल किया गया, जो कार्बोहाइड्रेट (अनाज और आलू), प्रोटीन (दालें), वसा (तिलहन) प्रदान करती थी । सब मिलाकर करीब 200 जातियों के पौधों को खेती में शामिल किया गया, जिनमें से आज केवल 20जातियों के पौधों की खेती विस्तृत रूप से की जाती है । प्रारंभ में कृषि में समाविष्ट पौधों का स्वरूप आज के पौधों से बहुत भिन्न था । आज की कृषि में उगाये

तालिका - 1.

विभिन्न फसलों के प्राचीनतम पुरातात्त्विक अभिलेख★

	फसल	तिथि	देश
धान्य	चावल	3500 ई. पू.	थाइलैंड
		2750 - 3280 ई.पू.	चीन
		2500 ई.पू.	भारत
	गेहूँ	6500 - 7500 ई.पू.	उर्वर धन्वाकार भूक्षेत्र
	मक्का	5000 ई.पू.	मेक्सिको
	ज्वार	3000 - 4000 ई.पू.	उत्तर या पश्चिम अफ्रीका
		2000 ई.पू.	भारत
	राई (Rye)	3000 ई.पू.	पूर्वी तुर्की, उत्तर - पश्चिम ईरान आर्मेनिया
	जौ	8000 ई.पू.	सीरिया
	जई (Oat)	6000 - 7000 ई.पू.	उर्वर धन्वाकार भूक्षेत्र
तिलहन	मूँगफली	2000 - 3000 ई.पू.	पेरू
	तिल	3000 ई.पू.	सीरिया, फिलिस्तीन
	सोयाबीन	1100 ई.पू.	चीन
	अलसी	1000 ई.पू.	स्विट्जरलैंड, भील निवासी मिस्र
दलहन	अरहर	4000 वर्षपूर्व	मिस्र
		1400 - 1600 पूर्व	भारत
	चना	5450 ई.पू.	तुर्की
		2000 ई.पू.	भारत
	मसूर	6000 - 7000 ई.पू.	समीपवर्ती पूर्व
	फ्रेंचबीन (फेजिओलस	7680 वर्ष पूर्व	पेरू
	जाति)	7000 वर्ष पूर्व	मेक्सिको
अन्य	आलू	2000 - 5000 ई.पू.	दक्षिण अमे रिका
	कपास		
	हर्बेसियम गॉसीपियम	5000 वर्ष पूर्व	सिन्धु घाटी
	गॉ. आर्बोरियम	5000	पाकिस्तान
	गॉ. हरसुलम	5500 वर्ष पूर्व	मेक्सिको
	गॉ.बार्बडेन्स	4500 वर्ष पूर्व	पेरू

★ सिम्मोनास एन.वी.(1976)' 'एवाल्युशन आफ क्राप प्लांटस', लांगमैन्स, लंडन पी. 339 से संकलित

जाने वाले पौधों के निकट संबंधी खरपतवार के रूप में उगते रहे हैं, और अपना सह-अस्तित्व बनाये हुए हैं । कई विनष्ट हो चुके हैं, या केवल सीमित क्षेत्र में उगते पाये जाते हैं। कृषि समावेश के दौरान पौधों में आमूल परिवर्तन हुए । व्यापक रूप से प्राकृतिक अनुकूलन, बीजों का बड़ा आकार, प्रसुप्ति का अभाव, परिमित वृद्धि, अल्पकालिक जीवनचक्र, दानों का पौधों में लगे रहना, कसैले-कड़वे स्वाद की अनुपस्थिति, विषाक्तता का अभाव - इत्यादि वांछित गुणों के आधार पर पौधों का कृषि समावेश होता रहा । अतः समय के साथ-साथ पौधों के रूप में परिवर्तन होते गये ।

कृषि-समावेश की विकास-प्रक्रिया - हर युग में उस समय के तकनीकी ज्ञान का उपयोग करके पौधों के विकास और उनके मूल को समझने की कोशिश की जाती रही है। प्रारंभिक प्रमाण पुरातत्वविज्ञान, आकारिकी और शारीरिकी, कोशिका विज्ञान और कोशिकानुवांशिकी के अध्ययनों से प्राप्त हुए। यह ज्ञात हो जाने पर कि डी. एन.ए. एक अनुवांशिक पदार्थ है, प्रति अगुणित (हेप्लायड) जीनोम में डी.एन.ए.की मात्रा को मापा गया। जब यह खोज हुई कि अधिकांश ससीम केंद्रकियों (यूकैरियोट) में डी.एन.ए. की मात्रा का एक बड़ा भाग पुनरावृत्त क्रम में विद्यमान होता है, तब डी.एन.ए. की रचना, कार्य और पुनरावृत्त तथा अपुनरावृत्त अनुक्रमों के विचलन के बारे में विस्तृत अध्ययन किये गये। विशिष्ट जीनों या डी.एन.ए.खंडों के क्लोनीकरण तथा अनुक्रमों के निर्धारण से एक नया आयाम जुड़ गया। अब आगे का लक्ष्य होगा - न्यूक्लीय, क्लोराप्लास्टीय तथा माइटोकोंड्रियाई जीनोम का पूर्ण अनुक्रम - निर्धारण करना। कोशीकीय अंगकों के जीनोम के अध्ययन से गेहूँ - सरसों जैसी उभय द्विगुणित जातियों के पूर्वजों के बारे में जानकारी मिलती है, जो माता के रूप में अपना कोशिका द्रव्य प्रदान करते आये हैं।

अनुवांशिक परिवर्तन की प्रक्रिया - उत्परिवर्तन (म्यूटेशन), संकरण, पुनर्योग, बहुगुणीकरण तथा मानव द्वारा चयन - आदि प्रक्रियाओं ने खेती में प्रयुक्त फसलों के विकास में महत्त्वपूर्ण - भूमिकायें अदा की हैं। स्वतः उत्परिवर्तन अनुवांशिक भिन्नता का मूलाधार रहा है। आज की कृषि में शामिल अनेक पौधों की विभिन्न जातियों के बहुत से वांछित गुण केवल एक 'जीन' के उत्परिवर्तन के परिणाम हैं। उदाहरण के लिए कृषित गेहूँ की आसान गाहनीयता (मड़ाई) एक जीन Q - जो क्रोमोसोम 5A पर स्थित है, के उत्परिवर्तन के कारण प्राप्त हुई है। यह अवरोधक जीन गेहूँ के प्राक्ष (रैकिस) की भंगुरता तथा दाने के तुष (ग्लूम) के साथ मजबूत आसंजन को दूर करता है। कृषित पौधों के विकास में मुख्य जीनों के अलावा बहुजीनों (पॉलीजीन्स) का भी बड़ा महत्त्व रहा है। कृषि - प्रयुक्त पौधों के निकट के संबंधी - पौधे एक ही प्रकृतवास में उगते रहे हैं। उनमें से कुछ आज भी खेतों में खर - पतवार के रुप में उगते हैं। इसके परिणाम स्वरूप जीनों का प्रवाह दोनों दिशाओं में रहा, वन्य पौधों से कृषि - प्रयुक्त पौधों की ओर और कृषित पौधों से वन्य जातियों की ओर। यह क्रिया आत्म - सेची पौधों में भी जारी रही, क्योंकि इनमें भी कुछ हद तक परम्परागण हुआ करता है। अमरीकी वैज्ञानिक जैक हार्लन ने कृषि में प्रयुक्त धान्यों के जीन - कोश (जीन-पूल) को दो वर्गों में बाँटा है; 'प्राथमिक' 'जीन- पूल' और 'द्वितीयक जीन पूल'। प्राथमिक जीन-पूल के अंतर्गत वे जातियाँ शामिल हैं, जिन्हें खेती में प्रयुक्त जातियों के साथ निर्बाध संकरित किया जा सकता है। और उनसे उर्वर संकर प्राप्त किये जा सकते हैं। इन संकर पौधों में सामान्य गुणसूत्र - युग्मन (क्रोमोसोम पेअरिंग)और सामान्य अनुवांशिक विसंयोजन (सैग्रीगेशन) देखा जाता है। द्वितीयक जीन - कोश में उन जातियों को शामिल किया गया है, जिन्हें कृष्ट जातियों से संकरित तो किया जा सकता है पर उनके संकर पौधे कमजोर होते हैं और उनमें गुणसूत्र - युग्मन सुचारू रुप से नहीं होता, फलतः वे वंध्या होते हैं। मुख्य धान्यों के प्राथमिक और द्वितीयक जीन पूल को तालिका -2 में दर्शाया गया है। संकरण तथा विदेशी जातियों से जीनों के अंतर्ग्रहण से वांछनीय गुणों के लिए पौधों के चयन की संभावनायें बढ़ गयी हैं।

ग्रीगर - मेंडल द्वारा वंशागति के नियमों के प्रतिज्ञापन तथा अनुवांशिक विज्ञान के जन्म के बहुत पहले से ही विभिन्न पौधों के संकरण के प्रयास किये गये थे। इस शताब्दी के आरंभ में मेंडल के कार्यों की पुनर्खोज के बाद से संकरण - क्रिया अनुवांशिक भिन्नता बढ़ाने की सबसे महत्वपूर्ण विधा बन गयी। तब से नये - नये, तथा दूर के संबंध वाले पौधों में संकरण के लिए सभी नयी तकनीकें प्रयुक्त की जा रही हैं। हाल में, प्रोटोप्लास्ट - संलयन (प्रोटोप्लास्ट - फ्यूजन) - तकनीक भी इस्तेमाल की जाने लगी है। 'कोल्चिसीन' के प्रयोग से क्रोमोसोमों की संख्या को द्विगुणित करके स्वतः

तालिका - 2

मुख्य धान्यों के प्राथमिक एवं द्वितीयक जीन पूल

			प्राथमिक जीन पूल		द्वितीयक 'जीनपूल'
धान्य	गुणिता (प्लायडी)	कृषित जातियाँ	वन्य जातियाँ	खर पतवार के रुप में उगने वाली जातियाँ	
गेहूँ -					
एन्क्रोम व्हीट	2χ	ट्रिटिकम मोनोकोकम	ट्रि. बोकोटिकम	ट्रि. बोकोटिकम	ट्रिटिकम सीकेल एजीलोप्स
एम्मर व्हीट	4χ	ट्रि. डाइकोकम	ट्रि. डाइकोक्वाईडस	-	"
टिमोफीवी	4χ	ट्रि.टिमोफीवी	ट्रि. आरारैटिकम	ट्रि. टिमोफीवी	"
ब्रेड व्हीट	6χ	ट्रि. एस्टीवम	—	—	"
राई	2χ	सिकेल सीरिएल	सि.सीरिएल	सि. सीरिएल	—
जौ	2χ	हार्डियम वल्गेअर	हा. स्पोन्टेनियम	हा. स्पोन्टेनियम	—
जई	2χ	अवेना स्ट्राइगोसा	अ.हर्सुटा	अ.स्ट्राइगोसा	अवेना - जातिमाँ
	4χ	अवेना एबीसिनिका अवेना वेविलोवियाना	अ. बार्बाटा	अ.बार्बाटा	"
	6χ	अवेना सैटाइवा	अ.स्टेरिलिस अ.फैचुआ	अ.स्टेरिलिस	"
धान (चावल)	2χ	ओराइसा सैटाइवा	ओ. रुफीपोगोन	ओ. रुफीपोगोन	ओराइझो जातियाँ
अफ्रीकी धान	2χ	ओ. ग्लाबेरिमा	ओ. बार्थाई	ओ. स्टैफाई	"
ज्वार	2χ	सोर्थम बाइकलर	सो.बाइकलर	सो. बाइकलर	सो.हैलीपेंस
बाजरा	2χ	पेनिसेटम अमेरिकानम	पे. वायोलैसियम	पे. अमेरिकानम	पे. परप्युरियम
मक्का	2χ	जिया मेज	जि. मेक्सिकाना	जि. मेक्सिकाना	ट्रिप्सैकम-जातियाँ तथा जि. पेरेनिस

बहुगुणित करके स्वतः बहुगणित तथा उभय - बहु गुणित पौधे बनाये गये। विकिरण तथा रासायनिक उत्परिवर्तकों (म्यूटाजेन) का प्रयोग जीन - म्यूटेशन के लिए किया गया। पर इन सब विधियों से अनियंत्रित परिणाम निकलते हैं, और इनके प्रयोग से वांछित प्रकार के पौधों के विकास में मानव का नियंत्रण सीमित होता है।

'रिस्ट्रिक्शन - एंजाइम', डी.एन.ए. को उसके विशिष्ट स्थलों पर काट सकता है, और डी.एन.ए. की क्लोनिंग - तकनीक द्वारा डी.एन.ए, जीवाणुओं तथा जीवाणु भोजियों (फाज) में क्लोनीकृत किया जा सकता है तथा उसकी लाखों अनुकृतियाँ बनाई जा सकती हैं, इन विधाओं के विकास से कृषि - प्रयुक्त पौधों के सुधार को निर्दिष्ट करने का एक अनूठा उपसाधन प्राप्त हो गया है। अब किसी भी जीवधारी के जीन को दूसरे जीवधारी में स्थानान्तरित करना संभव हो गया है। जीन - स्थानांतरण के क्षेत्र में तम्बाकू के पौधों पर सर्वाधिक प्रयोग किये गये हैं। परिणामों से स्पष्ट हो गया है कि अब विषाणु, जीवाणु असंबंधित पौधों तथा जानवरों से जीनों का स्थानान्तरण तथा अभिव्यक्ति संभव है। हाल ही में तम्बाकू के पौधों में चूहे के प्रतिपिंडों (एंटीबाडीज) को उत्पन्न कराने में सफलता मिली है। चूहे के प्रतिपिंड सामान्यतः केवल चूहे के शरीर में ही उत्पन्न होते हैं, तम्बाकू के पौधों में चूहे के जीन का अंतरण करके पौधे में एंटीबाडीज उत्पन्न कराये गये। इसी तरह ट्रांसजीनिक तम्बाकू के पौधे में मानव सीरम एल्ब्यूमिन पैदा करने में सफलता मिली है। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार जुगनु के उस जीन का भी अंतरण तम्बाकू के पौधे में किया गया है जिससे जुगनू चमकता है।

इस तरह पुनर्संयोजित डी.एन.ए. तकनीकी ने उन सभी प्राकृतिक बाधाओं को दूर कर दिया है, जो वांछित पौधों के विकास के लिए 'जीन-पूल' का उपयोग करने में उपस्थित होती थीं। इन तकनीकों से विद्यमान जीनों को यादृच्छिक रूप से रूपान्तरित करना या किसी विशेष प्रयोजन के लिए उन्हें उपयुक्त बनाने में मदद मिली है। ये सुअवसर प्रकृति में विद्यमान नहीं थे।

जीनोम - परिवर्तन के इन नये उपसाधनों के उपलब्ध हो जाने से कृष्ट पौधों के विकास की भावी दिशा मानव - समाज की आवश्यकता पर निर्भर होगी। यदि आनेवाले 25 - 50 वर्षों में विश्व की जनसंख्या सुस्थिर हो जाती है, तो संभवतः अन्नोत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता न हो। तब मुख्य उद्देश्य होगा - सस्ते और सुरक्षित खाद्य उत्पन्न करना; जिससे उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं से पर्यावरण को कम से कम क्षति पहुँचे। इसके लिए रोग प्रतिरोधी तथा कीट - प्रतिरोधी जातियों का विकास करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होगा। अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में तब भी पर्याप्त अन्न उपजाना ही मुख्य लक्ष्य होगा, भले ही पर्यावरण प्रदूषित होता रहे। जब ऊर्जा के अनवीकरणीय स्रोत समाप्त हो जायेंगे, तब मानव - सभ्यता पुनः पौधों के पास वापस जायेगी; न केवल खाद्य, चारा, रेशा आदि के लिए, बल्कि ऊर्जा तथा रासायनिक उद्योग के आधारभूत स्रोतों के लिए भी। ■

सारांश

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में सुपर कंप्यूटर क्षेत्र में विकास

हरीश कुमार कौरा
अध्यक्ष, कंप्यूटर प्रभाग,
भा.प. अ .के., बम्बई 400 085.

भाभा परमाणु अनुसाधान केंद्र ने एक अत्याधिक गति से चलने वाला शक्तिशाली सुपर कंप्यूटर बनाया है । यह सुपर कंप्यूटर आठ कंप्यूटरों को जोड़ कर बनाया गया है । इनमें से प्रत्येक कंप्यूटर में रिस्क माइक्रोप्रोसेसर चिप का उपयोग किया गया है । इस सुपर कंप्यूटर की उच्चतमम गति 64 करोड़ निर्देश प्रति सैकण्ड है । और इसकी गति लिनपैक प्रोग्राम पर 5.2 करोड़ फ्लोटिंग प्वाईट निर्देश प्रति सैकण्ड पाई गयी है, जो कि दुनिया के सबसे शक्तिशाली सुपर कंप्यूटर क्रे. वाई. एम .पी .का 1/6 भाग है । इस केंद्र के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इस केंद्र के वैज्ञानिक अपने कंप्यूटर प्रोग्राम को इस सुपर कंप्यूटर पर एन डी 570 से 200 गुणा से भी अधिक गति से चला सकते हैं । इस कंप्यूटर का मूल्य लगभग 50 लाख रुपये है जबकिके वाई एम पी कंप्यूटर का मूल्य 30 करोड़ के लगभग पड़ता है । इसके अलावा ऐसे बड़े सुपर कंप्यूटरों के भारत में आयात में भी बहुत कठिनाइयाँ हैं । इस सुपर कंप्यूटर की शक्ति तो बढाने के लिये आगे भी अनुसंधान किया जा रहा है । आशा है कि जल्दी ही इस की उच्चतम गति बढ़ कर 640 करोड़ निर्देश प्रति सैकण्ड हो जाएगी ।

कंप्यूटरों की गति बढ़ाने की कई विधियाँ हैं । इलेक्ट्रॉनिक घटकों की शिल्प कला में विकास से कंप्यूटर की गति बढ़ते बढ़ते 20 करोड साईकल प्रति सैकण्ड से भी अधिक हो गई है । नई निर्माण विधियाँ जैसे कि शब्द परिमाण बढ़ाना, निर्देशों की पाइप लाईन क्रिया, एक से अधिक अंक गणित उपकरणों का उपयोग, रिस्क विधि, वैक्टर निर्देश यन्त्रों का उपयोग, आदि से जो सुपर कंप्यूटर बनाये जाते है उनका मूल्य बहुत अधिक हो जाता है । समान्तरित संसाधन/प्रोसेसिंग एक दूसरी विधि है जिससे कि कई सारे छोटे सस्ते कंप्यूटरों को एक तेज गति वाले संचार यन्त्र से जोड़कर सुपर कंप्यूटर बनाया जाता है । इस सुपर कंप्यूटर में एक कंप्यूटर प्रोग्राम को कई छोटे छोटे भागों मे बांट कर पैरेलल कंप्यूटर के अलग अलग छोटे कंप्यूटरों में चलाया जाता है । इस तरह सारे कंप्यूटर मिलकर एक प्रोग्राम को बहुत तेज गति से चलाते है । ऐसी (समान्तरित संसाधन)विधि से बनाया सुपर कंप्यूटर बहुत कम मूल्य में बन जाता है । भा प अ कें में जो कंप्यूटर बना है वह इसी प्रणाली पर आधारित है।

भा प अ के का सुपर कंप्यूटर 8 कंप्यूटरों को एक 4 करोड़ प्रति सैकण्ड के संचार यन्त्र से जोडकर बनाया गया है। आगे चलकर इस तरह 8 सुपर कंप्यूटर के समूहों को एक और तेज गति वाले संचार यन्त्र ,से जोड दिया जायेगा और इस तरह से 64 कंप्यूटर साथ मिल कर एक बहुत ही शक्तिशाली पैरलल कंप्यूटर बनेगा। इस 8 नोड के पैरेलल प्रोसेसिंग प्रणाली का उपयोग करना भी बहुत आसान है । कोई भी सी या फोर्ट्रोन में लिखे प्रोग्राम को पहले दो भागों में बाँटा जाता है । एक भाग जो कि मेन कंप्यूटर में चलेगा और दूसरा भाग जो कि सब दूसरे कंप्यूटरों में चलेगा । फिर इन दो भागों में, सह कंप्यूटिंग के निर्देशों को डाला जाता है, जो कि कंप्यूटरों में संचार, नियंत्रण, और समय अनुसार चलाने के काम आते है । इसके बाद इन प्रोग्रामों को कंपाईल करके चलाया जाता है । यह सुपर कंप्यूटर यूनिक्स प्रचालन प्रणाली पर चलता है।

कंप्यूटर उपयोग करने वाले के लिए जरूरी नहीं है कि वह इस भा प अ कें के कंप्यूटर पर ही अपने प्रोग्राम को पैरलल बनाये। प्रोग्राम को पैरलल बनाने का कार्य किसी भी यूनिक्स कंप्यूटर पर किया जा सकता है । उसके लिये एक ऐसा सोफ्टवेअर सिमुलेटर लिखा गया है जो कि किसी और यूनिक्स कंप्यूटर पर चलाया जा सकता है। इस तरह से सुपर कंप्यूटर का उपयोग सिर्फ प्रोग्राम को तेज गति से चलाने के लिये ही किया जा सकता है।

इस तेज गति के सुपर कंप्यूटर से परिणाम भी बहुत तेज आते है । इनको आसानी से समझने के लिये भा प अ कें के इस सुपर कंप्यूटर के साथ एक उन्नत ग्राफिक्स वर्क स्टेशन को भी जोड़ दिया गया है । इस का उपयोग करके परिणाम चित्रों के रूप में दिखाये जा सकते है ।

भा प अ कें के सुपर कंप्यूटर की गति 5.2 करोड़ फ्लोटिंग प्वाईट निर्देश प्रति सैकण्ड है । यह गति लिनपैक बैंचमार्क प्रोग्राम 1000 x 1000 मैट्रिक्स के लिये है । तुलना के लिये दूसरे सुपर कंप्यूटरों की लिनपैक प्रोग्राम की गति तालिका -1 मे दी गयी है । इस कंप्यूटर की सबसे तेज गति 10.5 करोड़ फ्लोटिंग प्वाईट निर्देश प्रति सैकण्ड एक 1000 x 1000 मैट्रिक्स के लिये पायी गयी है । एक वैज्ञानिक के प्रोटीन के प्रोग्राम को इस कंप्यूटर में चलाने के लिय केवल 1.35 मिनट लगे जबकि यह प्रोग्राम एन डी 570 में 169 मिनट में चलता था।

तालिका - 1
लिनपैक प्रोग्राम पर विभिन्न सुपर कंप्यूटरों की गति
(1000 x 1000 मैट्रिक्स)

सुपर कंप्यूटर	करोड़ फ्लोटिंग प्वाईट निर्देश प्रति सैकण्ड
क्रे. वाइ. एम. पी.	30.6
क्रे. एक्स. एम. पी.	21.7
क्रे .एस.	11.0
आई. बी. एम. 3090/180	
जे. बी. एफ.	9.7
भा अ प कें. का 8 नोड	
सुपर कंप्यूटर	5.24
कोनवैक्स सी 210	4.4
एलिअन्ट एफ एक्स /80	2.2
डैक वैक्स 600/640 (6 प्रोस)	0.8
एल. एक्स. एस. आई. 6420 (5 प्रोस)	0.6

सारांश

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन में उपग्रह प्रमोचन वाहनों का विकास

डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्ता
निदेशक, विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र
तिरुवनन्तपुरम

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान की दिशा उपयोग प्रधान, लक्ष्य देश का विकास तथा तरीका स्वावलम्बन है । इस सन्दर्भ में, उपयोग के लिए उपग्रहों तथा उपयोग प्रणालियों का विकास, उपग्रहों को उपयुक्त कक्षा में पहुंचाने के लिए प्रमोचन वाहनों का विकास असाधारण महत्व रखते हैं । इस समीक्षात्मक लेख में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के भिन्न उपग्रह प्रमोचन वाहनों, उनके उपयोग सम्बन्धी मिशन उनकी प्रदाय भार तथा कक्षा संबंधी क्षमता तथा उनकी अभिकल्पना का विवरण दिया गया है ।

प्रमोचन वाहनों कें अभिकल्प में न केवल सभी इंजीनियरी अनुशासनों पर निर्भर होना होता है, उन सब में परस्पर ताल-मेल, अंतर्क्रिया तथा बहुअनुशासनीय कुशलता की आवश्यकता भी होती है । इस में प्रमुख अनुशासनों, जैसे, मिशन योजना और विश्लेषण, वायु और उड़ान गतिकी, नोदक और नोदन तंत्र, नौसंचालन नियंत्रण और निर्देशन, संरचनात्मक विश्लेषण, दूरमिति अनुवर्तक और दूरादेश, तथा तंत्र विश्वसनीयता पर संक्षिप्त रूप मे प्रकाश डाला गया है । सभी क्षेत्रों में स्वावलम्बन की मात्रा जो लगभग शत-प्रतिशत हो गई है, पर भी टिप्पणी की गई है ।

आई एस आर ओ के विभिन्न उपग्रह प्रमोचन यान दी गई तालिका के अनुसार विभिन्न उपयोग सम्बन्धित मिशनों के लिए प्रयुक्त है :

तालिका

वाहन	मिशन	कक्षा	प्रदाय-भार (कि ग्रा)	प्रमोचक भार (टन)
ए एस एल वी	विज्ञान	एल ई ओ	150	39
पी एस एल वी	सुदूर संवेदन	एस एस ओ	1000	275
जी एस एल वी	संचार	जी टी ओ	2000-2500	400

1980 से 1983 तक एस एल वी-3 के तीन सफल परीक्षण से भारत ने ऐसी क्षमता सम्पन्न विश्व के छः राष्ट्रों के विशेष क्लब में प्रवेश किया । 20 मई 1992 को ए एस एल वी के सफल परीक्षण से उन्नत उपग्रह प्रमोचन यानों का विकास मार्ग भारत के लिए प्रशस्त हो गया । 1993 में पी एस एल वी का प्रथम विकासात्मक परीक्षण भारत को सुनियमित एवं सुव्यवस्थित प्रमोचन की सुविधा प्रदान करने में सहायक होगा । श्रृंखला में 1995-1996 तक जी एल एल वी का प्रथम परीक्षण करने की योजना पर गति से कार्य हो रहा है । इस प्रकार भारत को प्रगामी अंतरिक्ष सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए उपग्रह प्रमोचन यानों की सम्पूर्ण श्रृंखला लगभग शत् प्रतिशुत स्वावलम्बन और औद्योगीकरण के आधार पर 1996 तक पूरी हो जाएगी ।

सारांश

आयुर्वेद सिद्धान्त एवं अनुप्रयोग

डा. डी. एस. अन्तुरकर
भूतपूर्व प्रोफेसर, पोद्दार कालेज, बम्बई

आयुर्वेद एक प्राचीनतम शास्त्र हैं । स्वास्थ्यरक्षण और रोगनिवारण का वर्णन मूलभूत सिध्दान्तों के आधार पर आयुर्वेद में किया हुआ है ।

शरीर की प्राकृत क्रियाओं तथा विकृतियों का वर्णन आयुर्वेद में वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों के आधार पर किया जाता है । दोषों को प्रकुपित करने वाले कारणों में से मधुप, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय ये छ: रस महत्व के हैं । रसों का अतिसेवन दोषो को प्रकुपित करता है । उदाहरण के रूपमें लवण (NaCl) पित्त को बढ़ाता है । आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल रहता है । आयुर्वेद की दृष्टि से यह पित्त है । लवण के अतिसेवन से इस पित्त की वृद्धि होती है । इससे अम्लपित्त नाम की व्याधि होती है । लवण वर्ज्य करने से अम्लपित्त कम होता है।

लाल मिर्च जैसे कटु रसवाले पदार्थ के सेवन से आमाशय के अंदर के आवरण को हानि पहुंचती है । इस संरक्षक आवरण की हानि से तीक्ष्ण गुणवाले पित्त से आमाशय में सूक्ष्म व्रण होते हैं । आवरण की हानि का परीक्षण करने के लिये डी. एन्. ए. का परीक्षण किया जाता है ।

दोषों को प्रकुपित करने वाले उष्ण और शीत, गुरू और लघु आदि बीस गुण होते हैं । इनसें से उष्ण और शीत गुणों का परिणाम बार बार दिखाई देता है । शीत (ठंडक) वात और कफ को बढाती है । प्रतिश्याय (common cold) ठंडक से होने वाले विकार है । रिनो वायरस (Rhinovirus) प्रतिश्याय का कारण होता है । इस वायरस की वृध्दि के लिये 30°सें. से नीचे का तापमान अनुकूल होता है । इसलिये शीत ऋतुमें प्रतिश्याय अधिक होता है । उष्णता अधिक होनेपर प्रतिश्याय में लाभ होता है ।

इसी प्रकार शीत संधिवात में होने वाली वेदना की वृध्दि का भी आधुनिक बायोकेमिस्ट्री के आधार पर प्रत्यक्ष प्रमाण दिया जा सकता है ।

वात, पित्त, कफ इनके आधार पर होने वाली व्याधियों का वर्गीकरण तथा लंघन जैसी सामान्य चिकित्सा के लाभों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है । इस प्रकार व्यवहार में प्रचलित विवध प्राचीन सिध्दान्तों को प्रत्यक्ष प्रमाणों से देखा जा सकता है ।

सारांश

प्रौद्योगिकी विकास एवं सी एस आई आर

डा.अशोक जैन
निदेशक, राष्ट्रीय विज्ञान प्रौद्योगिकी
और विकास अध्ययन संस्थान
डा. के. एस. कृष्णन् मार्ग,
नई दिल्ली - 110012.

आजादी से भी पहले हमारे राष्ट्रीय नेताओं का मत था कि देश की जनता का जीवन स्तर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के माध्यम से ऊपर उठ सकता है । इसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए वर्ष 1942 में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी एस आई आर) की स्थापना हुई । आज देश में सी एस आई आर की विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में 40 प्रयोगशालाएं/संस्थान स्थापित हैं एवं 100 अनुसंधान केन्द्र हैं। उन प्रयोगशालाओं / संस्थानों में औद्योगिक विकास एवं दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए बहुत से अनुसंधान किये जा चुके हैं तथा कुछ महत्वपूर्ण अनुसंधान किये जा रहें हैं । दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए सी एस आई आर ने भोजन, ईधन, मकान, दवा, सड़क, पर्यावरण, पानी तथा स्वास्थ एवं परिवार कल्याण इत्यादि के क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान किया है ।

इन प्रौद्योगिकियों को आम आदमी तथा संबंधित क्षेत्रों तक पहुंचाने के लिए सी एस आई आर के 9 बहु प्रौद्योगिकी स्थानांतरण केन्द्र कार्यरत हैं। इन केन्द्रों एवं संबंधित प्रयोगशालाओं के माध्यम से ये प्रौद्योगिकियां आम आदमी तक पहुँचाई जा रही हैं एवं इनमे जीवन स्तर में सुधार की अपेक्षा की जाती है ।इसके अतिरिक्त, सी एस आई आर की प्रौद्योगिकी के माध्यम से कुटीर तथा बड़े उद्योगों की स्थापना की जा चुकी है तथा हो रही है जिनसे आम आदमी को किसी न किसी रूप में लाभ अवश्य मिल रहा है ।

यह विचारणीय है कि सी एस आई आर के माध्यम से जो लाभ औद्योगिक धन्धों के विकास एवं आम जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए मिले हैं, उनको और अधिक बढ़ावा कैसे दिया जा सकता है । यदि इस विषय पर हम एक साथ बैठ कर विचार-विमर्श करें तो हो सकता है कि परिषद औद्योगिक विकास एवं आम जनता के दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में और अधिक सफल सिध्द हो सकेगी । यह भी आवश्यक है कि प्रयोगशालाओं मे जो प्रौद्योगिकी तैयार की जा चुकी है उसे आम जनता एवं उद्योगों तक उनकी भाषा में पहुंचाया जाए । जब हम उनकी भाषा में प्रौद्योगिकी विचार-विमर्श करेंगे तो आशा हैं कि सी एस आई आर की प्रौद्योगिकी से लाभान्वित होने के लिए वे कभी भी नहीं हिचकेंगे और सी एस आई आर भी अपना निर्धारित लक्ष्य पूरा कर सकेगी ।

सारांश

खनिज तेल का अन्वेषण

डा. एस. के. विश्वास निदेशक,
के. डी.मालवीय पेट्रोलियम अन्वेषण संस्थान
देहरादून

भारत में पेट्रोलियम अन्वेषण का शुभारम्भ 125 वर्ष पूर्व 26 मार्च 1867 में उत्तरी आसाम के माकुम नामक स्थान पर 36 मीटर की गहराई से खनिज तेल निकालने के समय से माना जाता है । सन् 1880 में "आसाम रेलवे एवं ट्रेडिंग कम्पनी'' ने "बोरोभिल" जो डिंगबोई तेल क्षेत्र के नाम से प्रसिध्द हुआ, की खोज की । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् 1960 तक आसाम मे डिंगबोई सहित कुछ अन्य छोटे तेल क्षेत्रों से भी लगभग दो लाख पचास हजार टन प्रतिवर्ष खनिज तेल का उत्पादन होता था , जो सन 1960-61 में 0.45 मिलियन टन, सन 1984-85 मे 28.99 मि. टन तथा सन 1989-90 में 34.09 मि. टन हो गया। स्वाधीन भारत में औद्योगिक क्रांति की नींव रखने वालो को देश के विकास एवं आर्थिक ढाँचे को सुदृढ बनाने में पेट्रोलियम उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के महत्व का आभास हो गया था। अतः सन् 1948 मे पेट्रोलियम को प्रथम श्रेणी का उद्योग घोषित किया गया तथा उसके विकास का दायित्व राज्यों को प्रदान करने का निश्चय किया । सन् 1956 में भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जी.एस. आई.) के आधीन पेट्रोलियम निदेशालय का गठन जिसे सन् 1959 मे तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग में परिवर्तित कर दिया गया ।

आयोग के सुनियोजित प्रयास से 1960 में गुजरात की खंभात द्रोणी में "अंकलेश्वर" नामक विशाल तेल क्षेत्र का पता चला तथा बाद में उत्तरी आसाम व गुजरात में कई छोटे-छोटे तेल क्षेत्रों का पता लगा । 1974 में पश्चिमी अपतटीय क्षेत्र में " बम्बई हाई" नामक अति विशाल तेल क्षेत्र की खोज हुई । वर्तमान में आसाम, गुजरात के अतिरिक्त पश्चिमी तथा पूर्वी अपतट तथा त्रिपुरा व राजस्थान से भी हाइड्रोकार्बन का उत्पादन हो रहा है । लेकिन देश में पेट्रोलियम की निरंतर बढ़ती खपत तथा खनिज तेल के उत्पादन में बढ़ रहे अंतर व अन्वेषण व्यय में हो रही कटौती की पृष्ठभूमि में अन्वेषणकर्ताओं के सामने कठिन चुनौती है जिसका सामना अन्वेषणकर्ताओं को अपने व्यापक अनुभव एवं सूझबूझ तथा उपलब्ध तकनीक के आधार पर करना है ताकि सन् 2000 तक 47 मि. टन उत्पादन का लक्ष प्राप्त किया जा सके ।

भारत जैसे विकासशील देश में पेट्रोलियम की खपत,तेल के उत्पादन के बीच निरंतर बढते अंतर तथा अन्वेषण व्यय में हो रही कटौती की पृष्ट भूमि में मूल्य सार्थक कार्य विधियों/तकनीको के प्रयोग की आवश्यकता है । अपेक्षाकृत अल्पव्ययी पेट्रोलियम अन्वेषण हेतु प्रत्यक्ष प्रभावी तथा कम खर्चीली आकाशीय, उपग्रही एवं भूतलीय विधियों पर आधारित एकीकृत अन्वेषण पद्धति अपनाई जाती है ।

उपलब्ध जानकारी के आधार पर "अग्रता संकेतो " की व्याख्या, अल्पव्ययी सर्वेक्षणों तथा अन्य विधियों के प्रत्यक्ष मूल्यांकन का क्रम ही विवेकपूर्ण अन्वेषण हेतु श्रेयस्कर है ।

विधियों का चयन लक्ष्य के प्रकार, स्थानीय भूसंरचना, भूआकृति एवं पर्यावरण प्रकार तथा उपलब्ध वित्तीय संसाधनों पर निर्भर करता है । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बातों को भी सुनिश्चित करना आवश्यक है ।

1) सुराग लगाने के लिए सस्ती व कारगर टोही विधियों का प्रयोग,
2) केवल सुनिश्चित सफलता वाले सीमित क्षेत्रों में महंगे उपकरणों का प्रयोग
3) जोखमी क्षेत्रों में प्रत्यक्ष/परोक्ष भूरासायनिक पूर्वेक्षण,
4) पारंपरिक भूकम्पी सर्वेक्षण के स्थान पर यथासंभव भूरासायनिक सर्वेक्षण

सारांश

इन्सैट-2 का अंतरिक्ष खण्ड संरूपण और डिजाइन - एक उदाहरण

डा . पी. रामचन्द्रन
परियोजना निदेशक - इन्सैट - २ए
इसरो उपग्रह केन्द्र
बैंगलोर

उपग्रह आधारित संचार प्रणाली को मोटे तौर पर दो क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है - अंतरिक्ष खण्ड एवं भू-खण्ड। अंतरिक्ष खण्ड के अंतर्गत उपग्रह तथा भूखंड के अंतर्गत उपग्रह के नियंत्रण हेतु भू मि पर सुविधाएँ शामिल हैं। इस लेख में जहाँ कहीं भी सामान्य संकल्पना आदि के लिए उदाहरणों की आवश्यकता हुई, वह भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संघटन के इन्सैट-2 से लिए गए हैं । भू-स्थिर उपग्रह से संबंधित मूल बातों जैसे प्रमोचक अवरोध कक्षा से संबंधित कारक और अंतरिक्षीय वातावरण का कक्षा बढ़ाते समय व कक्षा में स्थापित होने के बाद के प्रभाव की विवेचना की गई है । उपग्रह नियंत्रण सुविधा से संबंधित संक्षिप्त विवरण के लिए इन्सेट-2 मुख्य नियंत्रण सुविधा को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

अंतरिक्ष खण्ड संविरचन से संबंधित विषय जैसे विशिष्ट या बहु उद्देशीय उपग्रह का चयन तथा उस के आकार के निर्धारण आदि पर भी विचार किया गया है । उसके बाद उपग्रह अभिकल्पना (डिजाइन) पर विचार किया गया है, साथ ही विभिन्न उपग्रह प्रणालियों के बारे में संक्षिप्त विवरण किया गया हैं। यहां संदर्भित विषय पर इन्सैट -2 से ही उदाहरण लिए गए हैं। । विश्वसनीयता तथा जाँच पहलुओं पर विचार किया गया है जो उपग्रह का जीवनकाल निर्धारित करती हैं ।

अंत में इन्सैट अंतरिक्ष खण्ड की योजना में सम्मिलित विभिन्न चरणों पर विस्तृत चर्चा की गई है जिसमें प्रथम पीढ़ी के इन्सैंट-1 श्रृंखला और विकसित इन्सैट-2 पर भी विचार किया गया है । इन्सैट-2 अंतरिक्ष खण्ड तथा उपग्रह संरूपण की संक्षिप्त व्याख्या की गई है ।

भाग - 3

“वैज्ञानिक” की विविध जानकारी

हिंदी - विज्ञान साहित्य परिषद

वार्षिक प्रतिवेदन (1991-92)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की कार्यकारिणी समिति की ओर से वर्ष 1991-92 की गतिविधियों का ब्यौरा आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है ।

• 'वैज्ञानिक' का प्रकाशन

'वैज्ञानिक' की छपाई का कार्य इस वर्ष भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के पुस्तकालय एवं सूचना विभाग के माध्यम से किया गया । इसी कारण हम अब वैज्ञानिक में अधिक लेख छाप सके तथा इसकी क्वालिटी में भी सुधार ला सके। इन सभी के लिए हम विशेष रूप से डा. एम. बालकृष्णन् तथा सम्पादन मंडल एवं व्यवस्थापन मंडल के आभारी हैं। इस वर्ष के चारों अंक प्रकाशित किए जा चुके है । (किन्हीं कारणों से हम अक्तूबर - दिसम्बर व जनवरी - मार्च के अंक समय पर न छाप सके । इसके लिये हमें खेद है)।

• 'विज्ञान पत्रिका' का प्रकाशन

इस वर्ष से हमने एक नयी पत्रिका "विज्ञान पत्रिका" का प्रकाशन प्रारम्भ किया है । इस पत्रिका में विज्ञान एवं वैज्ञानिकों से संबंधित समाचार, परिषद की गतिविधियों की सूचनाएं एवं एक विशेष विषय पर वैज्ञानिक लेख इत्यादि का समावेश होगा । यह पत्रिका विशेष रूप से उन सहयोगियों के लिए प्रकाशित की जा रही है जो विज्ञान में ज्यादा जानकारी नहीं रखते हैं। इसके प्रथम अंक का विमोचन मार्च में डा. आर. चिदम्बरम के कर कमलों द्वारा किया गया । हर वर्ष इसके चार अंक प्रकाशित किए जाएंगे। इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक डा. एस. पी. अवस्थी हैं ।

• अखिल भारतीय वैज्ञानिक लेख प्रतियोगिता

हर वर्ष की तरह, इस वर्ष भी अखिल भारतीय वैज्ञानिक लेख प्रतियोगिता का आयोजन किया गया । इसके लिए लेखों को प्राप्त करने की अंतिम तिथि 31 अक्तूबर 1991 थी । इसके अंतर्गत देश के विभिन्न भागों से कुल 52 वैज्ञानिक लेख प्राप्त हुए थे जिनमें से 4 लेख अहिंदी भाषियों के थे । इन में से कुल 10 लेखों को पुरस्कृत किया गया जिनमें एक लेख अहिंदी भाषी का भी है । इस वर्ष रु. 5100/- की धनराशि पुरस्कार के रूप में दी गई । इस लेख प्रतियोगिता के संयोजक डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल थे ।

• वैज्ञानिक प्रश्नमंच

तीसरे "वैज्ञानिक प्रश्नमंच" कार्यक्रम का आयोजन नेहरू जन्म दिवस समारोह के उपलक्ष में 27 नवम्बर 1991 को किया गया । कार्यक्रम की अध्यक्षता डा. आर. चिदम्बरम, निदेशक/ भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने की । इस में अणुशक्तिनगर, बंबई स्थित केंद्रीय विद्यालयों की चार टीमों ने भाग लिया । इस प्रश्न मंच में विजेता छात्रों को इस केंद्र के जैव आयुर्विज्ञान वर्ग के निदेशक डा. सी. आर . भाटिया के द्वारा पुरस्कार भी प्रदान किए गये । इस कार्यक्रम को काफी लोकप्रियता मिली । लगभग 500 छात्रों ने दर्शक एवं श्रोता के रूप में इस प्रश्नमंच में भाग लिया । इस प्रश्नमंच कार्यक्रम के संयोजक डा. वी. के. मनचंदा, डा. वी. के. जैन, डा. एस. पी. गर्ग एवं डा. एस. चौहान थे। श्री. वैद्य ने इस कार्यक्रम की व्यवस्था का कार्यभार संभाला ।

• राजभाषा वार्ताएं

राजभाषा कार्यान्वयन समिति के साथ मिलकर हमने निम्नलिखित वार्ताएं आयोजित की । इस कार्यक्रम के संयोजक श्री. रमेशचन्द्र पंत थे ।

1) राजभाषा हिंदी के चालीस वर्ष - हरिबाबू कंसल, नई दिल्ली. (18.09.1991)

2) भारतीय साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टि - डा. विद्या निवास मिश्र, वाराणसी. (01.11.1991)

3) डी. एन. ए. पोलीमरेस की संरचना - कार्य प्रणाली संबंध एवं प्रतिरक्षी विविधता की जैव रसायन रचना - डा. वीरेन्द्र नाथ पाण्डेय, बंबई. (08.01.1992)

4) नौकरशाही के अद्‌भुत देश में - डा. आर पद्‌मनाभन्, बंबई. (10.03.1992)

- **"परमाणु ऊर्जा के शान्तिमय उपयोग" विषय पर कार्यशाला ।**

हिंदी दिवस के उपलब्ध में 26 सितम्बर, 1991 को "परमाणु ऊर्जा के शान्तिमय उपयोग" विषय पर एक वैज्ञानिक कार्यशाला का आयोजन किया गया । यह कार्यशाला भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के अतकनीकी कर्मचारियों के लिए ही विशेष रूप से आयोजित की गई थी। यह इस तरह की दूसरी कार्यशाला थी । इसका उद्‌देश्य केंद्र के अतकनीकी कर्मचारियों को परमाणु ऊर्जा के शान्तिमय उपयोगों एवं केंद्र में हो रहे अनुसंधानों की सरल जानकारी देना है । इस कार्यशाला का उद्‌घाटन केन्द्र के निदेशक डा. आर चिदम्बरम् ने किया । इसमें केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिकों द्वारा कुल 7 पत्र पढ़े गये । इसमें विभाग के 250 प्रतिभागियों के लिए 4 अक्तूबर, 1991 को केंद्र के विभिन्न प्रभागों के शैक्षणिक भ्रमण की भी व्यवस्था की गई थी । इस कार्यक्रम का संयोजन श्री. सुधाकर कोकाटे ने किया ।

- **"स्वास्थ भौतिकी शब्दावली" विषय पर कार्यशाला।**

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के सहयोग से भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में 14-15 नवंबर, 1991 को "स्वास्थ भौतिकी शब्दावली" विषय पर एक द्वि-दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया । इसका उद्‌घाटन इस केंद्र के प्रशिक्षण प्रभाग के अध्यक्ष, डा. उमेश चन्द्र मिश्रा ने किया एवं शब्दावली आयोग के अध्यक्ष, प्रो. सूरज भान सिंह ने इसकी अध्यक्षता की । इस कार्यशाला में लगभग 53 लोगों ने भाग लिया । कार्यशाला के अंतिम सत्र में प्रतिभागियों के विचार जानने कि बाद डा. डी. वी. गोपीनाथ, निदेशक, स्वास्थ सुरक्षा एवं पर्यावरण वर्ग ने प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र वितरित किये । इस कार्यक्रम के संयोजक डा. जनार्दन स्वरूप एवं श्री . आर. सी. पंत थे ।

- **नोबेल पुरस्कार, किसे और क्यों - एक संगोष्ठी**

इस वर्ष से यह एक नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसका उद्‌देश्य विज्ञान के क्षेत्र में दिये जाने वाले श्रेष्ठतम पुरस्कार (नोबेल पुरस्कार) विजेता वैज्ञानिकों एवं उनके कार्यों के बारे में जानकारी देना है । इसके अंतर्गत वर्ष 1991 के दौरान रसायनिकी, भौतिकी एवं मेडिसिन में पुरस्कृत वैज्ञानिकों के कार्यों पर प्रकाश डालने हेतु एक संगोष्ठी 20 जनवरी, 1992 को आयोजित की गयी ।

टी. आई. एफ.आर. बंबई के डा. गिरजेश गोविल ने "एन. एम. आर . के अभिनव परिवर्तन" (डा. आर. आर. अर्नस्ट - रसायनिकी पुरस्कार विजेता के विषय) एवं भापअ केंद्र के डा. के. पी. मिश्रा ने "पेच एवं क्लैप विधि" (डा. ई. नेहर एवं वी. सॅकमेन - फीजियोलाजी एवं मेडिसिन पुरस्कार विजेता के विषय) पर जानकारी दी । बंबई विश्वविद्यालय की श्रीमती आर. जे. बेगम किन्हीं कारणों से भौतिकी विषय पर चर्चा के लिए न आ सकीं । इस संगोष्ठी की अध्यक्षता डा. श्यामसुन्दर कपूर, निदेशक भौतिकी एवं इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण वर्ग, ने की । इस कार्यक्रम के संयोजक डा. जी. पी. कोठियाल थे।

- **"नाभिकीय ऊर्जा एवं पदार्थ" विषय पर संगोष्ठी ।**

केंद्र से बाहर राजभाषा हिंदी में वैज्ञानिक संगोष्ठियों के आयोजन की श्रृंखला में दिनांक 24-25 जनवरी, 1992 को साउथ इंडियन कल्चरल हॉल, पटना में "नाभिकीय ऊर्जा एवं पदार्थ" विषय पर एक द्वि-दिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी को बिहार वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी परिषद, यू. सी. आई.एल., जादूगोड़ा, एन. पी. सी., बंबई एवं पटना विश्वविद्यालय, पटना द्वारा प्रायोजित किया गया था । इस संगोष्ठी का उद्‌घाटन डा. आर. चिदम्बरम्, निदेशक, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने किया। उद्‌घाटन समारोह की अध्यक्षता बिहार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के मंत्री श्री. शिवनन्दन झा ने की । इस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में पटना उच्च न्यायालय के

मुख्य न्यायमूर्ति श्री. पी. सी. बसाक उपस्थित थे । इस समारोह में प्रो. आर. पी. सिंह, परियोजना निदेशक, विज्ञान एवं प्रौद्यौगिकी परिषद, बिहार ने स्वागत भाषण दिया । इसके बाद संगोष्ठी परिचय डा. एस. ए. अहमद तथा हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद का परिचय डा. डी. डी. सूद एवं धन्यवाद प्रस्ताव श्री. जी. एल. गोस्वामी द्वारा दिया गया । संगोष्ठी में 'नाभिकीय ऊर्जा एवं पदार्थ' से संबंधित विषय पर कुल 18 पत्र पढ़े गये । एक सारांश पत्रिका भी प्रकाशित की गई । संगोष्ठी के समापन सत्र में एक पैनल चर्चा भी हुई जिसकी अध्यक्षता केंद्र के निदेशक, डा. आर. चिदम्बरम् ने की । इस चर्चा में भाग लेने वाले अन्य व्यक्ति थे - सर्वश्री अनिल काकोडकर, निदेशक रिएक्टर वर्ग, एस. डी. सोमन,निदेशक ए ई आर बी, प्रो. आर. पी. सिंह, निदेशक, बिहार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद एनं श्री. एस. ए. रिजवी, सचिव बिहार लोकसेवा आयोग । संगोष्ठी के समापन पर सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि, बिहार की विद्युत समस्या के हल के लिए वहां एक परमाणु रिएक्टर भी स्थापित किया जाए और वहां कृषि तथा चिकित्सा के क्षेत्र में क्रमशः किरणन एवं रेडियो-थेरपी आदि की सुविधा उपलब्ध कराने कि लिए आवश्यक व्यवस्था की जाए । पटना में आयोजित उक्त संगोष्ठी के संयोजक थे डा. आर. विजय राघवन्, अध्यक्ष, परमाणु ईंधन प्रभाग एवं वर्णक्रमदर्शिकी प्रभाग, भापअ केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक डा. एस. ए. अहमद । पटना में इसके स्थानीय संयोजक थे प्रो. आर . पी. सिंह, निदेशक, बिहार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद तथा प्रो. जगन्नाथ ठाकुर, भौतिकी प्रभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना ।

- **"भूकम्प विज्ञान में प्रगति - एक अवलोकन " विषय पर संगोष्ठी**

दिनांक 17 फरवरी, 1992 को 'भूकंप विज्ञान में प्रगति - एक अवलोकन' विषय पर एक - दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सेंट्रल कांम्पलेक्स सभागृह में किया गया । डा. डी. डी. सूद, अध्यक्ष, ईंधन रसायनिकी प्रभाग एवं डा. एस. के. अरोरा ने हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं संगोष्ठी के विषयवस्तु का परिचय दिया। इस संगोष्ठी का उद्घाटन डा. हर्ष गुप्ता, सलाहकार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार ने किया । डा. एस. एस. कपूर, निदेशक भौतिकी वर्ग एवं इलेक्ट्रानिकी तथा तकनीकी वर्ग ने संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता की । इस संगोष्ठी में भूकंप विज्ञान विषय पर कुल 12 पत्र पढ़े गए । दी गई वार्ता एवं संगोष्ठी के कार्यक्रम की एक सारांश पुस्तिका भी इसी अवसर पर प्रकाशित की गई । इस संगोष्ठी में लगभग 250 प्रतिभागियों ने भाग लिया । केंद्र के भूकंप विज्ञान अनुभाग के वैज्ञानिक डा. विजय कुमार इस संगोष्ठी के संयोजक थे । इस संगोष्ठी में भाग लेने वाले प्रतिभागियों के लिए दिनांक 17 फरवरी, 1992 की शाम साढ़े सात बजे, जूनियर हाईस्कूल सभागृह, अणुशक्तिनगर, बंबई में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया ।

- **"आधुनिक जीव विज्ञान एवं जैव तकनीकी" विषय पर संगोष्ठी**

2 मार्च, 1992 को 'आधुनिक जीव विज्ञान एवं जैव तकनीकी' विषय पर एक - दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया । इसके उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता इस केंद्र के रिएक्टर वर्ग के निदेशक, श्री. एस. के. मेहता ने की । इस केंद्र के जैव आयुर्विज्ञान वर्ग के निदेशक डा. सी. आर. भाटिया ने इस संगोष्ठी का उद्घाटन किया । इस अवसर पर श्री. जी. एल. गोस्वामी, सचिव, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद ने संगोष्ठी में उपस्थित सभी प्रतिभागियों का स्वागत किया । आण्विक जीव विज्ञान एवं कृषि प्रभाग के अध्यक्ष डा. एस. के महाजन ने संगोष्ठी परिचय दिया । इस संगोष्ठी में उक्त विषय पर कुल 7 वार्ताएं प्रस्तुत की गई । इस संगोष्ठी के कार्यक्रम एवं प्रस्तुत वार्ताओं की एक सारांश पुस्तिका का प्रकाशन भी इसी अवसर पर किया गया । इस संगोष्ठी के संयोजक थे केंद्र के आण्विक जीव विज्ञान एवं कृषि प्रभाग के वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी डां. सूर्यदेव मिश्र।

- **भावी कार्यक्रम - 1992-93**

वर्ष 1992-93 के संभावित कार्यक्रम इस प्रकार है ।

01. रजत जयन्ती समारोह एवं "भारत में विज्ञान सफलता के पथ पर" विषय पर संगोष्ठी - 18 से 20 जनवरी, 1993

02. "नाभिकीय ऊर्जा के शान्तिमय उपयोग" विषय पर संगोष्ठी 17 सितम्बर, 1992

03. "वैज्ञानिक प्रश्नमंच" विद्यार्थियों के लिए नवंबर, 1992

04. "नाभिकीय ऊर्जा एवं एवं ईंधन चक्र" विषय पर पर हैदराबाद में संगोष्ठी - दिसम्बर, 1992

05. "आयुर्विज्ञान" विषय पर संगोष्ठी - मार्च, 1993

06. अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता

07. नोबेल पुरस्कार - किसे और क्यों ?

08. "वैज्ञानिक" का प्रकाशन

09. "विज्ञान पत्रिका" का प्रकाशन

- **सदस्यता**

इस वर्ष हमने 72 नये आजीवन सदस्य बनाए । इस वर्ष के अंत तक सदस्यों की संख्या इस प्रकार रही। वर्तमान (फरवरी 1993) सदस्यता संख्या दांये कालम में दी गयी है।

	मार्च'92	फरवरी'93
आजीवन सदस्य	581	761
संस्थागत सदस्य	080	70

इस वर्ष हमने अपने सभी योजनाबध्द कार्यक्रम किये और इनमें हमें काफी सफलता भी मिली और इन प्रयासों को सभी ने सराहा । इसके साथ हमने दो नये कार्यक्रम, "विज्ञान पत्रिका" का प्रकाशन एवं "नोबेल पुरस्कार - किसे और क्यों" विषय पर संगोष्ठी, भी शुरू किये । इन सभी कार्यक्रमों के आयोजन एवं उनकी सफलता का श्रेय परिषद के अध्यक्ष, डा. आर. चिदम्बरम् एवं उपाध्यक्ष डा. दीन दयाल सूद के मार्गदर्शन एवं कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यों से प्राप्त सहयोग को जाता है । इसके साथ परिषद के विभिन्न कार्यक्रमों के लिये प्राप्त प्रशासनिक सहायता के लिये हम भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के नियंत्रक महोदय, अध्यक्ष, कार्मिक प्रभाग, अध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग तथा हिंदी कक्ष के प्रति आभारी हैं। परिषद की राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद से भी काफी सहयोग मिला है इसके लिये हम विशेष रूप से श्री एस. के. शर्मा, डा. सी. आर. भाटिया, डा. रामशेष तथा डा. भटनागर के आभारी हैं ।

ज्ञानोत्तमलाल गोस्वामी,
सचिव

पुस्तक समीक्षा

विज्ञान - समाचार - लेखन

लेखक : श्री चक्रेश जैन
प्रकाशक : हीरा भैया प्रकाशन
65, पत्रकार कॉलोनी
इन्दोर - 452 001
कीमत : 30 रुपये
प्रथम संस्करण : जुलाई 1992

श्री जैन द्वारा लिखित 96 पृष्ठों की इस पुस्तिका में विज्ञान समाचार से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर नौ शीर्षकों के अंतर्गत सरल एवं प्रवाहमयी भाषा में चर्चा की गयी है । इसकी भूमिका में विज्ञान के क्षेत्र में पहिये से कंप्यूटर तक हुए वैज्ञानिक खोजों के क्रमिक विकास पर एक संक्षिप्त परंतु प्रभावी विवरण प्रस्तुत करने के साथ साथ विज्ञान समाचारों की आवश्यकता के पक्ष को स्पष्ट किया है ।

विज्ञान समाचारों का स्वरूप कैसा हो, कैसे अधिक से अधिक व्यक्तियों के लिए रोचक, उपयोगी तथा महत्वपूर्ण समाचार प्रकाशित किये जाएं, इत्यादि पहलुओं पर द्वितीय अध्याय में चर्चा की गयी है । शीर्षक लेखन,'इन्ट्रो', विज्ञान-समाचारों का संपादन, पत्रिकाओं के लिए विज्ञान समाचार लेखन, इलेक्ट्रानिक संपादन इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला गया है । विज्ञान समाचार केवल सरल शब्दों और छोटे छोटे वाक्यों से ही बोध गम्य नही होते। वास्तव में सम्पूर्ण विचार को सरलता से प्रस्तुत करना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । उदाहरणार्थ प्रकाशित कुछ विज्ञान समाचार भी दिये गए हैं ।

वस्तुतः विज्ञान समाचार सूचनात्माक श्रेणी के अंतर्गत आते हैं अतः इन समाचारों के साथ विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता का पक्ष विशेष रूप से जुड़ा हुआ है । इन समाचारों के स्रोत क्या हो सकते हैं और क्या होने चाहिए, इन प्रश्नों से संबंधित बातों को तीसरे अध्याय में दिया गिया है। शोध पत्रिकाएं, शोध लेख, विज्ञान पत्रिकाएं, संवाददाता सम्मेलन, संवाद समितियां, वैज्ञानिक विश्वकोश, गृह पत्रिकाएं, वार्षिक रिपोर्ट, व्याख्यान, संगोष्ठियां, प्रेस विज्ञप्ति इत्यादि के महत्व पर चर्चा की गई है । समाचार पत्रों में प्रकाशित विज्ञान लेखों के लिए भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र द्वारा तैयार वर्गीकरण कोड का उल्लेख भी किया गया है ।

संपादकीय लेखन का प्रमुख उद्देश्य बौध्दिक उद्दीपन तथा पाठकों को सोच विचार के लिए प्रेरित करना होता है। लेखक ने विज्ञान समाचार से जुड़े इस पक्ष पर कुछ प्रकाश डाला है तथा उन कुछ पत्रिकाओं के भी नाम गिनाए हैं जिनमें संपादकीय लिखने की परम्परा है। यहां पर हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, बंबई, की त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का उल्लेख न किया जाना आश्चर्यजनक लगता है ।

विज्ञान समाचारों से जुड़ा एक अहम पहलू विज्ञान समाचारों का अनुवाद है, इसके लिए अनुवादक को मात्र स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा को जानना ही पर्याप्त नहीं है । उस विषय से विवेचन में प्रयुक्त भाषा और उसके प्रयोग का ज्ञान और विषय संबंधित पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान भी आवश्यक है। यद्यपि मौलिक लेखन सर्वथा अनुवाद की तुलना में श्रेष्ठ समझा जाता है परंतु सूचना क्रांति के इस युग में ताजा से ताजा सूचनाओं या जानकारियों को प्राप्त करने के लिए अनुवाद एक अनिवार्य साधन बन गया है । लेखक ने इस अनिवार्यता पर विशेष टिप्पणी प्रस्तुत की है ।

वैज्ञानिक भेंट वार्ता एवं विज्ञान रिपोर्टिंग पर भी विचार दो अलग अलग अध्यायों में किए गए है। समाचार पत्रों में विज्ञान समाचारों की व्याप्ति (कवरेज) और खास तौर पर भारत में विज्ञान समाचार-पत्र की आवश्यकता पर बल दिया है ।

विज्ञान समाचार पत्र की जन सामान्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, विज्ञान को लोक प्रिय बनाना, वैज्ञानिक विचार विमर्श का वातावरण तैयार करना, नये आविष्कारों तथा खोजों की जानकारी इत्यादि सामाजिक जिम्मेदारियां कही जा सकती हैं । लेखक के मत में विज्ञान समाचार पत्र विज्ञान को आगे बढ़ाने में ही नहीं बल्कि एक स्वस्थ, विकासशील, संतुलित तथा गतिवान समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है ।

पुस्तक के अंत में बहुप्रचलित विज्ञान तथा पत्रकारिता से संबंध्द पारिभाषिक शब्दों की सूची देने से पुस्तक काफी उपयोगी बन गयी है । विज्ञान समाचार लेखन की दिशा में श्री चक्रेश जैन ने इस पुस्तक के माध्यम से सराहनीय प्रयास किया है ।

डा. गो. प्र. कोठियाल

संगोष्ठी समाचार

जन संचार माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन - प्रशिक्षण/ कार्यशाला

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र तथा राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के परस्पर सहयोग से भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में दिनांक 4 से 6 नवम्बर, 1992 तक 'जन संचार माध्यमों के लिए हिन्दी में विज्ञान लेखन' से संबंधित एक प्रशिक्षण/कार्यशाला का आयोजन किया । इस कार्यशाला का उद्घाटन इस केन्द्र के भौतिकी और इलेक्ट्रानिकी एवं यंत्रीकरण वर्गों के निदेशक डा. श्याम सुन्दर कपूर ने 4 नवम्बर को किया। अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने इस बात की प्रशंसा की कि कार्यशाला का उद्देश्य कुटीर उद्योगों में कार्य करने वाली महिलाओं एवं झोपड़ पट्टियों में रहने वाले मजदूर बंधुओं में विज्ञान संबंधित जानकारी देने एवं उनके लिए साहित्य तैयार करने से संबंधित है,। यह समझ लेना कि बुध्दिमत्ता केवल समाज के उच्च वर्ग एवं अट्टालिकाओं में रहने वाले लोगों की बपौती है, दुर्भाग्यपूर्ण होगा । अपनी भारतीय भाषाओं में स्वाभिमान अनुभव करते हुए साहित्य इस प्रकार से तैयार किया जाय कि लक्ष्य वर्ग के लोग समझ सकें। केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के डॉ. अ. बसु ने कार्यशाला के उद्देश्य, लक्ष्य वर्ग, विषय इत्यादि का संक्षिप्त परिचय दिया । परिषद के सचिव श्री गोस्वामी ने अतिथियों का स्वागत एवं कार्यशाला संयोजक डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल ने धन्यवाद ज्ञापन का कार्य किया ।

इस कार्यशाला में देश के विभिन्न संस्थानों से लगभग 25 सहभागियों ने सक्रिय रूप से भाग लिया । लक्ष्य वर्ग को ध्यान में रखते हुए और जन साधारण में वैज्ञानिक मानसिकता के विकास हेतु विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के विषय चुने गये । सहभागियों की चर्चा की सुविधा के लिए इन विषयों को तीन मुख्य वर्गों में रखा गया । प्रथम वर्ग में पर्यावरण एवं कृषि संबंधित आठ लेख, द्वितीय वर्ग में पोषण और अंध:विश्वास के विभिन्न पहलुओं पर आधारित छ लेख और तृतीय वर्ग में समाज में अपराध, भवन निर्माण, परमाणु शक्ति, स्वाद विज्ञान, पेय जेल आदि विषयों पर छ लेख प्रस्तुत किये गये तथा उन्हें हर दृष्टि से लक्ष्य वर्ग को ध्यान में रखते हुए अंतिम रूप दिया गया ।

इन सभी लेखों को तैयार करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया कि लेख रोचक एवं सरल भाषा मे हों, वाक्य छोटे हों, तकनीकी शब्दावली और आंकड़ो का कम से कम प्रयोग किया जाय, और कुल मिलाकर विज्ञान के तथ्यों को ऐसे लिखा जाय कि वे झोपड़पट्टी में रहने वाले और कल कारखानों में काम करने वाले मजदूर तक के आम आदमी आसानी से समझ सकें।

कार्यशाला के दौरान सहभागियों द्वारा विज्ञान लेखन के क्षेत्र में उनकी समस्याओं/सुझावों पर भी चर्चा हुई । लक्ष्य वर्ग के परिप्रेक्ष्य में तकनीकी शब्दावली संबंधित शँकाओं, विषय की गहनता एवं अभिव्यक्ति के पहलुओं पर कुछ हद तक सहमति एवं दिशा निर्देशन भी संभव हो पाया ।

डा. गो. प्र. कोठियाल
(संयोजक)

कुछ फूल, कुछ कांटे

आदरणीय महोदय,

'वैज्ञानिक' का अक्तूबर-दिसंबर 91 अंक पढ़ने का अवसर मिला । दो बातों नें विशेष प्रभावित किया । एक तो यह कि लेखों में ऊपर संपादकीय टिप्पणियां बहुत ही रुचीं। इनसे समूचे लेख का जायजा प्राप्त हो जाता है और लेख में क्या कुछ नया कहने की कोशिश की गयी है, यह भी। दूसरे, विज्ञान और प्रकृति शीर्षक से संपादक प्रमुख डॉ. कोठियाल ने जो विचार दिये हैं, वे बहुत ही सही लगे। उन से पूर्णतः सहमत हूं कि प्रकृति ही सर्वोपरि है और रहेगी । मनुष्य प्रकृति को संपूर्णतः कभी भी नियंत्रित नहीं कर पायेगा। प्रोफेसर फ्रेड हॉयल ने भी इसी प्रकार के विचार अपने भाषणों (संकलनः ऑफ मेन एण्ड गैलेक्सीज) में दिये हैं । सच तो यह है कि प्रकृति मां है और मनुष्य संतान। इसी संदर्भ में प्रकृति की देनों को तथा मनुष्य जब ज्यादा उत्पाती हो जाता है तो उसे दी सजा को समझा सकता है। वैज्ञानिक में लेखों के अतिरिक्त क्विज़, बाल विज्ञान, लतीफे, वैज्ञानिकों से जुड़ी घटनाओं, फिक्शन, कार्टूनों आदि का समावेश भी नियम से हो, तो अच्छा। धन्यवाद।

19.9.92

श्रीमती स्वर्णलता

ए - 1/304 हृषीकेश

स्वामी समर्थ नगर

अंधेरी (प.), बंबई - 400 058.

मुझे "वैज्ञानिक" का ताजा अंक (24:2) भी प्राप्त हो गया है । पत्रिका का यह अंक बहुत ही सुन्दर और मनभावन लगा सिर्फ इसलिए नहीं कि इसमें मेरी रचना प्रकाशित हुई है अपितु इस अंक में प्रकाशित सामग्री बहुत ही उपयोगी और मूल्यवान है ।"वैज्ञानिक" का रूप संवारने में आप लोगों को जो परिश्रम करना पड़ता है मैं उसे यहां दिल्ली रहकर भी अनुभव कर सकता हूं क्योंकि "विज्ञान गंगा" के छपवाने में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उससे मैं स्थिति का सही अनुमान लगाने में सहायता पाता हूं ।

28-10-92

सुभाष चन्द्र लखेड़ा

एक्स-360 सरोजिनी नगर

नई दिल्ली -110023

'ज्यामितीय संस्कार' नामक लेख (वैज्ञानिक - अंक 24: 1 जन-मार्च 1992) में दर्शाया गया था कि समीकरणों को हल करने के लिए ज्यामितीय (ग्राफिक) विधि अधिक सार्थक है । वास्तव में यह बात बेबुनियाद है । यह सही है कि, समीकरणों का हल इस विधि से किया जा सकता है । परंन्तु ऐसी समीकरण है जो वक्र को दर्शाते है, तो ग्राफिक विधि से हल निकालना काफी कठिन और उबाऊ हो जाता है क्योंकि शुद्ध हल के लिए कटान बिन्दु के आसपास हमें काफी बिन्दुओं द्वारा वक्रों को खींचना पड़ता है ।

उक्त लेख में दिये गये प्रश्न को बीजगणितीय विधि से हल करने में चतुर्थ घात का समीकरण मिलता है जिसे गुणनखँड विधि द्वारा हल किया जा सकता है।

श्याम लाल धीमान

प्रवक्ता भौतिकी

राजकीय स्नातक म. वि. कोटद्वार

(गढ़वाल) 246149

NUCLEAR POWER CORPORATION

STEPPING UP POWER GENERATION FOR GENERATIONS TO COME

Nuclear Energy from the unlimited energy source. Environmentally clean and safe. Indigenously developed and totally self-reliant, to meet the growing energy demand for a better quality of life for our increasing millions.

NPC committed to serving the nation, utilising India's vast nuclear resources for generation of power for generations to come.

NUCLEAR POWER CORPORATION
(A Govt. of India Enterprise)

16th & 20th floor, World Trade Centre 1,
Cuffe Parade, Bombay 400 005.

NPC. Fuelling a powerful future.

CONTOUR ADS-NPC-42B/90

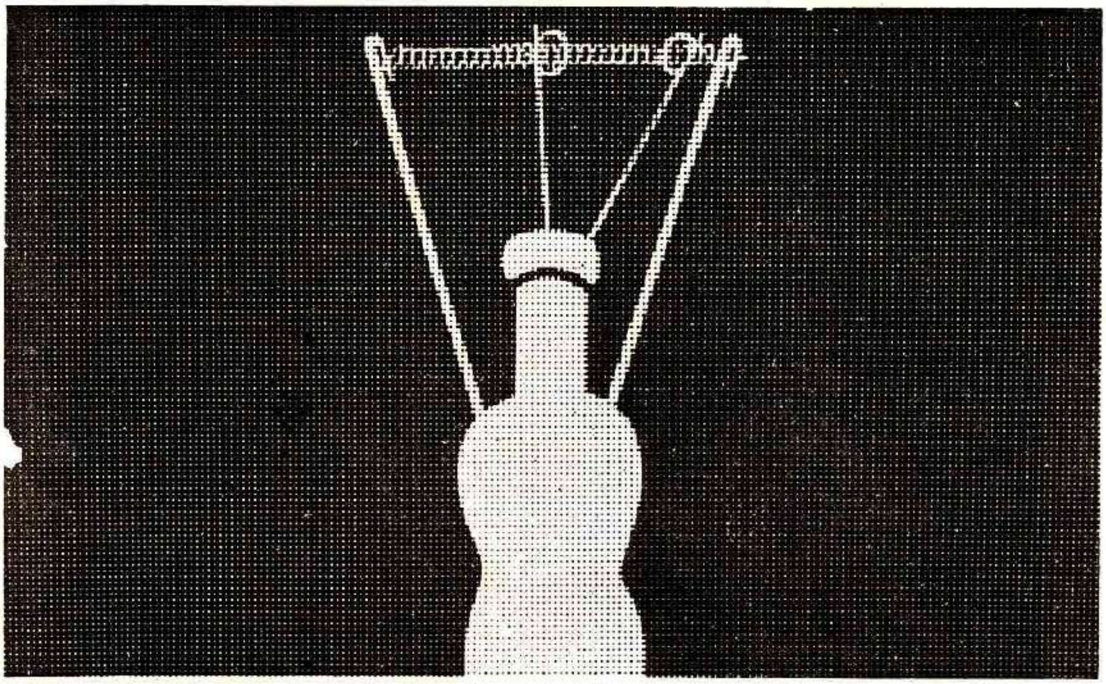

Midhani. Lighting the path to self-reliance in special metals and alloys.

Midhani is India's first and only special alloys plant manufacturing the entire range of special metals and alloys needed by various industries.

For instance, molybdenum, tungsten and high purity nickel for the lamp industry.

The basic production technology has been acquired from reputed foreign organisations like Creusot-Loire and Pechiney-Ugine-Kuhlmann of France and Krupp Kloeckner A of West Germany. Midhani also has the latest equipment and quality control facilities to ensure that all Midhani alloys meet international standards in quality and performance.

Some of the unique production facilities are the powder metallurgy shop for compacting, sintering, swaging and wire drawing of molybdenum and tungsten products, sophisticated melting and refining furnaces, precision forging, rolling and wire drawing equipment and a central quality control laboratory.

Midhani's product range includes iron, nickel and cobalt based superalloys, special purpose steels, titanium and titanum alloys, electrical and electronic alloys including electrical resistance alloys and powder metallurgy products.

MIDHANI

Mishra Dhatu Nigam Limited

(A Government of India Enterprise)

Kanchanbagh Hyderabad 500 258

Sista's/Midhani/153/84

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्राँबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियोआइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रुप से विकास किया है एवं देश विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं प्रदत्त सेवाएं इस प्रकार हैं:

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स:**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत:**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन:**
  सांचो तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर:**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा:**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई.सैट, वी.कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रुई, शल्य ब्लेड, दस्ताने, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया, अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें:

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,
विकिरण एवं आइसोटोप प्रोद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)
वि.ना.पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.
टेलीफोन : 555 16 76/555 31 45
तार : ब्रिटएटम, बम्बई-94. टेलेक्स : 11 72212 ब्रिट इन्